

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्॥ ऋ० १/८६/२



Impact Factor
7.523



ISSN : 2395-7115
November 2023
Vol.-18, Issue-5

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)



सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

Publisher :

Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 18

ISSUE-5

(नवम्बर 2023)

ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),

एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),

डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)

डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)



Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

- Disclaimer :**
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
 2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
 3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originality of their views/opinions expressed in their articles.
 4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टांटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरु

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी

राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर

बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी

पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पायल लिल्लहारे

अमरशहीद चंद्रशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

डॉ. मनमीत कौर

राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब

त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया

हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी

डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली

प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरु

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा

शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. किरण गिल

दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा

नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल

सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती

यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी

शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल

राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या

उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास

डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी

गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी

एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. सविता घुड़केवार

पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.

श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने

भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी

आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां

डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन

वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल

जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया

पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. के.के. मल्हौत्रा

पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. करमजीत कौर

प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप करवाकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रु. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रु. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003



देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्॥ ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115



बोहल शोध मञ्जूषा Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc.,)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals	08 per paper	10 per paper
2.	Publications (other than Research papers)		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com

grsbohal@gmail.com

8708822674

9466532152

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
1. सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10-10
2. जयशंकर प्रसाद के साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद	डॉ. महादेव चिन्तामणि खोत	11-15
3. समसामायिक हिन्दी साहित्य और किन्नर विमर्श	डॉ. ज्योति पटेल	16-19
4. जैन धर्म एवं दर्शन	ऋषभ जैन, डॉ. विक्रम सिंह देओल	20-23
5. भक्ति-साहित्य में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति का अध्ययन	सोनू कुमारी	24-30
6. अनुवादक की भूमिका एवं गुण	अनुश्री पी. एस.	31-36
7. विदेशों में हिन्दी का प्रचार प्रसार	डॉ. बेबी सुमंगला पी.वी.	37-39
8. कार्यरत महिलाओं के समक्ष व्यवसाय और गृह का भूमिका द्वन्द	डॉ. मंजु चौधरी	40-47
9. भारत : मानव संसाधन के विकास में शिक्षा की भूमिका	करुणेश प्रताप सिंह, डॉ. वीना रानी	48-51
10. नारी मन की उन्मुक्त स्वच्छन्दता, तृष्णा और भटकन की त्रासद कथा : 'गाथा अमरवेल की'	डॉ. आदित्य कुमार गुप्त	52-57
11. चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी विमर्श	जीता पी. एट्टरुत्तिल	58-60
12. आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल के व्यक्तित्व के विविध पक्ष	भानसिंह यादव, डॉ. सरोज गुप्ता	61-63
13. गोदान उपन्यास में किसान की दयनीय स्थिति	SUNIL KUMAR	64-66
14. उत्तररामचरितम् में वात्सल्य प्रेम का प्रकर्ष	डॉ. शैलजा रानी अग्निहोत्री	67-72
15. भारतीय संस्कृति और स्त्रीवादी साहित्य	डॉ. ममता शर्मा	73-77
16. तीर्थ एवं उनके प्रकार	योगेश स्वरूप ब्रम्हाचारी, डॉ. कमलेश कुमार थापक	78-80
17. आधुनिक हिंदी दक्खिनी कवि सुलेमान खतीब	डॉ. अब्दुल वसीम फातेमा अब्दुल अजीज	81-85
18. जनतंत्र की विफलता की अभिव्यक्ति 'संसद से सड़क तक' के सन्दर्भ में	डॉ. एन.आर. सजिला	86-90
19. INTRODUCTION TO ENGLISH PROSE WITH SPECIAL REFERENCE TO NIRAD C CHAUDHARY	POONAMYADAV	91-97
20. उत्तराखण्ड में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता	रुचि पन्त	98-102
21. ढोलन कुंजकली में लोकगीत चित्रण	विनोद कुमार गुप्ता, डॉ० आदित्य कुमार गुप्त	103-109
22. ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य के नवसृजित आयाम	विक्की, डॉ. सीमा अग्रवाल	110-113

23. लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य का अंतर्संबंध	डॉ. देविदास भिमराव जाधव	114-117
24. Media Influence on WASH Awareness and Behavior in Rural Etah, Uttar Pradesh, India	Dr. Rajni Yadav, Ghanshyam Singh Yadav	118-128
25. THE PERFORMANCE OF BOYS AND GIRLS FOOTBALL PLAYERS OF JAIPUR REGION	Ms. Monika Pundhir, Dr. Surjeet Singh Kaswan	129-133
26. निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन	आरती भांभू, डॉ. सुमन कुमारी	134-139
27. 'आत्मा' - एक संक्षिप्त परिचय	डॉ. सुनीता कुमारी	140-144
28. स्त्री विमर्श की अवधारणा	के. एम. प्रतिभा, डॉ० सत्येन्द्र कुमार	145-147
29. विकलांगता केंद्रित उपन्यास 'इनबॉक्स' और हिंदी उपन्यासों में विकलांगों की सामाजिक मनोदशा	स्मृति कुमारी	148-151
30. प्रो. 'आदेश' कृत 'रघुवंश-शिरोमणि श्रीराम' में सीता का चरित्र	डॉ. राजल गुप्ता	152-157
31. आदिवासी समाज का स्वरूप	गुलशन कुमार, डॉ. सत्येन्द्र कुमार	158-161
32. योगीनां योगः कदादुःखहा	डॉ. सुरेशः कुमारः पन्डा	162-165
33. सनातन धर्म और सामान्य धर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध : एक अध्ययन	निशान, डॉ० नीलम रानी	166-169
34. Mindfulness In Relation to Cognitive Distortion Among Adolescents	Prof. (Dr.) Aruna Anchal, Ms. Surinder Kaur	170-177
35. मानव जीवन में मनोविज्ञान का महत्व	अंशुमान अंशु	178-182
36. जयनंदन के कथा साहित्य में सांस्कृतिक परिदृश्य : वैश्वीकरण के संदर्भ में	Roshma B.S.	183-184
37. प्रिंट मिडिया के समक्ष डिजिटल माध्यमों से आती चुनौतियाँ	डॉ. मोनिका यादव	185-187
38. सूर्यनाथ सिंह के उपन्यास 'चलती चाकी' और 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में व्यक्त गाँव, समाज और राजनीति का अध्ययन	डॉ. राजेश राव	188-192
39. कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना	धर्मेन्द्र कुमार गोंड	193-197
40. प्राचीन भारत और विज्ञान	नीहारिका देशमुख	198-201
41. भारत की ज्ञान परंपरा	राखी	202-207
42. लोकतंत्र में निष्पक्ष मीडिया की भूमिका	डॉ. वीना पाहूजा	208-210

सम्पादक की कलम से.....



अनुरूप ही कार्य करती हैं।

हाशियाकृत किन्नर समाज आज के समय में समाज, राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। सरकार द्वारा इनके उत्थान के लिए अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं जिससे इस समाज के लोग अपने परम्परागत मांगने की प्रवृत्ति को त्यागकर स्वरोजगार के साथ-साथ सरकारी, गैर सरकारी क्षेत्रों में नौकरियां कर रहे हैं। एक भाषा का साहित्य जब दूसरी भाषा में अनुवादित होकर उस भाषा के जानने वाले लोगों के पास पहुंचता है तो दो भाषा का ज्ञान, संस्कृति का आदान-प्रदान होता है। जिससे मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि होती है। विश्व में दूसरे नम्बर पर सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिन्दी आज केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं रह गई है बल्कि यह रोजगार देने वाली भाषा भी बन गई है। आज हमारे देश में अनेक विदेशी कम्पनियों ने अपने औद्योगिक कारखाने स्थापित किए हैं इनमें बनने वाले उत्पादों को बेचने के लिए कम्पनियों को विज्ञापन हिन्दी भाषा में जारी करने पड़ते हैं ताकि अधिक से अधिक लोगों पर यह अपने उत्पादनों की जानकारी पहुंचा सके।

विदेशों में भी हमारे देश के अनेक व्यक्ति निवास करते हैं जिस कारण वहां के देशों में भी हिन्दी अनुवादकों की आवश्यकता पड़ती है। वहां पर भी रोजगार के अच्छे अवसर हैं।

नवम्बर माह के अंक में देशभर के शोधार्थियों, प्राध्यापकों ने अपने-अपने उच्च कोटि के शोध आलेख प्रकाशनार्थ भेजे हैं। साहित्य में आदर्श और यथार्थ, जैन धर्म दर्शन, भक्ति साहित्य, मानव संसाधन में शिक्षा की भूमिका, भारतीय संस्कृति तीर्थ, लोक गीत, व्यक्तित्व विकास, मिडिया आदि से लेकर प्राचीन भारत में विज्ञान जैसे खोजपूर्ण विषयों पर विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है। पत्रिका को बहुउपयोगी, बहुभाषिक बनाने में आप सभी विचारकों, लेखकों का अमूल्य योगदान है। आप सभी के प्रयास से ही पत्रिका लगातार गतिमान हैं। आप सभी के सहयोग से ही पत्रिका विभिन्न विषयों पर विशेषांक आदि प्रकाशित कर शोध के क्षेत्र में अपना स्थान बना पाई है। हमारी समिति की प्रथम दिन से ही यह योजना थी कि कम लागत पर शोधार्थियों, प्राध्यापकों, विद्वानों को शोध साहित्य उपलब्ध करवाया जाये जिसके लिए हम निरंतर प्रयासरत हैं। वर्ष 2015 से प्रकाशित पत्रिका समय-समय पर महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के सहयोग से ऑनलाईन, ऑफलाईन विचार गोष्ठियों, सेमिनारों आदि में प्रस्तुत उच्च कोटि के शोध आलेखों को नियमित प्रकाशित कर रही है। आप सभी का यह सहयोग हमें प्राप्त होता रहे यही कामना आप सभी से हम करते हैं।

—डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट



जयशंकर प्रसाद के साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद

डॉ. महादेव चिन्तामणि खोत

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

श्रीकृष्ण महाविद्यालय, गुंजोटी, उमरगा, जिला—उस्मानाबाद, महाराष्ट्र—413606

कवि जयशंकर प्रसाद जी हिन्दी साहित्य के सर्वतोन्मुखी प्रतिभावान लेखक, कवि तथा विचारक थे। जयशंकर प्रसाद हिन्दी के ऐसे रचनाकार हैं जिनके सामने आदर्श और यथार्थ दोनों हिन्दी साहित्य में विकसित हुये। छायावाद के पूर्व द्विवेदी युग में आदर्शवादिता की पराकाष्ठा थी और छायावाद के पश्चात् यथार्थवाद का विकास क्रमिक रूप से हुआ। सन् 1918 ई. से 1936 ओर इसी सन्धिकाल में प्रेमचन्द हुये तो दूसरी ओर प्रसाद और निराला तीनों रचनाकारों के साहित्य में आदर्श और यथार्थ का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है इनमें प्रसाद जी के काव्य पर आदर्श का प्रभाव है तो उनकी औपन्यासिक रचनाओं पर यथार्थ का प्रभाव है।

आदर्शवाद का स्वरूप— आदर्श इस वास्तविक जगत की वस्तु है, क्योंकि संसार के असत्य और अन्याय से भिन्न इसमें सत्य और न्याय की ही सदा विजय दिखाई जाती है।

सृष्टि की जब प्रत्येक प्रक्रिया, प्रत्येक घटना, प्रत्येक व्यापार अपने निरन्तर साहचर्य के कारण इतने निकट आ जाता है कि सुन्दरतर और सुन्दरतम् स्वरूप की कामना करते हैं। इसलिये उसकी संज्ञा अलौकिक हो जाती है। जब तक हमारा व्यापार लौकिक रहता है, सर्वजन सुलभ रहता है, तब तक वह यथार्थ होता है परन्तु जब आदर्श हो जाते हैं। हमारे आदर्श कल्पना प्रसूत होते हैं। मनुष्य उच्चतर और उच्चतर से उच्चतम् बनने की कामना के साधना के जिन-जिन स्वरूपों का विधान करता है उनसे आदर्श रूप का निर्माण होता है। मनुष्य का यथार्थ जीवन सुख और दुःख का मिश्रण है और अनेक विषमताओं से पूर्ण हैं जब तक उसके जीवन में कोई विशेषता नहीं आती उसका जीवन साधारण रहता है। परन्तु यथार्थ के आवरण को तोड़ फेंकना है और ऐसे संसार की सृष्टि करता है जो वर्तमान से पूर्ण भिन्न होता है तो आदर्शों का निर्माण होता है।

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार— “आदर्शवाद आदर्श पत्रों का शील और स्वप्न अभिव्यक्त करने के लिये आदर्शोन्मुख रचनाओं में स्पष्ट ही दो पक्ष रखते हैं। एक होता है सत्पक्ष और दूसरा असत्पक्ष। उसी असत्पक्ष का विस्तार के साथ ऐसा वर्णन किया जाता है जिससे उसके प्रति घृणा या विरक्ति उत्पन्न हो जाये। विरक्ति जगाने का प्रयोजन होता है कि सत्पक्ष के प्रति उद्बद्ध श्रद्धा को अधिकाधिक परिपुष्ट करना। अन्त में इन काव्यों का लक्ष्य नहीं निकालता है कि—सज्जनवत आचरण करना चाहिये, दुर्जनवत नहीं।”

साहित्य में सर्वत्र आदर्श की ही स्थापना रहती है। साहित्य में जीवन के विविध भावों का चित्रण किया गया है। काव्य शास्त्र के अनुसार साहित्य का उद्देश्य अनिर्वचनीय आन्दानुभूति अथवा क्योंकि इसकी केवल

अनुभूति होती है तथा यह अनुभूति भी निर्मल और परिष्कृत मनोभावों द्वारा ही हो सकती है। इस प्रकार काव्य का प्रयोजन विचार परिमार्जन अथवा भाव परिष्कार है और यही कार्य आदर्शवाद के द्वारा भी सम्पन्न होता है। आदर्श का कथन है कि साहित्य में जीवन के आदर्श रूप का चित्रण होना चाहिये क्योंकि जीवन के गर्हित और कलुषित रूप के चित्रण से समाज और व्यक्ति की हानि ही होती है। साहित्यकार का लक्ष्य सदाशिव की भावना होती है, और सत्य यथा शिव सुन्दर के स्वभाविक गुण है। वास्तव में जो साहित्य जनहितकारी होता है वही 'साहित्य' नाम से अभिहित किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आदर्शवादी साहित्य में नीति, न्याय और मर्यादा को प्रधानता दी जाती है। तथा इसमें निहित मानव जीवन का पावन, आदर्शमय भव्य रूप दिखाया जाता है।

आदर्शवाद हमारी दृष्टि की संकीर्णता धोकर उसे बिखरे यथार्थ के भीतर छिपे हुये सामंजस्य को देखने की शक्ति देता है। आदर्शवाद भूतकाल की नींव पर ही भविष्य काल का महल खड़ा कर सकता है और उसे वर्तमान काल में प्राणान्वित करता है। आदर्शवाद की रुच अत्यन्त परिष्कृत और व्यापक होने से एक उच्च विश्वासों एवं सात्विकता को ही महत्व देता है और इस प्रकार समाज में तदविश्वासों को पुष्ट करता है इस प्रकार के साहित्य में प्राचीन परिपाटी का अनुमन तथा वर्तमान जीवन के उत्थान की भावना पायी जाती है स्वभाविक है कि हमें भूतकाल के आदर्शों के साथ-साथ वर्तमान और भविष्य के व्यवस्थित निर्माण के लिये भी आदर्शवाद की आवश्यकता अनिवार्य रूप से रहती है। अतः जीवन तथा समाज के कल्याण की दृष्टि से साहित्य में आदर्शवाद का ग्रहण आवश्यक मानना चाहिये।

हिन्दी साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद का मूल प्रश्न गद्य-साहित्य में उठ खड़ा होता दिखाई देता है, जिसकी स्थापना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कर चुके थे और परिष्करण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया था।

कलाकार साहित्य लिखता है तब समाज से ही प्रेरणा लेता है। समाज के लिये ही साहित्य का सर्जन होता है। इसी कारण उनका मुख्य प्रधान उद्देश्य भी है, प्रेम की परिधि को विस्तृत करना। भावों को रसात्मक रूप में प्रस्तुत करके साहित्यकार सौन्दर्य की सृष्टि करता है। इस सौन्दर्य सृष्टि से पाठक का मन प्रेम पूर्ण होता है, तथा प्रकाशमय होता है। इसलिये साहित्य ही मन का संस्कार होता है। विशुद्ध प्रेम की आत्मा का असली भोजन है। मनोरंजन तो यथार्थवाद से हो सकता है पर मानसिक तृप्ति अथवा आत्म परिष्कार के लिये साहित्य में आदर्शवाद भी आवश्यक है।

यथार्थवाद का स्वरूप—कोई साहित्यकार किसी वस्तु घटना या भाव को जिस रूप में देखता है, उसी रूप में वह उसका वर्णन कर देता है तो उसे हम यथार्थ कहते हैं। आज के साहित्य को सच्चे अर्थ में समाज का चित्रण कहलाने की क्षमता यथार्थवाद से ही मिली है। इसी कारण साहित्य का क्षेत्र भी विकसित विस्तृत हुआ है। नवीन वर्णन भूमियां मिली हैं व्यक्ति के बास क्रियाकलापों एवं असंगतियों के मूल स्रोतों तक पहुँचकर उनके चित्रण की क्षमता प्राप्त हुई है और मानव जीवन असंख्य रूपों में चित्रित होने लगा है। यथार्थवाद में कोरी फोटोग्राफी नहीं होती, उसमें कलाकार की सृजनशीलता और कल्पना शक्ति का योगदान निहित रहता है। यथार्थवाद में जीवन की यथार्थता के विविध रस पहलुओं का उद्घाटन किया जा सकता है। जैसे—आशा—निराशा, हर्ष—विषाद, सम्पन्नता—अभावग्रस्तता आदि मनुष्य के जीवन की यथार्थता के अंग हैं। इन अंगों को साहित्यकार साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। परिणाम स्वरूप जीवन जितना जटिल हो जाता है, यथार्थ उतना ही

अनेक रूपात्मक हो जाता हैं।

साहित्यिक यथार्थवाद में साहित्यकार की संवेदनशीलता और उसके अनुरूप प्रक्रियाओं की रेखाओं का भी योगदान रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि यथार्थवादी कलाकार की दृष्टि मूलतः यथार्थ चित्रण के लिये ही होती है। यथार्थ जीवन को चित्रित करते समय यथार्थवादी कलाकार उसे कला के माध्यम से मोड़ने का प्रयास करता है। इसीलिये यह कहना उचित होगा कि जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद है।

यथार्थवाद में जीवन की सभी समस्याओं, परम्पराओं, घटनाओं, रहन-सहन के तौर तरीकों, जाने-पहचाने क्षुद्र स्वरूपों और प्रिय-अप्रिय जीवन-प्रसंगों को चित्रित किया जाता है। यथार्थवाद के अन्तर्गत युग तथा जनसमूह की सच्ची भावना होती है। जो साहित्यकार इस भावना का यथार्थ चित्रण अपनी रचना द्वारा प्रस्तुत करता है वही युग का महान लेखक होता है। यथार्थवाद इतिहास नहीं है, जो इतिहास की भाँति किसी घटना का वर्णन मात्र करके घटना की सूची तैयार करे। यथार्थवाद कैमरा भी नहीं है, जो वस्तु उसके सामने जिस रूप में आये उसका हूबहू चित्र उपस्थित कर दे। यथार्थवाद का एकमात्र लक्ष्य है वस्तु जगत की स्थितियों को समक्ष रखते हुये सुंदर और असुंदर स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख करना।

यथार्थवाद एक आंदोलन के रूप में तभी उभर आता है जब साहित्य की अनेक विध विधाओं के माध्यम से यथार्थ प्रस्तुत किया जा सके। जैसे अनेक नदियों से सागर बन जाता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य की विविध विधाओं में यथार्थ विषय किया जाये तो यथार्थवाद बन जाता है।

यथार्थवाद की विशेषतायें - उमेश शास्त्री जी के अनुसार यथार्थवाद की प्रमुख विशेषतायें -

- यथार्थवाद भौतिकवाद के रूप में अस्तित्व रखने वाली वास्तविकता को व्यक्त अथवा चित्रित करता है।
- यथार्थवाद आदर्शवादी विचारधारा का विरोधी है।
 - यथार्थवाद कल्पना से दूर रहता हैं।
 - यथार्थवाद आधुनिक और लोकप्रिय वस्तुओं का चयन करता है।
 - यथार्थवाद किसी प्रकार के बंधनों, मर्यादाओं अथवा सीमाओं का पक्षधर नहीं हैं।
 - यथार्थवाद स्थानीय दृश्य वातावरण की सद्भावना को व्यक्त करता है।
 - यथार्थवाद कला को कला के लिये नहीं बल्कि जीवन की अभिव्यक्ति के लिये स्वीकारता है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद का समन्वय-यथार्थवाद यदि आँखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। इस प्रकार साहित्य में दोनों की यथायोग्य आवश्यकता है, इसलिये दोनों में से किसी एक का त्याग या निषेध स्वस्थ साहित्य की रचना के लिये सर्वथा हानिकारक है।

आदर्शवाद और यथार्थ एक दूसरे के विरोधी नहीं पर परस्पर पूरक है। दोनों के उचित मात्रा के मिश्रण से ही उच्चतम कला बन सकती है। सच पूछा जाये तो यथार्थवाद और आदर्शवाद एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान है। वे परस्पर पूरक होकर ही किसी रचना को कलात्मक बनाते हैं। भारतीय दर्शन, साहित्य, कला, धर्म और जीवन इन पाँचों को ठीक ढंग से समझा जाये, तो यथार्थ और आदर्श का सन्तुलन और समन्वय से ही इनका रूप सम्पादित हुआ है।

हमने आदर्श और यथार्थ की इतनी लम्बी विशाल पृष्ठभूमि देखी और हमें जो विश्लेषण करना है वह

जयशंकर प्रसाद जी की सभी विधाओं का विश्लेषण करता है। खासकर प्रसाद जी के साहित्य में यथार्थ और आदर्श का उपयोग किस रूप से किया है। प्रसाद जी रूयंभी अपने निबन्ध में कहते हैं— “भारतेन्दु कला ही में इसका उदय हो चुका है। नीलदेवी, भारत दुर्दशा इत्यादि में राष्ट्रीय अभावमयी वेदना भी अभिव्यक्त हुई है।”

“यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधानता है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुये सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के लिये काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख।”

प्रसाद जी के नाटकों में आदर्श और यथार्थ—नाटक साहित्य का अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं समृद्ध अंग है। हिन्दी नाट्य कथा को एक प्रशस्त पथ और गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय विशेषतः प्रसाद जी को है। हिन्दी नाटक साहित्य के इतिहास में प्रसाद जी का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रसाद जी का सांस्कृतिक एवं रोमान्टिक दृष्टिकोण हिन्दी नाटक की विशिष्ट उपलब्धि है।

“प्रसाद युग हिन्दी नाटकों के इतिहास में उत्थान का स्वर्ण युग है। इसी युग में प्रसाद जी ने भारती के मन्दिर में नाटकों की दिव्य भेंट चढ़ाई। नाटकों को स्वस्थ, साहित्यिक, कलापूर्ण, स्वाभाविक मौलिक रूप देने का सर्वप्रथम श्रेय प्रसाद जी की प्रतिभा को है। प्रसाद युग में हिन्दी नाटक कला शैली, टेकनिक आदि की दृष्टि से पूर्ण विकास को पहुँची है।”

प्रसाद जी के नाटकों में प्रायः पात्रों की प्रचुरता है। क्षमा और सौजन्य इनके नायकों की विशेषता है। प्रसाद जी का साहित्यिक कलाकार अपने उद्देश्य के अनुसार स्वच्छन्दतावादी, यथार्थवादी प्रवृत्ति को प्रस्तुत कर सकता था। हाँ यह सही है कि उनकी आत्मा कितनी स्वच्छन्दतावादी में रमती है उतनी यथार्थ में नहीं।

प्रसाद जी के नाटकों में आदर्श पात्रों के विरोध में यथार्थ पात्रों की अवधारणा अपेक्षाकृत अधिक मानवीय धरातल पर हुई है। इन पात्रों में भारतीय पक्ष अपने सहज एवं स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हुआ है। चरित्र—चित्रण के क्षेत्र में प्रसाद का एक निश्चित विधान एवं मूर्त क्रम है, जिसमें उनके अद्भुत कौशल के दर्शन सहजता से हो जाते हैं। इनके सभी नाटकों में संस्कार और परिस्थितियों का उचित संयोग पाते हैं। प्रसाद संस्कारों के आधार पर परिस्थितियों के सहारे चरित्र का पूर्ण चित्र उपस्थित कर देते हैं।

प्रसाद जी के उपन्यासों में आदर्शवाद और यथार्थ—साहित्य की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा ‘उपन्यास’ आधुनिक युग की देन है। जो प्राचीन काल में महाकाव्यों का था, वही आज ‘उपन्यास’ का है।

प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को दो पूरे और एक अधूरा उपन्यास दिया। तीनों उपन्यास हिन्दी उपन्यास की तीन परम्परा का सूत्रपात करते हैं। ‘कंकाल’ यथार्थवादी उपन्यास है। वहीं ‘तितली’ आदर्शवादी उपन्यास है और ‘इरावती’ में ऐतिहासिक धारा का सूत्रपात है। यदि वह पूर्ण हो पाया होता तो हिन्दी का पहला सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास होता।

यथार्थवाद की परिभाषा करते हुये स्वयं प्रसाद जी ने अपने यथार्थवाद निबन्ध में कहा है— “उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है— उस व्यापक दुःख संचालित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुरता से आते हैं।”

प्रसाद जी का यथार्थ समाज में सच्चाई का भान कराने वाला यथार्थ है न कि समाज की घृणित या

तिरस्कृत करने वाला या घृणा फैलाने वाला यथार्थवाद नहीं है। उनका यथार्थ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है। इस प्रकार प्रसाद जी ने जीवन के यथार्थ को बिना हिचकिचाहट पेश करके सच्चे मूल्यों वाले वास्तविक आदर्श को यहां दर्शाया है।

प्रसाद जी की कहानियों में आदर्शवाद और यथार्थवाद—हिन्दी प्रसाद जी ने कहानियों के द्वारा हिन्दी कहानी के ढाँचे को पूर्णतया बदल दिया। प्रसाद जी ने कहानी कला को नया मोड़ दिया और नया कलेवर दिया। सन् 1926 तक प्रसाद जी की कहानियों को हम प्रयोग कालीन युग कहानी साहित्य में स्थान दे सकते हैं। इस काल की कहानियाँ 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' नामक संग्रहों में संकलित है। इन दोनों संग्रहों में संकलित कहानियों की संख्या 26 है। 'छाया' का प्रथम संस्करण सन् 1912 और द्वितीय संस्करण सन् 1918 में तथा 'प्रतिध्वनि' सन् 1926 में प्रकाश में आया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रसाद की महान प्रतिभा के लेखक थे। काव्य और गद्य में उनकी समान गति से कलम चलती थी। इतिहास और वर्तमान पर समान दृष्टि रखने वाले प्रसाद जी आदर्श और यथार्थ के विभिन्न रूपों का कुशल उपयोग करने में भी समर्थ थे। प्रसाद जी हिन्दी साहित्य का गौरव थे।

संदर्भ :-

1. उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद—साहित्य सागर प्रकाशन, कानपुर।
2. प्रसाद साहित्य में आदर्श और यथार्थ—सरस्वती प्रकाशन, कानपुर।
3. जयशंकर प्रसादकृत 'चन्द्रगुप्त' : एक अनुशीलन—श्रीराम प्रकाशन, कानपुर।



समसामायिक हिन्दी साहित्य और किन्नर विमर्श

डॉ० ज्योति पटेल

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

सार :-

आज के साहित्य के केन्द्र में विभिन्न प्रकार के विमर्शों ने विशेष स्थान प्राप्त किया है। जिनमें स्त्री विमर्श दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त समाज में वह तीसरी धुरी भी आती है। जो समाज में उपस्थित तो है परन्तु बड़ी ही चालाकी से उसे हाशिये पर ढकेल कर उसके अस्तित्व को नकार दिया गया है। किन्नर साहित्य पौराणिक काल से हमारे साहित्य व समाज में उपस्थित है, परन्तु इस सभ्य कहे जाने वाले समाज ने उन्हें कभी नहीं अपनाया, बल्कि उनकी पीड़ा को समझे जाने बिना हमेशा उनका मजाक ही उड़ाया है।

ये हिजड़े किसी परिवार में बच्चे के जन्म विवाह के अवसर पर नाच गाकर बधाईयाँ व आशीर्वाद देकर कुछ रूपये लेकर विदा हो जाते हैं। किन्नर एक तरफ भिक्षावृत्ति से जीवन यापन के लिए तो दूसरी तरफ वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश हो जाते हैं।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लगभग 1960 ई के बाद अनेक विमर्शों का जन्म हुआ जैसे दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, सत्ता विमर्श आदि। 21वीं सदी के प्रारंभ होते ही अनेक नित्य विमर्शों ने जन्म लिया, लेकिन इन दो दशकों में जिन दो विमर्शों पर विशेष चर्चाएँ हुईं, वह हैं विकलांग विमर्श एवं किन्नर विमर्श। साहित्य में किन्नर समुदाय पर सर्वप्रथम चर्चा हिन्दी की प्रख्यात लेखिका नीरजा माधव कृत उपन्यास 'यमदीप' से होती है। तदुपरांत कुछ-कुछ अंतराल पर साहित्य जगत में विभिन्न विधाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें प्रमुख हैं- यमदीप, तीसरी ताली, नालासोपारा, मैं पायल हूँ मैं औरत हूँ, गुलाम मंडी, किन्नर कथा, जिन्दगी 50-50 अस्तित्व, दरमियाना, आधा आदि इत्यादि।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम किन्नर केंद्रित उपन्यास नीरजा माधव कृत "यमदीप" (2002) प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखिका ने किन्नरों के जीवन की अंतरात्मा गहराइयों को समाज के सामने उकेरा है।

रेशमा चार साल की थी जब उसके माँ बाप ने कानपुर स्टेशन पर छोड़ दिया था आज उसकी उम्र 28 साल की है। पिछले 24 सालों से वह ऐसी सजा भूगत रहीं हैं क्योंकि वह एक किन्नर है, वही किन्नर जिसे हमारा समाज कौतुहल से देखता है।

हिन्दी साहित्य जगत में अपनी अप्रतिम जगह बना चुकी वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुदगल का यह उपन्यास विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के बहाने हमारे समाज में लम्बे समय से चली आ रही उस मानसिकता का विरोध है।

जो मनुष्य को मनुष्य समझने से बचाती रही है यह अमीर गरीब का पुराना टोटका नहीं महज शारीरिक कमी के चलते किसी इंसान के सामाजिक बना देनी की कूर विडम्बना है। अपने ही घर से निकाल दिए गये विनोद की मर्मांतक पीड़ी उसके अपनी बा को लिखे पत्रों में इतनी गहराई से अजागर हुई।

नीरजा माधव ने अपने उपन्यास 'भयदीप' के तृतीय लिगीं पात्रों के माध्यम से समाज में रह रहे लोगों की इंसानियत पर एक तमाचा मारा है। उपन्यास की शुरुआत एक घटना से होती है जिसमें एक पगली जो कि गर्भवती थी और रेलवे लाइन के पास खून से लथपथ पड़ी हुई थी, उसकी प्रसव की पीड़ा आस-पास के लोगों को महसूस नहीं हो रही थी। इतना ही नहीं वहाँ खड़े लोग उसे देख तो रहे थे किन्तु कोई उसकी मदद नहीं कर रहा था। इतने में ही नाजबीबी और उसकी टोली के सदस्य वहाँ पहुँचते हैं और लोगों से मदद की गुहार करते हैं किन्तु सभी अपना-अपना मुँह घुमा कर वहाँ से चले जाते हैं। आखिरकार नाजबीबी के मुख से यह शब्द निकल पड़ते हैं।

इस पगली के लिए तुम्हारी अम्मा बाहर नहीं आ सकती और तुम्हारे ही बाप दादों ने रात-रात में आकर मुँह काला किया होगा "हाय-हाय रे! मर्दों का जमाना।"

तृतीयलिगीं समुदाय के लोगों से आर्शीर्वाद प्राप्त करने के लिए विवाह और जन्म आदि शुभ अवसरों पर इनका थोड़ा बहुत सम्मान भले ही किया जाता हो, किन्तु जन्म और शादी विवाह आदि जैसे शुभ मौकों को छोड़ दिया जाए तो आम जीवन में इन तृतीयलिगीं समुदाय के लोगों की उपस्थिति असहा और निंदनीय समझी जाती है। निर्मला भुराडिया के उपन्यास 'गुलामंड़ी' में इस बात का जिक्र बहुत ही सहज रूप से किया गया है और इन तृतीयलिगीं समुदाय की तुलना लेखिका ने कौवों से की है जिन्हें हिन्दू धर्म के अनुसार समाज में विशेष आयोजनों जैसे श्राद के दिनों में तो खीर-पुड़ी खिलाई जाती है। किन्तु सामान्य दिनों में इन कौओं को अपशगुन माना जाता है।

प्रदीप सौरभ की "तीसरी ताली" में गौतम अपने बेटे विनीत को कुछ दिनों तक लोगों की दृष्टि से बचाता है लेकिन अंततः सामाजिक अवहेलना के कारण उसे बच्चे को त्यागना पड़ता है। इस उपन्यास में समलैंगिकता लिंग परिवर्तन, असली-नकली किन्नरों की समस्याओं को व्यक्त किया गया है।

इसी तरह कुसुम असल की कहानी "ई मुर्दन का गाँव" में भी लैंगिक विकृति से पीड़ित लोगों की व्यथा को उजागर किया गया है। इस कहानी का पात्र सीलामा कहती है, "भाग्य की बात है, हम जब अलिगीं पैदा हुए हैं और किन्नर गुरु जया कहती है कि जन्म किसी के बस की बात नहीं है अतः सबको जीने का अधिकार मिलना चाहिए बाँझ औरते हमारे पास बच्चे की कामना से आती है और ताज्जुब हमारा आर्शीर्वाद फलता भी है। किसी बच्चे का जन्म हमारे नाच गाने के बिना पूरा नहीं होता। नीरजा माधव के उपन्यास 'यमदीप' में मानवी और आनंद कुमार के माध्यम से किन्नरों से सम्बंधित ऐतिहासिक संदर्भों को रेखांकित करने के साथ-साथ उनकी समस्याओं एवं मानसिक यातनाओं को उजागर किया गया है। उनका यह मानना है कि यदि किन्नरों की अवहेलना करने के बजाय उन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जाए तो वे अपनी पारंपरिक भूमिका से बाहर आ सकेंगे और स्वतंत्र रूप से इज्जत से जीवनायापन कर सकेंगे।

डॉ० अनसूया त्यागी के "मैं भी औरत हूँ" का स्थान इस दृष्टि से दूसरे उपन्यासों से अलग महत्व वाला है क्योंकि इसकी लेखिका स्वयं स्त्रीरोग एवं पृसूती विशेषज्ञ हैं। उन्होंने ऐसी दो बहनों की कहानी लिखी है जिन्हें

स्वयं या उनके परिवार को लंबे समय तक उनके तृतीय लिंगी होने का आभास तक नहीं होता। पता चलने पर दोनों का ऑपरेशन कर उन्हें स्त्री रूप दिया जाता है। बड़ी बेटी तो पूर्णतः स्त्री बन जाती है और आगे चलकर संतान को भी जन्म देती है लेकिन छोटी बेटी संतान उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती लेकिन सुखी दांपत्य जीवन जी पाती है। घर परिवार में यदि कोई बच्चा शारीरिक रूप से विकलांग पैदा होता है तो उसे अपनाने में माता-पिता नहीं हिचकते लेकिन किन्नर पैदा होने पर उसे समाज के डर से पैदा होते ही त्याग दिया जाता है। माँ की ममता भले ही उसे बच्चे को अपनाने के लिए तैयार हो जाती है तो भी उसे ऐसा करने नहीं दिया जाता है।

किन्नर समुदाय के लोग सिर्फ समाज में नर-नारी के समान अपनी हिस्सेदारी चाहते हैं। समाज की अस्वीकृति के कारण ही वे अपने अस्तित्व के लिए आज तक संघर्ष कर रहे हैं। वर्तमान युग अस्मिता का युग है, अपनी पहचान का युग है, इस युग में स्त्री दलित आदिवासी, वृद्ध आदि विमर्श अपनी पहचान अपने अस्तित्व को स्थापित करने में लगे हुए हैं और सफल भी हुए हैं। किन्तु किन्नर अर्थात् हिजड़ा समुदाय अपनी पहचान के लिये संघर्ष अभी पूरी तरह से नहीं कर पा रहे हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ठीक ही लिखा है। साहित्य के माध्यम से विमर्शों ने अपनी अस्मिता की पहचान की है। अगर हम 21वीं सदी की बात करें तो साहित्य में किन्नर विमर्श अपनी अस्मिता की पहचान के लिए प्रयत्नशील है इसके बावजूद भी हमारे भारतीय समाज और किन्नर समुदाय के बीच एक बहुत बड़ी दीवार खड़ी है। यह समाज हर समय इन पर चोट करता है।

इस समाज से इतना तिरस्कार मिलने के बाद अब ये समुदाय अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है साहित्यकार अपनी बेजोड़ लेखनी के द्वारा इस विशेष समुदाय के सामाजिक जीवन, उनकी समस्याओं को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। लेखिका चित्रा मुदगल पोस्ट बाक्स न0 203 नाला सोपारा" के माध्यम से कहती है कि साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से शिक्षा रोजगार सम्पत्ति ऋण बूटों को पेंशन दिलवायेंगे। साहित्य में प्रदीप सौरभ द्वारा लिखी 'तीसरी ताली' नामक किताब ने तो धूम मचाई थी ही, किन्तु अब लक्ष्मी नारायण सहाय द्वारा लिखी आत्मकथा "मैं लक्ष्मी में हिजड़ा" ने भी तहलका मचा दिया है। वर्तमान में ऐसे कई उदाहरण हैं जिन्होंने 21वीं सदी में किन्नरों की स्थिति पर दोबारा बहस छेड़ दी है फिर चाहें वह महाराष्ट्र की संतोष ही क्यों न हो। जो सब इंस्पेक्टर बनी है या फिर बंगाल के एक कॉलेज की किन्नर प्रिंसिपल। इसके अलावा सिल्वी (व्यूटीशियन) तथा मीणा किन्नर जिसने दीपक नामक राष्ट्रीय स्केटिंग हॉकी खिलाड़ी को पाला तथा इस काबिल बनाया कि वह देश के लिए कुछ कर सकें। इन्होंने यह साबित किया है कि किन्नर भी चाहे तो अपनी अलग पहचान बना सकते हैं।

निष्कर्ष :-

मनुष्य के जीवन में रिश्ते नाते बहुत महत्व रखते हैं किन्नर हो या याधारण बच्चा सभी रिश्ते के लिए तड़पते हैं। ऐसी स्थिति यदि उस बच्चे को घर से बेघर कर दिया जाए और उसे दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिया जाए तो वह आतंकित होगा और दूसरों को भी आतंकित करेगा। 'जेनेटिक डिफेक्ट' के कारण यदि कोई बच्चा किन्नर के रूप में पैदा होता है तो इसमें उसका क्या दोष है। उसे भी जीने का अधिकार है। आज समय के साथ सोच भी बदल रही है। कुछ किन्नर पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो रहे हैं। साथ ही दूसरों के

लिए भी राह दिखा रहे हैं। वे भी हर क्षेत्र में सक्रिय हो रहे हैं, अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, हाशिया छोड़कर केन्द्र में आ रहे हैं। फिर भी इस समाज को इन्हें अपनाने में वक्त लगेगा।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. माधव नीरजा (2009) –यमदीप (नई दिल्ली सुनील साहित्य सदन)
2. महेन्द्र भीष्म (2016) – मैं पायल (कानपुर)
3. डॉ. मोनिका शर्मा –अस्तित्व की तलाश में सिमरन।
4. प्रदीप सौरभ – तीसरी ताली (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)
5. लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी – मैं लक्ष्मी मैं हिजड़ा (मनोविकास प्रकाश मुंबई)
6. जनकृति पत्रिका, मई 2016



जैन धर्म एवं दर्शन

ऋषभ जैन, शोधार्थी

डॉ. विक्रम सिंह देओल, शोध निर्देशक सह— आचार्य

इतिहास विभाग, राजकीय बी. आर. अम्बेडकर महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

भारत वर्ष पुण्य धर्म स्थली है जहाँ आदिकाल से विभिन्न धर्म सम्प्रदायो ने अपनी ज्ञान भक्ति और तप की गंगा बहायी है। अनादिकाल से ही भारत भूमि पर तत्त्वचिंतकों ने अपने अपने अनुभवों के अनुसार उस परमात्म सत्ता का दिग्दर्शन किया है। गुढ़ से गूढेतर रहस्यो का उद्घाटन करते हुए परमत्ता का अवलोकन कराने वाले दर्शन—शास्त्र की आधार भित्ति, वेद, उपनिषद न होकर आश्चर्य जनक स्थिति अथवा मानव चिन्तन है। जिसने सर्वप्रथम मानव को अपने 'स्व' को जानने की जिज्ञासा प्रदान की। इन्ही जिज्ञासाओं प्रश्नों से उद्भूत आत्मगत भावों व विचारों का सैलाब मानवीय मस्तिष्क एवं अन्तःस्थल को आध्यात्मिक धर्म चिन्तना की ओर आकृष्ट करता हुआ दर्शन क्षेत्र की ओर बढ़ा। तत्पश्चात् और जीव और जगत् से पर कोई सत्ता है। जो उसे संचालित कर रही है। इसी की खोज ने मानवीय मन भूमि व मेधा को विदलित जिससे जन्म हुआ धर्म एव दर्शन का। पाश्चात्या दार्शनिक अरस्तु का कथन है।

वेदान्तार भूमिका ज्ञान मार्ग और भक्ति की समष्टि का नाम मार्ग है। मानव कल्याण के लिए सम्पूर्ण गुणों गुणों के आवरण से आवृत्ता है तो दर्शन मानव के अंतद्वन्दो से आलोकित विचार परिधि से उत्थित होकर रहस्यी परमसत्ता के साक्षात्कार को इंगित करने वाला प्रकाश पुंज है। दर्शन सर्वात्मता की ओर जीवन के पयाग को प्रेरित करता है। तथा धर्म उस प्रेरणा की गति प्रदान यदि धर्म आध्यात्मार्ग की आत्मा है जैन धर्म प्राकृतिक, शाश्वत आदि अनादि निधन धर्म है। जैन धर्म दो शब्दो से मिलकर बना है। एक शब्द है जैन और दूसरा शब्द है धर्म है जिन ईश्वरीय अवतार नहीं होते वे तो स्वयं अपने पौरुष के बल पर अपने काम कोध को जीतकर जिन बनते है। इस दृष्टि से जिन शब्द का अर्थ हुआ। स्वयं को जीतने अपने आत्मिक विचारों पर पूरी तरह से विजय प्राप्त कर राग, द्वेष छोडकर जिन के बताये गये मार्ग पर चलते है। और उनकी आज्ञा का पालन करते है। वे जैन कहलाते है। जैनो के धर्म को जैन धर्म कहते है। विभिन्न धर्मों में धर्म की व्याख्या अलग—अलग की गई है। जैन धर्म के अनुसार वत्थु सहायो धम्मो अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। खंमादिभावों य दसविहों धम्मो अर्थात् क्षमा आदि 10 भावों को भी धर्म कहते है।

उत्तमं सुखे धरतीति: धर्मः ।

अर्थात् धर्म वही है जो उत्तम सुख मोक्ष की ओर ले जाये। चारित्रं खलु धर्मो चारित्र को भी धर्म कहा गया है। चारित्र त्रय निश्चय ही धर्म प्रभावना है क्योंकि चारित्र धारण किये बिना आत्मा से बद्ध पुद्गल कर्मों की निर्जरा सम्भव नहीं है।

निष्कर्षतः धर्म से तात्पर्य वस्तु के स्वभाव एवं चारित्र या आचरण से है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका कोई स्वभाव न हो जबकि चरित्र केवल चैतन्य आत्मा का रूप है। इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है। भारतीय तत्त्व चिंतको ने धर्म और दर्शन का एक साथ प्रतिपादन किया है। उन्होंने एक और जहा तत्त्वज्ञान की प्ररूपणा की कर दर्शन की प्रस्थापना की है वही दूसरी आचार—शास्त्रों के बल पर साधना का मार्ग प्रशस्त किया है। आचरण धर्म है तो वैचारिक ज्ञान दर्शन। अतः जब मानव विचारो की एकान्त गुहा में प्रवेश करता है। तो दर्शन जन्म लेता है। और जब विचारों को आचरण में ढालता है तब धर्म का प्राकट्य होता है अतः धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरा एकांगी और अपूर्ण है। दर्शन के आभाव में आचरण को नेत्र कहा। जब तक सत्य आचरण में दिव्य ज्ञान की जगमगाती ज्योति प्रस्फुटित होकर उसे आलोकित नहीं कर देती तब तक वह आचरण सही और गलत की भ्रमपूर्ण अंध गलियों में भटकता रहेगा। अतः दिव्य ज्ञान चक्षुओं के आलोक से प्रकाशित अन्तः स्थल की पावन गुहा में अदभूत पवित्र विचारों का दीप प्रज्वलित होता है तब दूर देश तक प्रसन्न किरण जाल से आच्छादित आचरण निश्चित होकर अध्यात्मा मार्ग की ओर प्रशस्त हो जाता है। तभी इन दोनों की समन्वयात्मक चरम साधना मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाती है। गुढतिगुढ रहस्यो को उद्घाटन हेतु युक्तिपूर्वक ज्ञानमयी चक्षुओ से देखे गये तत्त्वस्वरूप को दर्शन कहते है।

जैन दर्शन के अनुसार तत्वों का मूलाधार व्यक्ति का दैनन्दिन अनुभव है। इसलिए लोग इसे प्रत्यक्षवादी दर्शन मानते है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित जैन दर्शन छः द्रव्य सात तत्व, नौ, पदार्थ, आत्मा, परमात्मा, पुर्नजन्म, अनेकान्तवाद, स्वादवाद, 8—योगांग, 10—धर्म आदि को स्वीकार करता है जैन दर्शन अत्यन्त उदार एव भ्रमण संस्कृति का परिचायक है। श्रमण शब्द का प्राकृत एवं पालिभाषा में मूलरूप श्रमणश शब्द है। जिसके तीन भाव या अर्थ है।

1. समन 2. समन यह विकारों के शमन एवं शांति का सूचक है। यह समताभाव का सूचक है।
3. श्रमण यह तप, श्रम, एव पुरुषार्थ का सूचक।

जैन धर्म वैदिक कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं रखता न ही वैदिक देवी—देवताओं को स्वीकार करता है। उसका मानना है कि जीवन में सुख एवं दुःख उसके कर्मों का परिणाम है। प्राणमात्र के प्रति मैत्रीभाव गुणिजनो के प्रति, प्रमोदभाव, दुखी जीवों के प्रति करुणा भाव एवं विपरीत वृत्ति वाले जीवों के प्रति मध्य मध्यस्थ भाव का प्रतिपादन जैन दर्शन में हुआ है। जैन धर्म चार शरण का उल्लेख करता है। (1) अरिहन्तो की शरण (2) सिद्धों की शरण (3) साधु की शरण (4) केवल प्रज्ञप्तों की शरण। अतः जैन धर्म किसी अन्य देवी—देवता की शरण ग्रहण करने का अनुमोदन नहीं करता। जैन धर्म माँस, भक्षण, मदिरापान आदि के त्याग को श्रावक एवं साधु बनने की

प्राथमिक आवश्यकता बताता है। जैन दर्शन में परिग्रह—विरमण को महाव्रतों एवं अनुव्रतों में स्थान देकर आध्यात्मिक एवं सामाजिक कान्ति को शखनाद किया गया है जैन धर्म के अनुसार दुःख मुक्ति का मूल समस्त भौतिक पदार्थों के प्रति आसक्ति रूप परिग्रह का छुटना है। परिग्रह से विरक्ति गृहस्थ जीवन एवं अध्यात्म जीवन दोनों में विकास की दृष्टि से जरूरी हैं इस धर्म में जैन मुनियों व साधवियों के मध्य कठोर नियमों की आबद्धता तथा समय की दृढ़ता की गवेषणा स्थल—स्थल पर है। जितनी धर्म के प्रति कठोर नियम बद्धता यहा है। अन्यत्र किसी धर्म में नहीं यह सत्य है जैन दर्शन के तात्विक विवेचन की दृष्टि से यह अन्ततधर्मक वस्तु सिद्धान्त को मानता है। यहां सत्तान्वय सूचक गुण को श्वपर्याय और निषेधमुखेन सूचनीय गुण को पर पर्याय के नाम से पुकारा जाता है।

मनुष्य के लिए किसी वस्तु का वर्णन 'परपर्याय' करना संभव नहीं है। इसलिए स्वपर्याय से ही उसका निदेश करता है। परन्तु वस्तु का गुण वंश और कलादि के आधार पर इस श्वपर्याय के भी वर्णन अनेक है उदाहरणार्थ स्वर्ण के किसी गडुए को देखकर असंख्य विचार मन में उठते हैं। तथा असंख्य कथन होते हैं। यथा यह स्वर्ग का है। स्वर्ण को शुद्ध करके बनवाया गया है। स्वर्ण भी तो एक मिट्टी ही है। आदि—आदि। अतः वस्तुए तथा पदार्थ एकरूप नहीं वरन् अनेकरूपता को प्रकट करती है। तथा उन पर असंख्य दृष्टिकोण आधारित होते हैं पदार्थ के विभिन्न गुण जो उनकी सत्ता के अनुकूल है अथवा वे गुण जो निषेध मुखेन कहे जाते हैं। उनकी अनन्तता दृष्टिगत होता है। उसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ में सत् और असत् दोनों अशतः विद्यमान रहते हैं। यथा एक ही माटी के ढेले से बार—बार असंख्य वस्तुओं का निर्माण कर देना। पहली अवस्था को मिटाकर दूसरी को जन्म देना आदि परन्तु सभी अवस्थाओं में मिट्टी विद्यमान है और सभी अवस्थाओं के मिटने के पश्चात् भी उनका अस्तित्व नहीं समाप्त होता।

इन अनुभव गम्य ज्ञान के आधार पर जैन—दर्शन उत्पाद नाश और धौव्य अर्थात् नित्यता से युक्त पदार्थ को शसतश् मानता है। जो ऐसा नहीं है। वह उसकी दृष्टि में शसत् है। जैन दर्शन द्रव्य के दो अस्तिकाय एवं अनस्तिकाय को स्वीकार करता है। अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेश व्यापि तथा अनस्तिकाय एक देश व्यापि। इन दो द्रव्यों के भेदों—प्रभेदों की गणना करके जैन दर्शन कुल 18 द्रव्यों स्वीकार करता है। जैन दर्शनानुसार जीव—चेतन है। वह शुद्ध स्वरूप अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त, सुख और अनन्तवीर्य गुणशाली है। वह एक शाश्वत द्रव्य है। वह अनन्त देशों में व्यापक होने के कारण बहुसंख्यक है जीव शरीर में प्रवेश करता है। उसी के परिणाम अनुसार अपने को सकुचित या विस्तृत कर लेता है। जैन दर्शन के अनुसार शरीर के आत्मा की सत्ता आलोक के समान व्यापक होती है। जैन दर्शन सात पदार्थ तथा दो प्रमाण प्रत्यक्ष एवं अनुमान को स्वीकार करता है।

जैन पदार्थ के अनुसार आत्मा या जीव का वास्तविक स्वरूप अनन्त आनन्द, ज्ञान एवं दर्शन रूप है। परन्तु वह वास्तविक स्वरूप सांसारिक बन्ध दशा के तिरोहित हो जाता है। परन्तु केवली अपने अनन्तवीर्य के अभ्यास से कर्मा को दलित करके मुक्तदशा को प्राप्त करता है। उसे अपने अनन्तवीर्य रूप का ज्ञान होते है। समस्त अष्ट कर्मों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यँ ही त्रिविध तापों से पूर्णतः मुक्ति संभव नहीं लेकिन जिन शरण्य भावों के सहाय से हम दुःख से मुक्त हो सकते हैं। जैन दर्शन में उन्हें धर्म के नाम से पुकारा जाता है संयम,

सूनृत, शौच, ब्रह्म, अकिचन, तप, शान्ति, मार्दव, ऋज्युता, तथा मुक्ति। इन्ही दस धर्मों के द्वारा दुःख से छुटकारा संभव है।

निष्कर्षतः जैन दर्शन सृष्टि के मूल के अनेकों तत्वों को स्वीकार करता है। अतः वह दार्शनिक बहुत्ववाद का समर्थक है। वह समस्त प्रदेशों में जीवों की सत्ता को स्वीकार करते हुए उनकी सुरक्षा के भाव हेतु अंहिसा पर बल देता है। इसने दार्शनिक सिद्धान्तों अपने स्वथा मौलिक आचार मीमांसा से विश्वदर्शन को एक नई देन दी है। उसने आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसके बहुत्व पुर्नजन्म तथा परलोक की सत्ता को भी स्वीकार है।

सन्दर्भ सूची :-

1. मध्य प्रदेश शासन, सहिता परिषद, भोपाल।
2. पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।
3. पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।
4. आदिनाथ जैन ट्रस्ट।



भक्ति-साहित्य में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति का अध्ययन

सोनु कुमारी

यू. जी. सी. नेट हिन्दी जून 2020

गांव व डाक झोझू कलां, जिला चरखी दादरी, हरियाणा।

शोध सार :-

साहित्य का जन्म समाज में ही सम्भव हो सकता है इसलिए मानवीय संवेदनाओं को हम उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम से समझ सकते हैं। साहित्य समष्टिगत चेतना है। इस कारण से साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार ही अवचेतन मन में संगृहीत होते रहते हैं और उपयुक्त समय पाकर अभिव्यक्ति पाते हैं। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है। एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ संस्कृति कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीति-रिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके, और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और साथ ही संस्कृति मानव को मानव बनाती है। संस्कृति का एक मौलिक तत्त्व है धार्मिक विश्वास और उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। भक्ति काल के सभी रूपों का अपने समय के समाज से गहरा संबंध रहा है। विभिन्न भक्त कवियों और उनके साहित्य का समाज से अलग अलग तरह का संबंध रहा है। वर्तमान शोध पत्र में भक्ति साहित्य में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द :- साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, चेतना और भक्ति साहित्य।

समाज एवं संस्कृति के अन्तःसम्बन्धों की पहचान भक्ति आन्दोलन की केन्द्रीय चिंताओं में से एक है। भक्ति साहित्य जहां एक ओर लोक जीवन से शक्ति पाता है वहीं दूसरी ओर सामाजिक विकृतियों का प्रतिपाठ रचता है। जाति-पांति, ऊँच-नीच का विरोध करने तथा भेदभाव और अन्याय से बनी व्यवस्था का प्रतिपक्ष रचने में भक्ति काव्य की युगांतरकारी भूमिका रही है। सामाजिक अंतर्वस्तु में बदलाव और परिवर्तन के लिए संतो की सक्रियता देखते बनती है। इनका उद्देश्य ऐसे जीवन मूल्यों का प्रतिपादन करना था जिससे पुरोहितवाद, पुराणवाद,

यज्ञवाद, कर्मकाण्डवाद आदि के चलन को कम किया जा सके। अपमानित जीवन जीने को अभिशप्त निचले वर्ग में आत्मविश्वास पैदा करने और विश्वास को कायम रखने के लिए संतो ने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और जनता तक अपने सन्देश पहुंचाते रहे। इन संत रचनाकारों ने अपने चिंतन और साहित्य से भारतीय समाज एवं संस्कृति के इस सत्य को ध्वनित किया कि ईश्वर के समक्ष न कोई छोटा है न कोई बड़ा। उसकी नजर में सभी मनुष्य बराबर हैं। समतामूलक दृष्टि के द्वारा समाज में परिवर्तन लाने के लिए संतों ने व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर कई प्रयास किए। इन संतों की संघर्ष क्षमता के नाते ही भक्ति कविता के भीतर अपने समय के असहज सवालों से जद्दोजहद करने की क्षमता विकसित होती है।

जातीय चेतना के विकास में भक्ति साहित्य ने भारतीय जनता में एक नये बोध को जन्म दिया और जीने-समझने की समतामूलक दृष्टि प्रदान की। वह आम अवागम की अभिरुचियों का संवाहक है। वह जातीयता के विकास का उत्स है। इस आन्दोलन से निकले कवि हमारी जातीय स्मृति में एक नई चमक पैदा करते हैं। भक्तिकाव्य का संदेश एक ओर जहां मुक्ति और निर्वाण चिंतन को चुनौती था, वहीं दूसरी ओर इस लोक की महिमा को परलोक के सामने मजबूती से स्थापित करना था। जीवन के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा थी कि संसार मिथ्या नहीं है, वह कर्म-सौन्दर्य से सराबोर है। शंकराचार्य के मायावाद और विवर्तवाद से भी मुक्ति पाने का जो प्रयत्न भक्तिकाव्य में मिलता है उसके पीछे यही विचारधारा काम करती है। लोकभाषाओं के माध्यम से इन कवियों ने जन-जन को संदेश दिया कि संसार में कर्म सौन्दर्य की ही शक्ति व्याप्त है, भाग्यवाद और निराशावाद से यह संसार नहीं चलता।

सामंती मूल्यों के बरक्स भक्ति कविता ने लोकजीवन में रचे-बसे मूल्यों को महत्व दिया। इन रचनाकारों ने जनविरोधी तत्वों को आड़े हाथों लेते हुए लोक कल्याण का पथ प्रशस्त किया। लोकजीवन में रचा-बसा यह साहित्य नानाविध सामाजिक-सांस्कृतिक निर्मितियों को हमारे सामने रखता है। भक्ति आन्दोलन सामाजिक संरचनाओं और अवधारणाओं के इतिहास बोध को बदलने की सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसमें आए चिंतनगत प्रतीकों, मिथकों और लोकविश्वासों को सपाट ढंग से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। दक्षिण के भक्ति आन्दोलन को हम देखें तो पाएंगे कि इसके विकास के साथ गायन तथा नृत्यकलाओं का गहरा सम्बन्ध रहा है।

भक्ति आन्दोलन की सांस्कृतिक विकास यात्रा पर सम्यक नजर दौड़ाने पर हम पाते हैं कि पुराणमतवादी व्याख्याओं और व्यवस्थाओं को चुनौती देते हुए एक अभूतपूर्व संत परंपरा का आविर्भाव होता है। इस परंपरा में निम्न वर्ग के संतों की आमद अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण थी। शूद्र वर्गों का एक नया संसार साहित्य और कविता में पहली बार दाखिल होता है। यह साहित्य आम मनुष्य की चेतना के उन सपाट बिन्दुओं को संश्लिष्ट बनाता चलता है जिसमें मानवता का हित समाहित है। भक्ति काव्य भारतीय जनता की सर्वाधिक मूल्यवान विरासत इसी नाते है क्योंकि इसमें आम जन की शक्ति हैय आम जन की पीड़ा, आकांक्षा और संघर्ष की चेतना अन्तर्निहित है। इसमें संदेह नहीं कि बीसवीं शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की मुक्ति चेतना को संत साहित्य से सांस्कृतिक नवजागरण का प्रकाश मिला। भक्ति आन्दोलन अखिल भारतीय संस्कृति की नवप्रेरणा के उल्लास

से फूटा एक ऐसा आन्दोलन है जिसके बाहरी ढब में भले ही धर्म और भक्ति का रंग चढ़ा हो लेकिन इसकी आन्तरिकता में संस्कृति के चटक रंग बिखरे हुए हैं। ग्रहण और त्याग के विवेक के साथ इस आंदोलन ने सिद्धों-नाथों के चमत्कारी, करामाती रूपों को पीछे धकेलकर इनके दर्शन के मूल सार को ग्रहण किया। 'सार सार को गहि चले थोथा देहि उड़ाय' की उक्ति को यहाँ चरितार्थ होता हुआ देखा जा सकता है।

जाति, वर्ण, धर्म, कुल की हदबंदियों को तोड़कर इस आंदोलन ने सभी के लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। रामानंद, दादू, नानक, कबीर, रहीम, रैदास, सूर, जायसी, मीरा, तुलसी, रसखान के काव्य को इस सन्दर्भ में रेखांकित किया जाना चाहिए। संतों की प्रेमरस से परिपूर्ण कविता पीड़ित समाज को आनंद से सराबोर कर देती है। ये कवि लोकजागरण की परम्परा के संवाहक थे। इसमें संदेह नहीं कि भक्ति कविता ने तत्कालीन जनजीवन में आए खालीपन को काफी हद तक भरने की कोशिश की और जीवन में तन्मयता का भाव जगाने में मदद की। यह एक ऐसी मानसिक और आत्मिक प्रक्रिया के रूप में सामने आती है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भीतर विद्यमान गलित मूल्यों को पहचान पाता है। समाज के पीड़ित, अपमानित, शोषित तबके के अन्दर भक्ति का दर्शन उल्लास पैदा करने वाला था। इस दर्शन ने जनता के अन्दर नये भाव-संस्कारों का विकास किया। जीवन की वास्तविकताओं से साक्षात्कार कर इन रचनाकारों ने जनता को अनुभव का एक ऐसा सत्य दिया जिसकी ताकत से प्रतिगामी शक्तियों का काफी हद तक मुकाबला किया जा सकता था। इन संतों के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरणा पाकर किसानों, मजदूरों ने सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई, जिसके पर्याप्त प्रमाण मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मौजूद हैं। हालांकि यह विरोध राजा के खिलाफ नहीं बल्कि उन सामन्तों के खिलाफ है जो प्रत्यक्ष तौर पर गरीब जनता का शोषण करते थे।

भारतीय समाज ने हमेशा ही उदारता और सहिष्णुता की संस्कृति को अपनाए रखा। विभिन्न धार्मिक, जातिगत, भाषायी समूहों के समन्वय द्वारा भारत की महान संस्कृति फलती-फूलती रही है। भारतीय संस्कृति ने सहकार और सह-अस्तित्व की कोपलों को फूटने के लिए उपजाऊ जमीन प्रदान की और उन कोपलों से निकले वृक्षों ने सभी को छाया दी। इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि समाज में हमेशा कट्टरवादियों एवं असहिष्णु लोगों ने अहिंसा एवं न्याय के पक्ष में लगे लोगों को उनके इस सत् कार्य से च्युत करने का प्रयास किया। इस बात के भी कई प्रमाण मौजूद हैं, जहाँ न्याय के पक्ष में लड़ने वाले लोगों पर हमले हुए। इस तथ्य की भी तस्दीक की जानी चाहिए कि नाथों और सिद्धों के मध्य कई बार खूनी संघर्ष तक हुए। ऐसी तमाम बातों के बावजूद भारतीय समाज और संस्कृति ने अपनी मूल चेतना में समाई उस सहकार, प्रेम और आदर की भावना को नहीं छोड़ा। उदाहरण के लिए, सम्राट अशोक हमारी जातीय स्मृति में सहिष्णुता और करुणा की मूर्ति के रूप में इसीलिए प्रतिष्ठित हैं क्योंकि उनका विवेक हमारी भारतीयता की अन्तरंग चेतना को आत्मसात कर अपना आगे का रास्ता चुनता है। एक ऐसा रास्ता जिसमें सभी चलते हुए अपनी मंजिल तक पहुँचने की तितीर्षा में अपने शुभ संकल्पों को एक दूसरे से शेयर करते हैं। इस सन्दर्भ सम्राट हर्ष भी हमारे लिए महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जिन्होंने सातवीं शताब्दी में ब्राह्मणों और बौद्धों को समान रूप से प्रोत्साहित किया।

भारत की इस सांस्कृतिक विविधता का ही प्रमाण है कि कई धर्म यहाँ आए और यहीं जज्ब हुए, जो इसे मिटाने की कोशिशों में लगे रहे वो फना हो गए। हिंदी साहित्य का हजार वर्षों का सांस्कृतिक इतिहास दर्शाता है कि कैसे एकता और अखंडता का महीन किंतु मजबूत धागा सबको जोड़े रखता है। सत्ता समूहों के दबाव के कारण इसमें बल भी पड़ा पर यह टूटा नहीं।

भारतीय संस्कृति स्वभाव से संश्लेषणात्मक है। इसमें विभिन्न पंथों के विचार समाविष्ट हैं। यह अपनी परिधि में समाज की विभिन्न आस्थाओं, संस्थाओं, कलाओं, धर्मों और दर्शनों को समेटे हुए है। यह निरन्तर उन विषम जातीय तत्त्वों को एक करने का प्रयास करती है जो इसे समग्र बनाते हैं। भारतीय समाज एवं संस्कृति का सम्बन्ध संश्लिष्ट और जटिल रहा है। उसे सपाट रेखाओं के रूप में नहीं समझा जा सकता है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि भारत इतिहास के उषाकाल से विरोधी सभ्यताओं का मिलन बिंदु रहा है। इसके उत्तर पश्चिमी प्रवेशद्वारों से विशाल झुण्ड और विजयी सेनाएँ लगातार आती रही हैं। समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, मानवशास्त्र के जो विद्यार्थी मानव मस्तिष्क के आदान-प्रदान को और किसी समाज के रीति-रिवाजों, धर्म, साहित्य तथा कला में प्रदर्शित सांस्कृतिक संपर्कों के प्रभाव को समझने का प्रयास करते हैं उनके द्वारा भारत के ऐसे इतिहास की ओर ध्यान देने की कई संभावनाएँ मौजूद हैं।

भारतीय समाज में हमेशा से दो अलग-अलग स्तर रहे हैं, एक उच्च और दूसरा निम्न। यह स्तर जाति व्यवस्था पर आधारित रहा है। पहले की तादाद कम रही है, किन्तु उसके पास विकसित धर्म, सामाजिक विचार और संस्थाएँ रही हैं। दूसरा स्तर उन लोगों का रहा है जिनकी संख्या तो अधिक रही पर सांस्कृतिक रूप से वे नीचे पायदान पर रहे, ऐसा इसलिए कि पहला स्तर प्रभुत्वशाली था और दूसरा स्तर साधनहीन। पहला वर्ग भारतीय संस्कृति को बौद्धिक और अभिजात्य तत्व प्रदान करता रहा तो दूसरा वर्ग लोकतत्व। भक्ति आन्दोलन में पहली बार लोकतत्व अभिजात तत्वों पर भारी पड़ता है। यह भक्ति कविता की प्रगतिशील दृष्टि ही है जिसके कारण वह परंपरा के अवरोधक तत्वों की पहचान करते हुए समाज में अपना पक्ष रखती है।

संस्कृति का दायरा इतना विस्तृत और संश्लिष्ट है कि इसके अर्थ को कुछ शब्दों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। यह व्यावहारिक सच्चाई है कि शब्द के अर्थ कोश में नहीं होते। वे जीवन में मिलते हैं, व्यवहार में मिलते हैं। वस्तुतः संस्कृति अपनी व्याप्ति में सार्वभौम है। वह सब मानवों की है, मात्र किसी एक मानव समूह या दल या व्यक्ति से उसका संबंध नहीं है। जो प्रक्रिया मनुष्य की ऊर्जा को सर्जनात्मक प्रारूप में रूपान्तरित करती है वास्तव में वही संस्कृति है। यह वस्तुतः एक मूल्य सृष्टि है। संस्कृति जीवन के उन समतोलों का नाम है जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार, ज्ञान और विवेक पैदा करते हैं। संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। संस्कृति-सभ्यता से अपेक्षा महीन चीज होती है।

संस्कृति समाज की एक जीवन पद्धति है। यह समाज को भाषा देती है, संतुलन देती है, विचार देती है। यह आचरण और परंपरा का बोध कराती है। भाषा संस्कृति को जीने की प्रक्रिया से उपजी है। अर्थ पहले

थे शब्द बाद में आए। आज शब्द प्रमुख हो गया है तो हम खाली से लगते हैं। भाषा को समझने के लिए तो संस्कृति को हृदयंगम करना बहुत जरूरी है। मनुष्य अपनी निजता में सार्थक नहीं होता, वह तब सार्थकता को प्राप्त होता है जब दूसरों से जुड़ता है। दूसरे से जुड़कर ही आदमी अपने को पहचानता है। जुड़ने के लिए अपने अहंकार को भी त्यागना पड़ता है। इसीलिए भक्ति कविता अहंकार के त्याग पर बल देती है। स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी जी जीवन भर जिस 'मैं' को त्यागने पर बल देते रहे उसके मूल में भक्ति काव्य का ही प्रभाव है। ये भक्ति काव्य के ही भाव संस्कार हैं जिन्हें गांधी जी ने अपने जीवन में उतारा था और उसके बल पर देश के मुक्तिकामी आन्दोलन का नेतृत्व किया था।

भक्ति आन्दोलन एक मानवीय संस्कृति की प्रस्तावना करता है। कबीर जोर देकर कहते हैं कि मनुष्य और मनुष्य के बीच में होने वाला भेदभाव, अलगाव खत्म होना चाहिए। इसे मिटाए बिना मानवता का विकास संभव नहीं। भक्ति आंदोलन के विकास और स्वरूप का मूल्यांकन आधुनिक दृष्टि से किया जाना हमारे समय की आवश्यकता है। भक्ति काव्य सच्चे अर्थों में अपने युग के जीवन-मूल्यों की द्वन्द्वात्मक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। भक्ति आंदोलन की निर्गुण धारा में वैदिक कर्मकाण्डी व्यवस्था में अनास्था रखने वाले कबीर, नानक, दादू रज्जब, मलूक, रैदास आदि संत कवि आते हैं तो दूसरी तरफ प्रेम के सरल और भावपूर्ण रूप को केंद्र में रखने वाले जायसी, मंझन, कुतुबन, उस्मान, कासिमशाह आदि आते हैं। इस आन्दोलन में सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रहीमदास, रसखान जैसे भक्त कवियों की एक ऐसी परंपरा मौजूद है जिसने मानुष सत्य को सर्वोपरि मानते हुए भक्ति का मार्ग सभी के लिए सुलभ किया।

भक्ति कविता ने संस्कृति और समाज के जिस स्वरूप को उभारा उसमें विश्वदृष्टि की भावना का चरम रूप देखा जा सकता है। भक्ति कविता की संस्कृति मनुष्य को विनम्र बनाती है, सरल और सहज संस्कार देती है। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' जैसी पंक्तियों की व्यंजना में तुलसीदास की विनम्रता और सरलता झलकती है। दरअसल यही विनम्रता और सरलता भक्ति काव्य की अन्यतम विशेषता है। रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही तुलसीदास जी 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' की उद्घोषणा करते हैं। यानि वह आत्म ज्ञान और आत्म सुख के लिए राम की गाथा लिख रहे हैं न की अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए। यही बात ललित कलाओं पर भी लागू होती है। वे सब मानव-संस्कृति के वाहक हैं। मूल्य दृष्टि से कटकर वे संस्कृति नहीं, विकृति के द्योतक हो सकते हैं।

संस्कृति एक आचरण है और समाज उसे आचरित करने वाला एक समूह। भक्ति कविता समाज के अन्दर ऐसी मानव-संस्कृति के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है जो किसी की उपेक्षा नहीं करती, किसी का निषेध नहीं करती है। इसीलिए वह अपनी विराट ऊर्जा को नियंत्रित कर पाती है। यह एक ऐसे समुदाय के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है जिसमें आत्मविश्वास और आस्था का क्षरण न हो। एक सवाल यहाँ पूछा जा सकता है कि क्या संस्कृति धर्म का पर्याय है? जब भी धर्म को उसके मूल अर्थों में स्वीकार किया जाता है तो संस्कृति और धर्म लगभग समानार्थी बन जाते हैं। कबीर के लिए लोक कल्याण ही सबसे बड़ा धर्म है और जायसी के लिए प्रेम

ही सबसे बड़ा धर्म है। भारतीय चिंतक एवं मनीषी स्वामी विवेकानंद भारतीय राष्ट्रवाद के साहसिक प्रवक्ता, रूढियों और मिथ्या के प्रबल विरोधी तथा मानवतावादी होने के बावजूद आध्यात्मिक मूल्यों से बहुत ज्यादा प्रभावित थे। कहना न होगा भक्ति आन्दोलन की इस आध्यात्मिकता ने आगे आने वाले हर एक आंदोलन को ऊर्जा प्रदान की है।

समाज एवं संस्कृति की व्याख्या करते हुए नीति-नैतिकता की बार-बार चर्चा की जाती है। गांधी जी ने 'रामराज्य' की परिकल्पना प्रस्तुत की थी वह तुलसीदास की इस धारणा पर आधारित था कि रामराज्य समस्त मनुष्यों को समान रूप से बढ़ने का मौका देता है। वह नीति, मर्यादा और नैतिकता के निकष पर खरा उतरने वाले रामराज्य की प्रस्तावना करते हैं। रामराज्य की परिकल्पना को समझने के लिए मनुष्य और उसकी संस्कृति के विकास-क्रम को अच्छी तरह जानना होगा। भारतीय संस्कृति में अवतार की कल्पना इसी विकास के क्रम को रूपायित करती है। इस विकास क्रम के अर्थ में ही अवतार का रहस्य छिपा है। इस क्रम में क्रमशः जल-थल और दलदल के जीव, बाद में पशु और नव मानव का जन्म होता है। फिर पशुता से मुक्ति, शारीरिक रूप से अपूर्ण मानव वामन और तामसिक मानव परशुराम के सृजन की प्रक्रिया से होकर पूर्ण मानव राम का आविर्भाव होता है। यह प्रतीक कथा है। रामराज्य के नायक राम का उदय तब होता है, जब हर दृष्टि से पूर्ण होकर मानव, एक से अनेक होने के क्रम में समाज की स्थापना करता है। अर्थात् अपने सुख के लिए अपनी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता है। तभी नीति-नियम, कर्तव्य और कर्म संहिताबद्ध होते हैं और एक आदर्श समाज अस्तित्व में आता है। पाने के लिए देने की महत्ता स्थापित होती है। यही नैतिकता है जो भक्ति आंदोलन के मूल में है।

जगत में शाश्वत या सर्वसम्मत जैसा कुछ भी नहीं है। गहरे उतरकर देखें तो देश, काल और समाज के सन्दर्भ में संस्कृति का अर्थ थोड़ा बहुत परिवर्तित होता रहता है। लेकिन समन्वय भारतीय संस्कृति का ऐसा तत्व रहा है जिसने तमाम विरोधी और भिन्न प्रणालियों और मतों के बीच संतुलन स्थापित किया। सूफी चिंतन वेदान्त के बहुत समीप है। सिख हिन्दुओं से कहीं अलग नहीं थे। 'गुरु ग्रन्थ साहब' हिन्दू गाथाओं से ओतप्रोत है। स्वयं विष्णु भगवान स्वर्ण मन्दिर का पवित्र सरोवर खोजने आए थे। ये ऐसे मिथकीय उदाहरण हैं जिनसे संस्कृति की समन्वय प्रकृति पर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। हमारी संस्कृति मूलरूप में समग्र संस्कृति है। यहाँ आस्तिक और नास्तिक सभी के लिए पूरी सुविधा है। जहाँ छह दर्शन एक साथ उपजे हों वहाँ अनुदारता कैसे पनप सकती थी।

समाज एक ऐसी गतिशील इकाई है जिसमें संस्कृतियों का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निरंतर होता रहता है। भक्ति आन्दोलन समाज और संस्कृति के अन्तःसूत्रों को उनकी पारस्परिकता में अभिव्यक्त करता है। जायसी का अवध समाज अवधी संस्कृति का ताना-बाना लेकर मुखातिब होता है और उस संस्कृति का अवगाहन कर हम अवध के लोकजीवन और लोक परंपराओं से रू-ब-रू होते हैं। इस तरह संस्कृति के माध्यम से समाज और समाज के माध्यम से संस्कृति अभिव्यक्त होती है। समूचा भक्ति साहित्य एक विराट मानवीय संस्कृति का निर्माण करता हुआ प्रतीत होता है। इस संस्कृति में मानव जीवन के सहज नाना व्यापार, संस्कार,

रीति-रिवाज अपनी पूरी आवेगात्मकता के साथ प्रस्तुत होते हैं। कबीर, सूर, मीरा, नानक, तुलसी, धना, पीपा समेत अनेकानेक साहित्यिक प्रादुर्भावकों की रचनाओं में भारतीय समाज के समूचे संस्कार और संस्कृति प्रतिध्वनित होते हैं। यही भक्तिकाव्य की सांस्कृतिक विरासत है और यही उसका अवदान जो आने वाली पीढ़ियों का पथ आलोकित करती रहेगी।

निष्कर्ष :-

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का पूर्व मध्य युग भक्ति परक रचनाओं की प्रधानता के कारण भक्ति काल कहा जाता है। भक्ति काल के साहित्य में निर्गुण उपासना एवं सगुण उपासक दोनों भक्तों रहस्यवादी, यथार्थवादी एवं आदर्शवादी सभी विचारधारा के समर्थकों को अपने मनोनुकूल सामग्री यथार्थ रूप से प्राप्त हो जाती है। इस काल के काव्य जीवन सापेक्ष और आमजन के अधिक निकट हैं। इस काल में हिंदी काव्य का श्रेष्ठतम अंश उपलब्ध होता है। गुणवत्ता और परिमाण दोनों दृश्यों से निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं से प्रभावित होने वाला यह काव्य अत्यंत समृद्ध है। भक्ति कालीन साहित्य अपने पूर्वर्ती एवं परवर्ती काल के साहित्य से निसंदेह उत्तम है। आधुनिक काल का व्यापक एवं विविधता पूर्ण साहित्य अनुभूति की गहनता एवं भाव प्रवाह की दृष्टि से भी भक्ति कालीन साहित्य के समकक्ष नहीं हो सकता। इसी विशेषता को देखते हुए विद्वानों ने भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि समूचे भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अकेला साहित्य है इसी का नाम भक्ति साहित्य है। यह एक नई दुनिया है। भक्ति साहित्य एक महती साधन और प्रेम उल्लास का साहित्य है। यहां जीवन के सभी विषाद, निराशाएँ और कुंठाएँ मिट जाती हैं यह सुख शांति अन्य किसी काल में नहीं है।

सन्दर्भ :-

1. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, आजकल, संस्कृति विशेषांक, पृ. 33
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 652
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भाषा साहित्य और देश, पृ. 9
4. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग-2, पृ. 24
5. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पृ. 75
6. डॉ. मदन गोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ. 197



अनुवादक की भूमिका एवं गुण

अनुश्री पी. एस.

शोध विद्यार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़।

प्रस्तावना :-

यह सर्वविदित तथ्य है कि अनुवादक बनने या अनुवाद के व्यावहारिक अनुभव का कोई विकल्प नहीं है। के लिए व्यावहारिक रूप से अनुवाद कार्य करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। अनुवादकों की भूमिका अहम है क्योंकि वे सूचना और विचारों को अलग-अलग भाषाओं में व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करते हैं। अनुवादक के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि भाषा और सांस्कृतिक संदर्भों के बीच संबंध बनाना। एक विदेशी भाषा को सही संदर्भ में समझकर प्रस्तुत करना चाहिए ताकि वह लक्षित पाठकों के लिए विश्वसनीय अनुवाद प्रस्तुत कर सकें। अनुवादक के लिए कुछ पूर्व आवश्यकताएँ हैं जैसे विषय का ज्ञान, लक्ष्य भाषा में लिखने की क्षमता एवं पाठ को प्रस्तुत करने की अच्छी विधि; एक अनुवादक को एक शोधकर्ता होना बहुत ज़रूरी है। मूल पाठ में कुछ भी जोड़े या हटाए बिना स्रोत भाषा के मूल संदेश को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करना चाहिए। पाठक को यह प्रतीत होना चाहिए कि अनुवाद केवल भाषा का परिवर्तन है, संदेश का नहीं। अनुवादक समय की प्रतिबद्धता, निष्ठा और आवश्यक उपकरणों का सही तरह से प्रयोग करके अच्छे अनुवादक भाषा के साथ साथ संवेदनशीलता और सांस्कृतिक समर्पणवश्यक उपकरणों का सही तरह से प्रयोग करने की क्षमता रखते हुए भाषा या भाषाओं के बीच लिखित या उच्चरित वाक्यों या पाठों को एक से दूसरी भाषा में परिवर्तित करने का कार्य करते हैं। ये व्यक्ति या संगठन हो सकते हैं जो दो या दो से अधिक भाषाओं में पारंपरिक रूप से या आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके अनुवाद कार्य करते हैं। वे विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों को समझकर उन्हें ध्यान में रखते हैं ताकि अनुवाद उद्देश्य भाषा के लोगों को समझ में आ सके।

अनुवादकों की भूमिका :-

किसी भी विषय का अनुवाद चाहे वह विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, इंजीनियरिंग, सामाजिक विज्ञान और मानविकी हो, बहुत महत्वपूर्ण है और अनुवाद की पूरी प्रक्रिया में अनुवादक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी पाठ का अनुवाद करते समय विशेषज्ञ या पेशेवर अनुवादक के लिए भी अनगिनत चुनौतियाँ हो सकती हैं। प्रत्येक पाठ अपनी विषय-वस्तु और अपने तरीके से अद्वितीय है, इसी प्रकार प्रत्येक पाठ का अनुवाद करना एक अनुवादक के लिए एक असाधारण अनुभव है और यह पाठ से पाठ, शैली से शैली तथा पाठ्यक्रम की क्षेत्र से क्षेत्र की ओर बढ़ता है।

अनुवादकों की भूमिकाएँ विभिन्न सेक्टरों और क्षेत्रों में हो सकती हैं, जैसेकि विदेश डिप्लोमेसी, साहित्य,

विज्ञान, तकनीक, न्याय, व्यापार, विपणन, निर्माण, तंत्र ज्ञान, स्वास्थ्य और बहुत कुछ। ये व्यक्ति भाषा विज्ञान, साहित्य, सामाजिक विज्ञान, और अन्य शाखाओं में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं जो उन्हें भाषाओं और उनके संरचनाओं के बारे में समझने में मदद करते हैं।

अनुवादक को दी गई भूमिका और जिम्मेदारी को जानना महत्वपूर्ण है :-

1. एक अनुवादक लक्ष्य भाषा पाठक के लिए एक अर्थ निर्माता है।
2. अनुवादक को न केवल किसी पाठ को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा तक संप्रेषित करने के लिए, बल्कि अभिव्यक्ति की एकरूपता, विषय वस्तु में अखंडता के साथ न्याय करने के लिए भी विभिन्न प्रकार के मुद्दों का सामना करना पड़ता है।

अनुवादक की तैयारी :-

अनुवादकों के लिए अपने क्षेत्र में व्यावसायिकता के अलावा तैयारी भी जरूरी है। कई मौकों पर, किसी पाठ का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय, विषय-वस्तु में शामिल जटिलताओं की तुलना में दोनों भाषाओं में अनुवादक का आत्मविश्वास और क्षमता दिमाग में आती है। यह दृष्टिकोण किसी पाठ को करने या अनुवाद करने के नियमित तरीके से काफी अलग है। उपयोगकर्ताओं या लक्षित पाठकों को विषय वस्तु की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए और ज्ञान पाठ अनुवाद पर शोध करते हुए अनुवादित ग्रंथों में गंदगी से बचने और अनुवादक को सर्वोत्तम संभव तरीके से सुविधा प्रदान करने के लिए इस संभावित और व्यवस्थित दृष्टिकोण को निर्धारित किया जाता है। इसे लागू करना आसान है एवं यह अनुवादक के कार्य को परेशानी मुक्त बनाता है, पर्याप्त कार्य करने में सक्षम होगा।

वैज्ञानिक और तकनीकी या किसी भी अनुवाद में, अनुवाद की विश्वसनीयता और पठनीयता स्रोत पाठ विषय वस्तु की समझ पर निर्भर करती है।

निम्नलिखित विचार एक अलग दृष्टिकोण की आवश्यकता पर एक महत्व दे सकती हैं :-

1. दोनों भाषाओं (स्रोत और लक्ष्य भाषा) में तकनीकी विषय का एक अच्छा शिक्षक अपने विषय का बेहतर संचारी तरीके से अनुवाद करने में विशेषज्ञ नहीं हो सकता है।
2. जिन छात्रों को अंग्रेजी ज्ञान की कमी है, लेकिन वे अपने पेशेवर सपने को साकार करने के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा में जाने की इच्छा रखते हैं।
3. वैज्ञानिक या तकनीकी पाठ के पाठक अनुकूल अनुवादित पाठ को शैक्षणिक वातावरण में लाना।
4. अनुवादित पाठ के साथ संबंध स्थापित करना, शिक्षकों, विद्यार्थियों में विषय के प्रति विश्वास पैदा करना।
5. छात्र-शिक्षक समुदाय को विषय की मजबूत नींव और समझ से लैस करना।
6. देश को जमीनी स्तर से लेकर उच्च स्तर तक ज्ञान शक्ति के रूप में निर्मित करना अंतिम लक्ष्य है।

अनुवादकों का मुख्य उद्देश्य होता है संवाद को समय-समय पर और सही रूप से अनुवाद करना ताकि विभिन्न भाषाओं में लोग एक दूसरे के साथ संवाद कर सकें और साझा कर सकें। यह उनकी भूमिका होती है जो भाषा बाधा को कम करके विभिन्न समुदायों और भाषाओं के लोगों को एक साथ आने में मदद करती है। मॉसॉप द्वारा व्यक्त अनुवाद की प्रक्रिया में अनुवाद उत्पादन के तीन चरणों के तहत किए गए पांच कार्य शामिल हैं। जैसे कि...

चरण 1 : प्री-ड्राफ्टिंग।

चरण 2 : प्रारूपण।

चरण 3 : ड्राफ्टिंग के बाद।

कार्य 1 : स्रोत पाठ की व्याख्या करें।

कार्य 2 : अनुवाद लिखें।

कार्य 3 : कार्य 1 और 2 के लिए आवश्यक अनुसंधान करें।

कार्य 4 : त्रुटियों के लिए अनुवाद के मसौदे की जाँच करें और यदि आवश्यक हो तो सुधारें।

कार्य 5 : आयोग के निहितार्थ तय करें। (जोडी बर्न 2006)।

विशेष रूप से विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में ज्ञान ग्रंथों का अनुवाद करने का एक विशिष्ट तरीके से सामग्री को व्यक्त करने और व्यवस्थित करने का अपना तरीका है। यह एक बहुत ही सामान्य धारणा है कि किसी अनुवादित पाठ में, जब उसकी तुलना उसके स्रोत पाठ से की जाती है, तो लक्ष्य पाठ में हमेशा कुछ मात्रा में हानि होगी। विषय पर अधिकार और दोनों भाषाओं की व्यावहारिक बारीकियों से अच्छी तरह परिचित होना ही असली मुद्दा है। यह (विषय वस्तु) एक अनुवादक के लिए जटिल और कठिन हो सकता है जो सामान्य लेख या पुस्तकों को संभालता है, लेकिन उपरोक्त विशेषताओं वाले अनुवादक के लिए किसी भी विषय का अनुवाद करने में अधिक कठिनाई नहीं हो सकती है। अन्य तत्वों के लिए विषय वस्तु का बलिदान नहीं किया जाना चाहिए। लेखकों, अनुवादकों और पाठकों को अनुवाद और उसके स्रोत पाठ दोनों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

अनुवादक भाषाई और सांस्कृतिक अंतर के संदर्भ में समानता लाने का प्रयास करता है और उसे पाठ (स्रोत और लक्ष्य) के बीच के अंतर को पाटने के लिए 'रचनात्मक संतुलन' बनाए रखना चाहिए। अनुवादक को स्रोत पाठ को अच्छी तरह से समझना चाहिए और उस विशेष पाठ पर उपलब्ध संदर्भ सामग्री को भी पढ़ना चाहिए।

अनुवादक से अपेक्षा की जाती है कि वह एसटी की निष्ठा और टीएल की स्वाभाविकता के बीच रचनात्मक संतुलन बनाए रखे।

अनुवादक को स्रोत पाठ की विचारधारा को बनाए रखना चाहिए, अनुवाद में अपनी विचारधारा नहीं डालनी चाहिए, अर्थ में परिवर्तन किए बिना स्रोत पाठ की भाषा या वाक्य संरचना को बदल सकता है।

अनुवादकों के कुछ महत्वपूर्ण गुण निम्नलिखित हैं :-

अनुवादकों की गुणवत्ता का मतलब उनकी क्षमता और कौशल से है, जो किसी भाषा के पाठ, वाक्य, या शब्दों को एक से दूसरी भाषा में सही रूप से समझने और प्रस्तुत करने की क्षमता है। उच्च गुणवत्ता वाले अनुवाद को प्राप्त करने के लिए सही शब्द या वाक्यांश को समझने की क्षमता है। विभिन्न भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले आउटपुट सुनिश्चित करने के लिए सटीकता, शुद्धता, स्पष्टता, प्रमाणिकता उपयुक्त स्वर और शैली, सांस्कृतिक उपयुक्तता, स्थिरता समसामयिक भाषा, इन्हीं चीजें एक अच्छे मानव अनुवादक को मशीनी अनुवाद इंजन से अलग करती हैं। हालाँकि एक अच्छा अनुवाद कुछ हद तक अनिश्चित अवधारणा है, एक बात निश्चित है : एक अच्छे अनुवाद के लिए एक अच्छे अनुवादक की आवश्यकता होती है।

1. सटीकता :-

सटीकता का अर्थ है कि लक्ष्य पाठ (या अंतिम अनुवाद) को स्रोत पाठ के समान अर्थ बताना चाहिए। अनुवादकों का दायित्व ठीक और सटीक अनुवाद करना होता है। वे स्रोत भाषा के साहित्य को समझते हैं और उसे लक्षित भाषा में व्यक्त करते हैं ताकि उद्देश्य दर्शक या पाठकों तक सही रूप से पहुंच सके। हालाँकि, अर्थ के अलावा, अनुवादक को स्वर, शैली लेआउट आदि को बनाए रखना होता है। इसके अलावा, यह ध्यान देना चाहिए कि कोई भी शब्द, वाक्यांश या वाक्य गायब नहीं होना चाहिए। परिवर्णी शब्द और छंद अच्छी तरह से अनुकूलित होने चाहिए। इन कार्यों को पूरा करने के लिए अनुवादकों को अपनी कामकाजी भाषाओं पर उत्कृष्ट पकड़ होना आवश्यक है साथ ओही उनके पास एक विशिष्ट डोमेन (उदाहरण के लिए, तकनीकी, बहुभाषी एसईओ या चिकित्सा अनुवाद) में विशेषज्ञता होनी चाहिए। बदले में, सटीकता का अर्थ है कि वे जिस सामग्री का अनुवाद करते हैं उसकी विशिष्टताओं से अच्छी तरह परिचित हैं। इस प्रकार, सटीकता बहुत जरूरी है।

2. प्रामाणिकता :-

अनुवाद के सबसे बुनियादी नियमों में से एक यह है कि अनुवाद को अनुवाद जैसा नहीं दिखना चाहिए, इस प्रकार, प्रामाणिकता किसी भी गुणवत्तापूर्ण अनुवाद का एक केंद्रीय तत्व है। एक प्रामाणिक अनुवाद लक्ष्य पाठ अच्छी तरह से लिखा जाना चाहिए, और इसे मूल कार्य के लिए आसानी से भ्रमित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐसा कोई संकेत नहीं होना चाहिए कि लक्षित पाठ किसी अन्य का अनुवाद है। हालाँकि, प्रामाणिकता हासिल करना आसान नहीं है। ऐसा करने के लिए, ऐसी कोई ग़लती नहीं होनी चाहिए (जैसे अनुपयुक्त शब्द या स्वर) जो लक्ष्य पाठ की प्रामाणिकता पर संदेह पैदा कर सकती है। लक्ष्य भाषा में समकक्ष शब्दों और वाक्यांशों को खोजकर, अनुवादक प्रामाणिकता सिद्ध कर सकता है। बदले में, साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में प्रामाणिकता आवश्यक है तभी एक अच्छी तरह से अनुवादित पुस्तक या कविता को पाठक द्वारा मौलिक कृति के रूप में पढ़ा जाएगा।

3. भाषाई समझ या प्रभुत्व :-

अनुवादक को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की प्रकृति, व्याकरणिक व्यवस्था शैली तथा अनुप्रयोगात्मकता का अधिकारिक ज्ञान होना चाहिए। अनुवादक को स्रोत भाषा एक अच्छे अनुवादक को अपनी कामकाजी भाषाओं में भाषाई रूप से इतना निपुण होना चाहिए कि वह मूल पाठ की 'भावना' को स्थानांतरित करना जानता हो। परिणामस्वरूप, वे प्रामाणिकता के इस आवश्यक स्तर को प्राप्त कर सकते हैं। एक अच्छा अनुवादक उच्चतम स्तर की भाषाई समझ रखता है और स्रोत भाषा के वाक्यों को सही रूप से समझता है। विभिन्न भाषाओं के बीच धारा प्रवाह अनुवाद करने में सक्षम होना, आप जिस विषय का अनुवाद कर रहे हैं उसकी मजबूत समझ होना, और जो कहा जा रहा उसका अर्थ बदले बिना अनुवाद करने में सक्षम होना है।

4. समसामयिक भाषा :-

भाषाएँ जीवित प्राणियों की तरह हैं, एवं वे कभी बदलना नहीं छोड़तीं। उनका व्याकरण, शब्दावली, वर्तनी – हर पहलू बदल रहा है। इस प्रकार, एक अच्छा अनुवादक हमेशा अपनी कामकाजी भाषाओं के साथ अद्यतन रहने का प्रयास करता रहता है। इस तरह, वे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि किसी भी सामग्री का अनुवाद करते समय वे उचित शब्दों और अभिव्यक्तियों का उपयोग करें। विपणन सामग्रीयों के अनुवाद में यह पहलू

आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि कोई अनुवादक युवा लोगों पर लक्षित विपणन परियोजना पर काम कर रहा है, तो उसे युवाओं की समकालीन शब्दावली को जानना होगा ताकि वे लक्षित दर्शकों को उचित रूप से संबोधित कर सकें। किसी भाषा को सीखने का कोई अंत नहीं है क्योंकि जीभ का विकास कभी नहीं रुकता। इस प्रकार, अनुवादकों को भाषा सीखने के प्रति उतना ही जुनूनी तथा उत्सुक होना चाहिए जितना कि वे अपने काम के प्रति हैं।

5. बहुज्ञता तथा विवेकशीलता :-

अनुवाद कार्य किसी सामान्य या अतिसामान्य अथवा अल्पज्ञ की ओर से संपन्न होने वाला सामान्य कार्य नहीं है। जो बहुज्ञ और विवेकपूर्ण होता है वही आदर्श अनुवाद कर सकता है। अनुवादक को स्रोत सामग्री का पूरा-पूरा ज्ञान होना अपेक्षित होता है। संप्रेष्य विषय की सारी बारीकियाँ उसे ज्ञात होना जरूरी है तभी उसका संप्रेषण सही हो सकता है। मूलभाषा के संदर्भ, प्रसंग परिवेश, प्रयोजन, प्रासंगिकता, तार्किकता तथा सूचनात्मकता आदि को पहचानने की क्षमता किसी बहुज्ञ व्यक्ति में ही हो सकती है। साथ ही उसका विवेक भी अनुवाद कार्य में सहायक बन जाता है। उन्हें अच्छे समय प्रबंधन कौशल होते हैं, जिससे वे अपने कार्यों को समय पर विविध सामग्रियों को विचारशीलता और संवेदनशीलता के साथ अनुवाद कर सकते हैं।

6. सामाजिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान :-

अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा-भाषियों की विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों को समझने में सक्षम होना आवश्यक है, जो किसी भी भाषा के साथ जुड़े हो सकते हैं। अनुवादित सामग्री को उसके दर्शकों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उचित रूप से अनुकूलित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि लक्षित पाठ विदेशी परंपराओं या धर्मों से संबंधित है जो संभवतः लक्षित दर्शकों के लिए अपरिचित हैं, तो यह सुनिश्चित करना अनुवादक का काम है कि सभी शब्दों का उचित उपयोग किया जाए। इसलिए समाज की संस्कृति, विरासत, खान-पान, आचार-विचार, ईद-त्योहार, पूजा-पाठ, रूढ़ी-परंपराएँ, वेशभूषा, रिश्ते-नाते आदि विषयों का परिचय होना जरूरी होता है। अनुवादक को लक्ष्य भाषा में उपयुक्त समकक्षों की तलाश करनी चाहिए या मामले को विस्तार से समझाते हुए नोट्स लिखना चाहिए। जब सांस्कृतिक उपयुक्तता की बात आती है, तो अनुवादक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि लक्ष्य पाठ का कोई भी पहलू पाठक को अपमानित या भ्रमित नहीं करेगा। उदाहरण के लिए, खेल के स्थानीयकरण की प्रक्रिया के दौरान, अनुवादकों को लक्षित दर्शकों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने से बचने के लिए खेल में प्रयुक्त भाषा के शब्दों की सांस्कृतिक उपयुक्तता पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए।

7. अद्यतन रखना :-

अनुवादकों को सर्वोत्तम प्रदर्शन देने के लिए किसी भी अनुवाद कार्य के लिए आवश्यक उपकरण हाथ में रखने होंगे :-

- क) संक्षिप्त एकभाषी शब्दकोश आवश्यक है।
- ख) उन्नत अंग्रेजी शब्दकोश।
- ग) द्विभाषी शब्दकोश।
- घ) एक व्यापक मल्टी वॉल्यूम विश्वकोश (यदि आवश्यक हो तो दृश्य चित्र)

ई) संदर्भ पुस्तकें, इलेक्ट्रॉनिक या मुद्रित शब्दकोश।

च) इंटरनेट संसाधन (ऑनलाइन शब्दकोश)

छ) अनुशासन विशिष्ट शब्दावलियाँ।

ज) एक अच्छा अंग्रेजी भाषा थिसॉरस (यदि अनुवादक अंग्रेजी से किसी अन्य भाषा में कार्यरत है)

एक अच्छे अनुवादक को हमेशा लक्षित पाठ के श्रोताओं को ध्यान में रखना चाहिए। इसका मतलब यह भी है कि एक अनुवादक को दो या दो से अधिक भाषाओं में पारंगत होना चाहिए और लक्ष्य और स्रोत दोनों स्थानों की संस्कृति को गहराई से जानना चाहिए। अनुवादक इन गुणों को ध्यान में रखता है और स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में सही रूप से संदेश पहुंचाने का प्रयास करता है। अनुवादकों का काम विभिन्न भाषाओं के विद्यमान लेख, वाक्य, या शब्दों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करना है। यह एक महत्वपूर्ण कौशल है जो भाषाओं और संस्कृतियों के बीच सम्बंध बनाने में मदद करता है।

अनुवादकों के दायित्व की विविधता हो सकती है और उनके कार्य क्षेत्र विभिन्न हो सकते हैं। कुछ अनुवादक साहित्यिक या सामाजिक लेखों, उपन्यासों, कविताओं आदि का अनुवाद करते हैं, जबकि दूसरे विज्ञान, तकनीक, निवेश, कानून, आदि जैसे क्षेत्रों में काम करते हैं।

अनुवादकों को बाजार में भी विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है, जैसे कि स्वतंत्र पेशेवर अनुवादक, स्थायी नियोक्ता, फ्रीलांस अनुवादक या स्वतंत्र उद्यमिता। वे विभिन्न भाषाओं के बीच भाषांतर का कार्य कर सकते हैं और विभिन्न विषयों और विचारों पर विशेषज्ञता प्राप्त कर सकते हैं।

समापन स्थिति में, अनुवादकों का गुण उनके व्यापक ज्ञान, भाषा कौशल और संवेदनशीलता के आधार पर मापा जा सकता है। अधिकांश अनुवादक विशेष भाषा में विशेषज्ञ होते हैं, और वे उन भाषाओं के नियमों और व्याकरण को अच्छी तरह समझते हैं। वे सामाजिक, सांस्कृतिक, और तार्किक संदर्भों को समझते हैं जो उनके कार्य के हिस्से हो सकते हैं।

उनकी कामकाजी भाषाओं और विशेषज्ञता के क्षेत्र में अच्छी विशेषज्ञता के अलावा, कई अन्य पहलू एक अनुवादक को उपयुक्त बनाते हैं; हालाँकि, यदि ग्राहक और अनुवादक के बीच संचार की कमी है, तो यह संदिग्ध है कि आउटपुट की गुणवत्ता अच्छी होगी। हमेशा सुनिश्चित करें कि आप जिस अनुवादक के साथ काम करते हैं वह खुलकर संवाद करने को इच्छुक है, उसके पास अच्छा समय प्रबंधन कौशल है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह एक विश्वसनीय भागीदार है।

कुल मिलाकर, अनुवादकों का काम भाषा और सांस्कृतिक ब्रिज बनाने में मदद करता है ताकि लोग विभिन्न भाषाओं और समयानुसार संदर्भों को समझ सकें। एक अच्छा अनुवाद पूरी तरह से अनुवादक की क्षमताओं और ग्राहक द्वारा प्रदान किए गए स्पष्ट निर्देशों और दिशा-निर्देशों दोनों पर निर्भर होता है। अनुवादक को सर्वोत्तम पाठक माना जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. एम.ए (हिंदी) फाइनल पेपर।
2. रोल ऑफ ट्रांसलेटर, डॉ. मैथ्यू प्राप्तिपति।
3. एसएसी ई-लर्निंग वेबसाइट।



विदेशों में हिन्दी का प्रचार प्रसार

डॉ. बेबी सुमंगला पी.वी.

असिस्टेंट प्रोफेसर ऑफ हिन्दी, महात्मा गांधी गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, माहि।

हिन्दी सर्वाधिक सशक्त, समृद्ध और वैज्ञानिक गुणों से संपन्न भाषा है। हर एक भाषा का अपना महत्व होता है। हिन्दी भाषा भारत के कोने-कोने में बोली और समझी जाती है। हिन्दी भारत की संपर्क भाषा है, संघ की राजभाषा है, हिन्दी विश्व की भाषा है।

आज हिन्दी केवल भारत की ही भाषा नहीं, अपितु, विदेशों में रहने वाले समस्त भारतवंशियों की भाषा है। भारत से जीवनयापन के लिए गए भारतवंशियों ने हिन्दी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया है। भारत के कूली मजदूरी विदेशों में गए। इन लोगों ने अपने अपने देशों में हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। वे पूर्ण मनयोग से अपनी भाषा तथा संस्कृति की रक्षा में लगे रहे। इन मजदूरों के भाषा प्रेम के कारण ही आज विश्व के कई देशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

विदेशों में हिन्दी भाषा का प्रचलन दो कारणों से होता है। पहला यह है कि धर्म प्रचार की भाषा बनकर एक देश की भाषा दूसरे देश में फैल जाती है। दूसरा कारण यह है कि यदि किसी देश में विदेशी सरकार सत्ता में आयी तो सत्ताधारी देश की भाषा उस देश में स्थापित हो जाती है। रोमन, फार्सी आदि भाषाएँ धार्मिक कारणों से विदेशों तक पहुँच सकी। अंग्रेजी फ्रेंच, डेच आदि भाषाओं के प्रचार प्रसार के मूल सत्ता रही है। लेकिन हिन्दी भाषा विदेशों में पहुँचने के कारण ये दोनों नहीं है। शोषण और दासता के विरुद्ध संघर्ष की संवाहिका बनी रही। भारतीय युद्ध के महान नेताओं ने मजदूरों के संघर्ष का पूर्ण समर्थन किया। गांधी जी ने इन मजदूरों को अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति स्नेह दृढ रखने की प्रेरणा प्रदान की। छोटे-छोटे देषों ने अपने राष्ट्र की मुक्ति के लिए संघर्ष आरंभ किया और स्वाधीनता प्राप्त की। इन देशों ने स्वाधीनता के बाद अपने-अपने देशों में हिन्दी में अध्ययन अध्यापन का क्रम जारी रखा।

वर्तमान समय में कई विदेशी विद्यालयों में हिन्दी भाषा साहित्य का पठन-पाठन होता है। विदेशों पर हिन्दी को चलचित्रिय संगीतों को समझने के लिए भी सीखा-सिखाया जाता है।

कई विदेशी रेडियो, टी.वी चैनल पर हिन्दी में कार्यक्रम का प्रसारण होता है। दिन-प्रतिदिन विदेश पर भारतीयों की संख्या बढ़ती जा रही है।

विदेशों में हिन्दी की कई पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं। इन्हें बहुत उत्सुक होकर पढ़ा जाता है। ऐसे पत्र-पत्रिकायें हैं – मिलाप, अमरदीप, लेखनी, हिन्दुस्थान, पुरवाइ आदि। ये पत्रिकायें हिन्दी भाषा के विकास में बहुत सहायक हैं। वैश्विक स्तर पर हिन्दी लेखन के क्षेत्र में कई रचनाकारों के नाम लिये जा सकते हैं। इन्होंने

अपने साहित्य में विदेशों में बसे भारतीयों के मनोवृत्तियों का सूक्ष्म निरूपण हिन्दी साहित्य के रूप में किया है। शैल अग्रवाल, रमेश पटेल, निर्मल परीजा आदि हिन्दी साहित्य के विदेशी सर्जकों ने अपनी कविताओं, कहानियों के द्वारा हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की। विदेशों में हिन्दी साहित्य सर्जना के दो रूप हैं। पहला रूप वह है जो आनंद प्राप्ति के लिए पढ़े-लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका, इटली, चीन, जापान आदि। दूसरा रूप वह है जो हिन्दी को अपनी मातृभाषा के रूप में लिखे-पढ़े जाते हैं। नेपाल, श्रीलंका, बर्मा आदि देशों में भारत से गये भारतीय हिन्दी को अपनी पैतृक संपत्ति के रूप में समझते हैं और वे हिन्दी साहित्य सर्जना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

हिन्दी ने विदेशी शासकों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। अंग्रेजी कलक्टर और आई.सी.एस अधिकारियों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दी व्याकरण, हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा और हिन्दी कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन किया। ग्रियर्सन, ग्राउज आदि विद्वानों के नाम ऐसे हिन्दी प्रेमियों में उल्लेखनीय हैं।

वर्धा के राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को खूब प्रचार प्रसार मिला है। शोध से लेकर लेखन कार्य तक में पर्याप्त रूप से हिन्दी को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारतीय जो सैकड़ों वर्षों पूर्व विदेशों में गये थे उन्होंने भारतीय संस्कृति को विकसित किया है।

भारतीय फिल्म इंडस्ट्री, मीडिया आदि सभी हिन्दी भाषा को साहित्यिक स्तर पर बढ़ावा देने में सहायक बन गये हैं।

आज वैश्वीकरण तथा बाजारवाद के कारण हिन्दी को और अधिक बढ़ावा मिल रहा है। हिन्दी भाषा को सीखकर यदि विश्व के किसी भी देश को भारत जैसा विशाल बाजार मिलता है तो वह स्वेच्छा से हिन्दी सीखकर अपना व्यापार बढ़ाएगा। विश्वभर में ढाई सौ से भी अधिक विश्व विद्यालयों में हिन्दी भाषा साहित्य का अध्ययन हो रहा है।

हिन्दी विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। पहला स्थान चीनी का और तीसरा स्थान अंग्रेजी का है। अमेरिका, लंडन, इंग्लैंड, ब्रिटेन, कनेडा आदि अनेक देशों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन होने के साथ-साथ हिन्दी में अनेक पत्र पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं। वहाँ के राष्ट्रीय चैनलों, रेडियो आदि पर हिन्दी के कार्यक्रम नियमित रूप से प्रसारित होते हैं।

भारत से बाहर करीब 170 विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन कार्य विगत अनेक वर्षों से नियमित रूप से चल रहा है। आजकल हिन्दी का प्रचार-प्रसार तथा उनकी माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

जापान के विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं में हिन्दी पढाई जाती है 20 वर्षों से 'सर्वोदय' नामक पत्रिका यहाँ से प्रकाशित हो रही है। जर्मनी के 17 विद्यालयों में हिन्दी के स्वतंत्र विभाग हैं। इंग्लैंड में अंग्रेजी के पश्चात् सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिन्दी ही है। यहाँ का न्यूज़ चैनल बी.बी.सी पर महाभारत कई बार प्रसारित किया गया था। इटली के विश्वविद्यालयों में अनेक छात्र हिन्दी के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन कर रहे हैं। सोवियत संघ, मँगोलिया, रोमानिया, पोलैंड आदि देशों के छात्र हिन्दी सीखने के लिए लेनीग्राड अथवा मास्को विश्व विद्यालय आते हैं। हिन्दी भाषा का अनुवाद जितना रूसी भाषा में हुआ है उतना संसारकी किसी भी भाषा में

नहीं हुआ। थाईलैंड में हिन्दी जानने वालों की संख्या एक लाख से भी अधिक है।

पूरे विश्व में सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जिसने सभी देशों की संस्कृतियों से हमें परिचित करवाया। हिन्दी सिनेमा पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति को प्रसारित करता हुआ हिन्दी भाषा का प्रतिनिधित्व करता है। विश्व के अन्य भूभागों के लोगों को भारतीय संस्कृति या एशियाई संस्कृति का अध्ययन करना है तो उसके लिए हिन्दी सिनेमा कारगर सिद्ध हुआ है। हिन्दी सिनेमा के माध्यम से हिन्दी भाषा समूचे विश्व में अपना स्थान निश्चित किये हुए है। अंग्रेजी भाषा की सिनेमा हिन्दी में, हिन्दी भाषा में बने सिनेमा अंग्रेजी में, विश्व की किसी भी भाषा में अनुवादित होने से पश्चिम और एशियाई संस्कृति का अध्ययन इससे होता है। प्रेमचन्द की कृतियों को पढ़ने के लिए कई विदेशियों ने हिन्दी सीखी। हिन्दी सिनेमा से पूरा विश्व प्रभावित हैं यह भारतीय संस्कृति का पूरे विश्व में पहुँचा रहा है।

इंटरनेट के द्वारा करोड़ों लोग हिन्दी साहित्य को पढ़ रहे हैं। हिन्दी में साहित्यिक वेबपन्नों की संख्या लाखों में हैं। कविता कोश में सभी कवियों एवं लेखकों की रचनायें उपलब्ध है। इसे लोग हर कोने कोने से पढ़ रहे हैं। भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में इंटरनेट पर लोग हिन्दी पढ़ लिख रहे हैं।

संसार भर के लगभग 66 देशों में हिन्दी विभाग की स्थापना हो चुकी है, अन्य देशों में इनके विस्तार की योजना चल रही है। इस कार्य में अनेक संस्थाएं अपने सहयोग को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप दे रही है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के प्रयास के फलस्वरूप अफगानिस्तान सहित अन्य स्थानों पर हिन्दी की शिक्षण और पाठ-पठन की व्यवस्था की गयी है। वहाँ पर सैकड़ों की संख्या में छात्रों की उपस्थिति देखी जा सकती है। चीन के विश्वविद्यालय में शिक्षा के साथ-साथ हिन्दी में शोध भी हो रहे हैं। जर्मनी और रूस में यही स्थिति है। आज विश्व के अनेक देशों में हिन्दी में लेख किया जा रहा है।

हिन्दी के प्रचारक और लेखक विदेशों में अलग-अलग हिन्दी की सेवा कर रहे थे। इन लोगों को एक मंच प्रदान करने में विश्व हिन्दी सम्मेलनों ने एक अच्छी भूमिका निभायी है। इन सम्मेलनों ने अंतराष्ट्रीय धरातल पर हिन्दी के प्रचार प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. यह प्रवासी हिन्दी का स्वर्णयुग है— आलेख तेजेन्द्र शर्मा।
2. विदेशों में हिन्दी पत्रकारिता —डॉ. पवन कुमार जैन।
3. विश्वभाषा हिन्दी— स्थिति और संभावनायें, संपादक — अवधेश मोहन गुप्त और सुशीला श्रवती।
4. हिन्दी और प्रवासी भारतीय — राकेश बी. दुबे।
5. हिन्दी की विश्वयात्रा — प्रो. सुरेश।



कार्यरत महिलाओं के समक्ष व्यवसाय और गृह का भूमिका द्वन्द

डॉ. मंजु चौधरी

एसो० प्रो० समाजशास्त्र विभाग, रानी भाग्यवती देवी महिला महाविद्यालय, बिजनौर।

शिक्षा के प्रचार प्रसार से देश में शिक्षित युवतियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी स्त्रियां भी पढ़-लिखकर नौकरियां करने लगीं। तथा कामकाजी महिलाओं का एक नया वर्ग चल गया। जिस समाज में स्त्री की कमाई की अनुचित समझा जाता था, उसी समाज में स्त्री की कमाई से घर चलने लगे। “दोनों कमाते हैं।” यह बहुत गर्व की बात समझी जाती है। देश में कामकाजी महिलाओं का इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं है। इसे यूं मान लेना चाहिए कि स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्त से प्रभावित होकर महिलाओं में आत्मानिर्भरता के लिये नई सोच, नई चेतना पैदा हुई है। यह उसी का परिणाम है। स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई उसी ने इस क्षेत्र में लोगों को उत्साहित किया। अच्छे जीवन स्तर की इच्छा को बल मिला यह तो समय की आवश्यकता है, परिवार की आवश्यकता, व्यक्तिगत अहम् की तुष्टि, समय व्यतीत करने की चाह आदि ऐसे कारण हैं जो कामकाजी महिलाओं के केन्द्र बिन्दु हैं। अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि कार्यरत महिलाओं के सामने मुख्य समस्या भूमिका संघर्ष की है कि वे अपने आपको परिवार तथा कार्यालय के अनुसार कैसे समंजित करें निम्न स्व-प्रतिबिम्ब और दोहरी भूमिकाएं कामकाजी महिलाओं के लिये भूमिका संघर्ष पैदा कर रही हैं जिसका प्रभाव पारिवारिक सम्बन्धों तथा अपेक्षित भूमिका निर्वहन पर पड़ रहा है। कामकाजी महिलाएं आज भी आर्थिक रूप से पुरुष से मुक्त नहीं हैं क्योंकि जो महिलाएं अपने परिवार की अर्थव्यवस्था में योगदान करती हैं वे अपनी आय को अपनी इच्छा से व्यय करने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। सामाजिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक आयामों में भी उसकी स्थिति पुरुष के समरूप नहीं है। जिस प्रकार वह नौकरी करती हैं, घर का काम करती हैं, इन सब के प्रति उसकी निष्ठा उसके जीवन के स्वरूप के सन्दर्भ पर निर्भर करती है। समाज के द्वारा उसका मूल्यांकन बिल्कुल भिन्न परिप्रेक्ष्य में होता है।

महिलाओं के कार्यरत होने का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति के बाद इस प्रक्रिया में काफी तीव्रता आयी लेकिन भारत में यह प्रक्रिया अन्य देशों की तुलना में विलम्ब से प्रारम्भ हुई। महिलाओं का कार्यक्षेत्र में प्रवेश, उनकी आर्थिक आवश्यकता, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा, आर्थिक विवशता, उपयोगी व उच्चतर जीवन स्तर अनेक कारणों से रहा होगा।²

एक कामकाजी महिला को अपने कार्यरत जीवन तथा मां के रूप में दो विरोधी भूमिकाओं के संघर्ष का

सामना करना पड़ता है। एक तरह अपने कार्यालय का कार्यभार तथा दूसरी ओर मां के रूप में संतानों की देखभाल, इसी प्रकार एक कार्यरत महिला अपने कार्य के साथ-साथ घर और परिवार की देखभाल करती है तब भी संघर्ष उत्पन्न होती है।

व्यवसायिक भूमिका तथा परम्परागत भूमिकाओं को साथ निभा पाना एक महिला के लिए प्राकृतिक रूप से कठिन हो जाता है। आज भी परिवार में कई कार्य या भूमिकाएं ऐसी होती हैं जिनके निर्वाह की पूर्ण जिम्मेदारी एक महिला की ही मानी जाती है। अतः एक कार्यरत महिला के लिए दोनों क्षेत्रों में समायोजन एक समस्या उत्पन्न कर देता है। निम्नकाक का इस सन्दर्भ में कहना है कि कई लोगों के लिए एक साथ विवाह और कार्य के उद्देश्य को स्वीकार करना एक संघर्ष उत्पन्न कर सकता है। इससे निश्चय ही कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। क्योंकि दो प्रकार के उद्देश्यों की संतुष्टि के लिये दो विभिन्न प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है।³

महिलाओं की भूमिका और प्रस्थिति परिवर्तन के सन्दर्भ में मृदुला ने लिखा है कि भारतीय समाज एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है जिसके कारण समाज में पारम्परिक और आधुनिक मूल्यों के बीच एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। विशेषकर समाज में महिलाओं को नई जिम्मेदारी के कारण घर और बाहर दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। परिवार की बढ़ती आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप: बढ़ते आर्थिक दबाव के कारण नौकरी करने को बाध्य होना पड़ता है।⁴

पी० शीना⁵ का अध्ययन केरल के कोझीकोड जिले में सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों में कार्यरत कुल 495 महिलाओं पर है। अध्ययन में पाया कि महिला रोजगार सबसे अधिक स्कूलों में व स्वास्थ्य विभाग में है और इसके विपरीत सबसे कम महिला भागीदारी पुलिस विभाग में है। यह भी देखा गया है कि रोजगार से महिलाओं के अधिक निर्णय लेने की शक्ति व घर पर उनकी एक बेहतर स्थिति का निर्धारण होता है। शीना ने अपने अध्ययन में पाया कि वहां पर कार्यरत महिलाओं के लिए अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु व वित्तीय बोझ के कारण रोजगार से सम्बद्ध है तथा निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यरत महिलाओं में सामाजिक आर्थिक शर्तों की दशा बेहतर है।

सौम्या पण्डित, शोभा उपाध्याय⁶ का अध्ययन मुख्यतः मध्यम वर्ग की कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका (व्यवसायिक भूमिका व सामाजिक भूमिका) के अन्तर्सम्बन्ध पर केन्द्रित है। अध्ययन में पाया गया कि मध्यम वर्ग की महिलाएं अपने पारिवारिक जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए कार्य करती हैं तथा महिलाओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमिकाओं के निर्वाह के फलस्वरूप पारिवारिक जीवन में दबाव एवं तनाव व दशाओं में वृद्धि हुई है।

वर्षा कुमारी⁷ द्वारा ओडिशा राज्य के राउरकेला शहर सार्वजनिक क्षेत्र के उधमों में, बैंक, स्कूल व कॉलेजों में कार्यरत महिलाएं, अस्पतालों वाणिज्यिक संगठनों जैसे विभिन्न व्यवसायिक क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की समस्याओं और चुनौतियों का अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया कि अलग-अलग आयु वर्ग में व विशेष वर्ग की महिलाओं तथा विभिन्न श्रेणियों की कार्यरत महिलाएं जैसे विवाहित महिलाएं व अविवाहित महिलाएं, तलाकशुदा महिलाएं व परित्यक्ता महिलाओं की समस्याओं व चुनौतियों में विभिन्नता पाई जाती है। किन्तु इसके साथ ही निश्चित रूप से कुछ सामान्य तरह की समस्याओं जैसे मानसिक व शारीरिक तनाव, परिवार व नौकरी दोनों के बीच उचित सन्तुलन की समस्या, परिवार की देखभाल, कार्यस्थल में भेदभाव व तनावपूर्ण जीवन इत्यादि

का सामना करना पड़ता है।

कार्योजित महिलाओं के सामाजिक आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित बहुत ही महत्वपूर्ण अध्ययन हुये हैं। यह अध्ययन महिलाओं पर कई दृष्टिकोण से किये गये हैं। वर्तमान समय में यह देखा जा रहा है कि बैंकिंग सेवा, क्षेत्र में महिलाओं को अत्यधिक आकर्षित किया है।

निश्चित अवधि तक कार्य, निश्चित नियम, राजनीतिक हस्तक्षेप का अभाव, सापेक्ष सुरक्षा आदि कई ऐसे कारक हैं जिससे महिलाओं का आकर्षण बैंकिंग क्षेत्र की तरफ बढ़ा है। लेकिन कार्य की अनुकूलता व आकर्षक वेतन के साथ-साथ महिला से जुड़ी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा का स्तर आदि कारक महिलाओं के समक्ष कार्य और परिवार का दोहरा दबाव उपस्थित करते हैं। प्रदत्त और अर्जित मूल्य तथा भूमिका के बीच आज की कामकाजी महिला किस तरह समंजन कर रही है? प्रस्तुत अध्ययन इसी प्रश्न के उत्तर की खोज का प्रयास है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

1. कार्यरत महिलाओं के सेवायुक्त होने के कारण सम्बन्धित विषयक तथ्यों का विश्लेषण करना।
2. कार्यरत महिलाओं की व्यवसायिक संतुष्टि विषयक तथ्यों का विश्लेषण करना।
3. कार्यरत महिलाओं का दोहरी भूमिका निभाने के कारण उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को ज्ञान करना।

परिकल्पना :-

1. कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकाकी परिवार से सम्बन्धित होती हैं।
2. कार्यरत महिलाएं कम वेतन व अत्यधिक श्रम के दबाव कारण अपने व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं।
3. भूमिका द्वन्द्व से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के बावजूद महिलाएं समंजन बनाने में सफल रही हैं।

शोध प्रारूप :-

प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक व व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। अध्ययन का समग्र बिजनौर शहर में बैंको में कार्यरत कुल 101 महिलाएं हैं जिनका 50 प्रतिशत दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर चयन किया गया है। इस तरह अध्ययन के निर्देशन में कुल 55 बैंकिंग सेवा में कार्यशील महिलाएं हैं जिनका साक्षात्कार अनुसूची द्वारा अध्ययन किया गया है। प्राथमिक स्रोत से प्राप्त किये गये आंकड़ों को तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष :-

पारिवारिक संरचना एवं परिस्थिति

तालिका संख्या-01

कार्यरत महिलाओं के परिवार का स्वरूप

परिवार स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	17	30.9
एकांकी परिवार	37	69.1
योग	55	100

तालिका संख्या-01 से ज्ञात होता है कि परिवार के स्वरूप से सम्बन्धित मान्यता के अनुसार अधिकांश महिलाएं 61.1 प्रतिशत एकांकी परिवार से सम्बन्धित हैं, जबकि 30.1 प्रतिशत महिलाएं संयुक्त परिवार से सम्बन्धित

हैं। अतः इस तालिका द्वारा प्राप्त तथ्यों से यह मान्यता स्पष्ट हो जाती है कि सामान्यतः कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकांकी परिवार से सम्बन्धित हैं। इससे अध्ययन की पहली उपकल्पना, कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकांकी परिवारों से संबंधित होती हैं की पुष्टि होती है।

तालिका संख्या-02

महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्य

संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1-3	42	76.36
3-5	13	23.64
5 से अधिक	---	---
योग	55	100

तालिका संख्या-02 से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 76.36 प्रतिशत कार्योजित महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या 1-3 की बीच की है जबकि 23.64 प्रतिशत महिलाओं के परिवारों में यह संख्या 3-5 के बीच पायी जाती है।

तालिका संख्या-03

महिलाओं के कार्यरत होने के उत्तरदायी कारण

उत्तरदायी कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु	27	49.10
आत्मनिर्भर होने के लिये	18	32.72
अपनी शिक्षा का उपयोग करने के लिये	06	10.03
अन्य कारण	04	07.28
योग	55	100

तालिका संख्या-01 व तालिका संख्या-03 का तुलनात्मक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि 76.36 प्रतिशत कार्योजित महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या कम पायी गई है जिसके कारण सर्वाधिक 46.10 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं ने घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु व्यवसाय को अपनाया है, जबकि जिन परिवारों में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या अधिक (3-5 के बीच) पायी गयी है। उन परिवारों की कार्यरत महिलाओं में आत्म-निर्भर होने के लिए व्यवसाय को अपनाया है।

तालिका संख्या-04

महिलाओं के वर्तमान व्यवसाय से संतुष्टि

व्यवसाय से संतुष्टि	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	17	30.90
नहीं	33	60.00
निश्चित नहीं	05	09.10
योग	55	100

तालिका संख्या-04 से ज्ञात होता है कि 60 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जो अपने वर्तमान व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं जिसके कारण वे वर्तमान व्यवसाय में नहीं बने रहना चाहती हैं। इसके कई कारण हैं घण्टे की अनिश्चितता, व्यवसाय में प्राप्त होने वाले वेतन आदि। जबकि 30.9 प्रतिशत महिलाएं अपने वर्तमान व्यवसाय में रहना निश्चित नहीं है।

तालिका संख्या-05

कार्यरत महिलाओं को कार्य के घण्टों के अनुकूल वेतन

स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	12	21.82
नहीं	43	78.18
योग	55	100

तालिका संख्या-04, तालिका संख्या-05 का तुलनात्मक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि कार्यरत अधिकांश महिलाओं का मानना है कि उन्हें उनके द्वारा किये जाने वाले श्रम के अनुकूल वेतन नहीं दिया जाता है। जबकि सिर्फ 21.82 प्रतिशत महिलाएं अपने वेतन से संतुष्ट पायी गई हैं। अधिक काम व कम वेतन की असंतुष्टि के कारण अधिकांश महिलाएं अपने वर्तमान व्यवसाय में बने रहने के पक्ष में नहीं है। अतः तालिका संख्या-4 तथा 5 द्वारा प्राप्त तथ्यों से अध्ययन की यह उपकल्पना की संपुष्टि हो जाती है कि "कार्यरत महिलाएं कम वेतन व अत्यधिक श्रम में दबाव के कारण व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं।"

भूमिका द्वन्द्व एवं समंजन :-

तालिका संख्या-06

परिवार में किसी विषय पर मतभेद की स्थिति में उत्तरदातियों के विचार

विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
विपक्ष को अपना दृष्टिकोण समझाने का प्रयास करके	37	67.27
अपने अधिकार और पद दबाव डालकर	01	01.81
उदासीन	02	03.63
स्थिति के प्रति समर्पण	15	27.29
योग	55	100

तालिका संख्या-06 का विश्लेषण उपरान्त ज्ञात होता है कि सर्वाधिक कार्यरत महिलाएं 67.27 प्रतिशत परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किसी विषय पर मतभेद होने पर उस स्थिति का सामना करने हेतु विपक्ष को अपना दृष्टिकरण समझाने हेतु प्रयास करती है। जबकि सबसे कम कार्यरत महिलाएं 01.81 प्रतिशत परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किसी विषय पर मतभेद होने पर उस स्थिति का सामना करने हेतु अपने अधिकार और पद का दबाव डालती है। अतः कह सकते हैं कि ज्यादातर कार्यरत महिलाएं पारिवारिक जन हेतु समर्पित रहती है।

तालिका संख्या-07

गृह प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	33	60.05
नहीं	09	13.36
कभी-कभी	13	23.64
योग	55	100

तालिका संख्या-07 से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक महिलाओं 60 प्रतिशत को गृह प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी प्राप्त होती है जबकि मात्र 16.36 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि उन्हें गृह-प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी नहीं प्राप्त होती है।

तालिका संख्या-08

पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	40	72.72
नहीं	04	07.28
कभी-कभी	11	20.0
योग	55	100

तालिका संख्या-07 व तालिका संख्या-08 का तुलनात्मक विश्लेषण उपरान्त ज्ञात होता है कि जिन कार्यरत महिलाओं को गृह प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी प्राप्त होती है वे अपनी आपेक्षित भूमिकाओं के प्रति सजग रहती हैं तथा पूर्ण करने का प्रयास करती हैं। तालिका संख्या-8 से पता चलता है कि पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका अदा करने के सन्दर्भ में अधिकांश महिलाओं 72.72 प्रतिशत ने यह स्वीकार किया है। कि वे अपने पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाती है जबकि 20 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकारा है कि वे किन्हीं कारणों से कभी-कभी सक्रिय भूमिका अदा कर पाती हैं। सबसे कम 07.28 प्रतिशत महिलाओं ने माना है कि वे कभी भी पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका नहीं अदा करती हैं और ये ज्यादातर वे महिलाएं हैं जिन्हें गृह-प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी नहीं प्राप्त होती है। तालिका संख्या-07,08 तथा 09 द्वारा प्राप्त तथ्यों से अध्ययन की यह उपकल्पना कि "भूमिका द्वन्द से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के बावजूद महिलाएं समंजन बनाने में सफल हो रही हैं" प्रमाणित होती है।

यहाँ यह तथ्य अवश्य उल्लेखनीय है कि ऐसा करने में वे महिलाएं ही सफल हो रही हैं जिन्हें गृहप्रबन्ध में पुरुषों की भागेदारी प्राप्त होती है।

तालिका संख्या-09

महिलाओं द्वारा परिवारों के साथ सामंजस्य

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	34	61.81
नहीं	16	29.09
कभी-कभी	05	09.1
योग	55	100

तालिका संख्या-09 का तुलनात्मक विश्लेषण उपरांत ज्ञात होता है कि ज्यादातर महिलाएं 61.81 प्रतिशत परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम हैं किन्तु ये तथ्य भी सामने आया है कि ये वे महिलाएं हैं जिन्हें गृह प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी प्राप्त होती है। अतः कह सकते हैं कि गृह प्रबन्ध में पुरुष भागीदारी कार्यरत महिलाओं द्वारा परिवार के साथ समंजस्य स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त और अर्जित मूल्य तथा भूमिका के बीच आज कामकाजी महिला किस तरह समंजन कर रही हैं। इस प्रश्न के उत्तर की खोज की गई है और यह पाया गया कि कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है दोहरी जिम्मेदारियों का बोझा महिलाओं पर व्यवसाय का उत्तरदायित्व बढ़ा देने के बावजूद उनकी पारंपरिक भूमिका में कोई विशेष कांट-छांट नहीं की गई है किन्तु ये तथ्य भी सामने आया है कि वर्तमान युग में पुरुष तथाकथित स्त्रियोचित कार्य करने में शर्म महसूस नहीं करते हैं तथा वे गृह-प्रबन्ध में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में पाया गया कि जिन कार्यरत महिलाओं को गृह-प्रबन्ध में पुरुषों की भागीदारी प्राप्त होती है वे अपनी आपेक्षित भूमिका के प्रति सजग रहती है तथा पूर्ण करने का प्रयास करती हैं और वे कार्यरत महिलाएं परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी समक्ष होती हैं।

वर्तमान में स्त्रियां संयुक्त परिवारों से मुक्त होकर एकांकी परिवार में रहना चाहती हैं, वे एकांकी परिवारों की स्थापना कर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना तथा पारिवारिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहती हैं। संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि स्त्रियों का स्थान पुरुषों के ही समान महत्वपूर्ण है अतः उनकी विभिन्न क्षेत्रों में उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता है। सुझाव: भारत का सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य कामकाजी महिलाओं को उचित व्यवसायिक वातावरण नहीं प्रदान करता है। अतः सुझाव है कि सार्वजनिक निजी प्रतिष्ठानों में महिला सुरक्षा और आत्म सम्मान से जुड़ी आधारभूत प्रणाली का विकास किया जायें तथा संस्थानों में कार्यरत महिलाओं के व्यवसाय संतुष्टि हेतु उन्हें कार्य घण्टे श्रम के अनुकूल वेतन की प्राप्ति होनी चाहिए क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि बैंकिंग क्षेत्र की कार्यरत महिलाएं श्रम के अनुकूल वेतन न मिलने के कारण वे अपने वर्तमान व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं। कामकाजी महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक सुधार क्रियान्वित करने की दिशा में अनेक प्रयास करनेहोगें जैसे हर क्षेत्र में उनकी हिस्सेदारी और महिलाओं की नेतृत्वकारी भूमिका में वृद्धि करना, उन पर हो रही किसी भी प्रकार की हिंसा का अंत कर उन्हें शान्ति के प्रत्येक पहलू और सुरक्षा संबंधी तमाम प्रक्रियाओं में सम्मिलित करना आदि। साथ ही आर्थिक सशक्तीकरण और राष्ट्रीय योजनाओं और बजटिंग में लैंगिक समानता को केन्द्र बिन्दु में रखना भी महत्वपूर्ण है।

स्त्रियों को अपने कार्यक्षेत्र में एवं सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ कार्य करने में होने वाली असुविधा को स्वयं दूर करना होगा इसके लिए उन्हें उन सभी अधिकारों का प्रयोग करना चाहियें जो भारतीय संविधान के अर्न्तगत उनके लिए निर्धारित किये गये हैं। स्त्रियों को स्वयं उस आर्थिक व्यवस्था का विश्लेषण करना चाहिए जिनके कारण ये परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। उनके द्वारा ऐसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं का निर्माण किया जाना चाहिए जिसके द्वारा वे समानता के स्तर पर आ सकें तथा समाज में स्वतन्त्र नागरिक की भांति अपने अधिकारों तथा अवसरों का प्रयोग कर सकें।

संदर्भ :-

1. आहूजा राम, 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006, पृ. 65-66
2. शाह इला एवं गोविन्द लाल 'कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी चिन्तनपरम्परा वर्ष 16 अंक-1 जनवरी-जून 2017, पृ. 85-86
3. निमकाफ उद्धत कपूर प्रोमिला मैरिज एण्ड वर्किंग विमेन इन इण्डिया', विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1661, पृ. 14-15
4. भदौरिया मृदुला, 'वूमेन इन इंडिया' ए०पी०एच० पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली, 1997 पृ. 82
5. Sheena P. 'Employment of women in the organized sector of Kerla : A case study'- Research avstracts on women's Employment 1998-2000, National Institute of Public Cooperation & Child Development', P-270
6. Pandit Soyma & Upadhaya Shobha", Role conflict and its effect on middle class working women of India' journal of business and management ISSN: 2278-487, Volume 4, P.P. 35-37
7. Kumari Varsha, Problems and challenges faced by urban working women in India' Available at <http://ethesis-nitrkl.ac.in/6094/1/E-208.pdf>



भारत : मानव संसाधन के विकास में शिक्षा की भूमिका

करुणेश प्रताप सिंह, शोधार्थी,

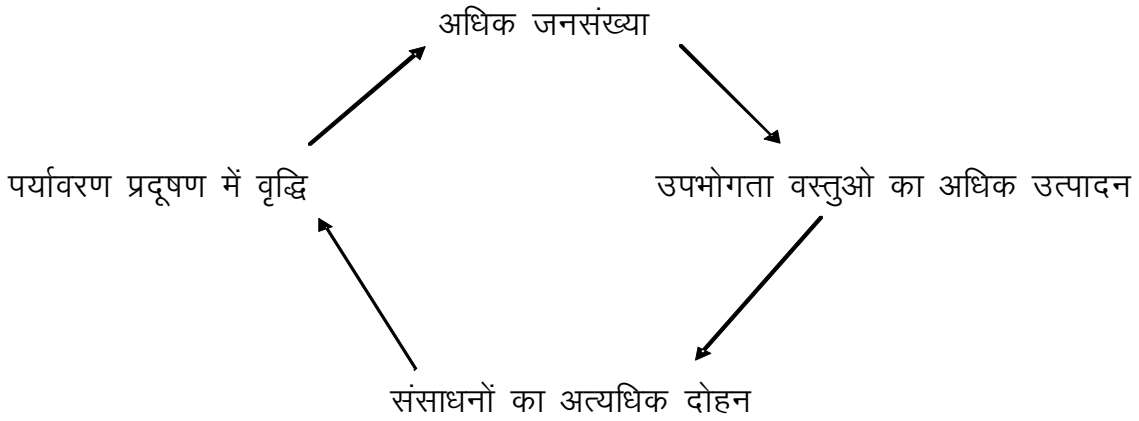
डॉ. वीना रानी, शोध निर्देशिका

स्कूल ऑफ एजुकेशन ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर।

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में वहाँ पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, परन्तु उन संसाधनों को उपयोगिता प्रदान करने एवं उपभोग करने वाला मानव ही है। किसी भी देश की मानव सम्पदा को ही उसका सम्भाव्य संसाधन माना गया है, जिसमें संख्या एवं गुणवत्ता दोनों ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि समस्त जनसंख्या को मानव संसाधन नहीं कहा जा सकता। मानव संसाधन जनसंख्या के केवल उसी भाग को कहते हैं, जो शिक्षित, प्रशिक्षित, कर्मठ और योग्य हो, जिसमें उत्पादन एवं उपभोग की क्षमता हो। इस प्रकार मानव संसाधन वह पूंजी है जिसको प्राकृतिक संसाधनों में लगाकर देश का आर्थिक विकास किया जा सके।

यदि किसी देश की जनसंख्या वहाँ पर उपलब्ध संसाधनों की क्षमता से अधिक होगी तो वह जनसंख्या वहाँ के विकास में बाधक होगी, किन्तु यदि वही जनसंख्या यदि कुशल एवं योग्य है तो वह उस देश के लिए उपयोगी संसाधन बन जाते हैं। जनसंख्या ही इस स्थिति को उस देश के सन्दर्भ में अनुकूलतम जनसंख्या की स्थिति कहा जाता है।

यूनाइटेड नेशंस पॉपुलेशन फण्ड (यूएनएफपीए) की 'द स्टेट ऑफ वर्ल्ड पॉपुलेशन रिपोर्ट 2023' के अनुसार भारत 29 लाख आबादी के अन्तर से चीन को पछाड़ कर दुनिया में सर्वाधिक आबादी वाला देश बन चुका है। भारत की वर्तमान आबादी लगभग 143.86 करोड़ तक पहुँच गयी है। हांलाकि भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम सन् 1977 में ही शुरू हो गया था, किन्तु हमारे देश में ऐसी नीतियां पूरी तरह प्रभावी नहीं हो सकी जो जन्मदर एवं मृत्युदर के बीच सामंजस्य को बनाये रख सके। ऐसे में यह बढ़ती आबादी दरअसल हमारे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को न्यौता दे रही है और देश के आर्थिक विकास की राह में चिन्ता का सबब बना हुआ है। सर्वाधिक आबादी का मतलब प्रतिव्यक्ति आय का कम होना, जीवन की निम्न गुणवत्ता और पर्यावरणीय संसाधनों के अति दोहन से उसमें निरन्तर आ रही कमी के साथ-साथ यह गरीबी, असामनता और बिमारियों का भी कारण है। यही नहीं बढ़ती बेरोजगारी को भी अत्यधिक आबादी से जोड़कर देखा जाता है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या का गुणात्मक पक्ष अर्थात् जीवन की गुणवत्ता घटती जाती है।



यह सच है कि वर्तमान भारत विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश हो गया है, किन्तु यह भी सच है कि विश्व के कई विकसित देशों यथा सिंगापुर, ताइवान, नीदरलैण्ड, बेल्जियम व जापान आदि में जनसंख्या घनत्व भारत से कहीं ज्यादा है।

देश	घनत्व प्रति कि०मी०
सिंगापुर	6369
ताइवान	636
नीदरलैण्ड	392
बेल्जियम	341
जापान	339
भारत	332

कम भूमि पर अधिक जनसंख्या अर्थात् कम प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक जन दबाव। कम प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक जन दबाव होते हुए भी क्यों उपर्युक्त देश विकसित देशों की सूची में आते हैं जबकि भारत की लगभग 65 प्रतिशत आबादी 20-60 वर्ष के बीच की अर्थात् युवा होते हुए भी क्यों भारत विकासशील राष्ट्र की सूची में आता है? जब हम इस पक्ष प्रश्न का जबाब ढूंढने चलते हैं तो हमें इसके कई कारण दृष्टिगत होते हैं किन्तु इनमें प्रमुख रूप से दृष्टिगत होने वाला कारक है शिक्षा।

शिक्षा मानव संसाधन विकास की मुख्य चालक है। यह मुख्य रूप से हमारे राष्ट्र के भविष्य को आकार देता है। आज 142 करोड़ लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षा क्षेत्र में उचित पूंजी निवेश की आवश्यकता है। भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 3.5 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करता है, जोकि अधिकांश दक्षिण एशियाई देशों से तो अधिक है, पर न सिर्फ विकसित देशों वरन, ब्रिक्स देशों की तुलना में सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर खर्च करने से कम है।

ब्रिक्स राष्ट्रों में जीडीपी का शिक्षा पर व्यय (वर्ष 2020)

ब्रिक्स देश	जीडीपी का शिक्षा पर व्यय (प्रतिशत में)
द. अफ्रीका	6.9
ब्राजील	6.2
चीन	4.1
रूस	4.0
भारत	3.5

यह सच है कि भारत में स्वतन्त्रता के उपरान्त साक्षरता पर विशेष बल दिया गया जिसका परिणाम है कि आज भारत में वयस्क साक्षरता दर 74 प्रतिशत से अधिक है जिसमें वयस्क पुरुषों की साक्षरता दर 87.4 प्रतिशत और वयस्क महिलाओं की साक्षरता दर 71.5 (जनगणना रिपोर्ट 2011) है। इस प्रकार भारत में साक्षरता दर में वृद्धि हो रही है, पर शिक्षा की गुणवत्ता व लोगों की गुणवत्ता व कर्मठता में उस दर से बढौत्तरी नहीं हो रही है जिसकी आज भारतीय समाज को आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या एक संसाधन की अपेक्षा एक भार के रूप में देश के समक्ष प्रकट हो रही है। स्वाभाविक है कि यदि भारत को विकसित राष्ट्रों की कतार में स्वयं को खड़ा करना है तो उसे पर्याप्त संख्या में शिक्षित, प्रशिक्षित योग्य एवं कर्मठ मानव संसाधन तैयार करना होगा इसके लिए हमें अच्छे शिक्षण संस्थान, प्रशिक्षण संस्थान, प्रौद्योगिक संस्थान, प्रबन्धन संस्थान एवं मैडिकल संस्थानों जिसमें योग्य शिक्षक एवं प्रशिक्षक हो, की जरूरत है।

कई अच्छे शिक्षण संस्थान एवं प्रशिक्षण संस्थान जैसे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चिकित्सा संस्थान (एम्स), भारतीय प्रबन्धन संस्थान (आईआईएम) की स्थापना की गयी जिसमें उच्च क्षमता के मानव संसाधनों का निर्माण किया जा रहा है, किन्तु यह भी सच है कि भारत में उच्च क्षमतायुक्त शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों की बहुत ही कमी है व इन संस्थानों से निकलने वाले योग्य प्रशिक्षित मानव संसाधन देश की कुल जनसंख्या के सापेक्ष बहुत ही कम है।

क्यूएस वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग 2024 के 2900 संस्थानों में से भारत के 45 संस्थान ही शामिल हैं। यह रिपोर्ट यह प्रदर्शित करती है कि भारत में शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान आज भी वैश्विक स्तर पर मानकों के अनुरूप अपने को स्थापित नहीं कर पा रहे हैं। फिलहाल शिक्षण की गुणवत्ता और अन्तर्राष्ट्रीयकरण दो ऐसे व्यापक क्षेत्र हैं जहाँ भारतीय संस्थान वैश्विक स्तर से पीछे हैं। शिक्षण के अभाव का सीधा सम्बन्ध रोजगार की प्राप्ति पर पड़ता है, क्योंकि छात्र को मिले कौशल और रोजगार की आवश्यकताओं में कोई तालमेल नहीं बन पाता है।

आज की अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान प्रणालियों में छात्र का संकाय या फैकैल्टी, उसकी संरचना तथा शोध का ताना बाना बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें भारतीय संस्थान मात खा जाते हैं। यदि भारतीय शिक्षा संस्थानों को अपना प्रभाव बनाना है तो इन कमियों को दूर किया जाना चाहिये।

लोकसभा में विदेश मंत्री ने एक प्रश्न के जबाब में बताया कि 2022 में 2,25,620 भारतीयों ने अपनी नागरिकता छोड़ दी, जबकि 2021 में उनकी संख्या 1,63,370 और 2020 में 85,256 थी। उससे पहले 2019 में

1,44,017 व 2018 में 1,34,561 भारतीयों ने अपनी नागरिकता छोड़ी थी। स्पष्ट है कि भारत से बड़ी संख्या में लोग भारत की नागरिकता छोड़कर दूसरे देशों की नागरिकता ग्रहण कर रहे हैं और नागरिकता त्यागने की इस प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि ही देखी जा रही है। इसके लिए दो तरह की शक्तियां कार्य कर रही हैं— आकर्षक शक्तियां एवं विकर्षक शक्तियां। विदेशों में अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, बेहतर अवसर, अच्छी स्वस्थ सुविधाएं एवं जीवन जीने की बेहतर गुणवत्तापूर्ण स्थिति के कारण लोग भारत की नागरिकता छोड़ रहे हैं, तो दूसरी तरफ भारत में कई ऐसी समस्याएं हैं जिसकी वजह से लोग अब भारत की नागरिकता छोड़कर दूसरे देशों की नागरिकता ले रहे हैं। इस प्रकार भारत कुशल मानव संसाधन के मामले में दोहरी मार झेल रहा है। पहला देश की जनसंख्या के सापेक्ष कुशल, कर्मठ मानव संसाधन की कमी और दूसरा प्रतिभा पलायन।

आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत अपने जीडीपी का शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय के प्रतिशत को न सिर्फ बढ़ाए वरन् देश में आधारभूत सुविधाओं का इस स्तर पर विकास करे कि न सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र में विश्व स्तरीय शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान हो वरन् निजी क्षेत्र भी कुशल मानव संसाधन तैयार करने में महती भूमिका निभाने हेतु अग्रसर हो। साथ ही साथ भारत को मूल्य परक शिक्षा पर बल देना होगा, क्योंकि देश जब अपने नागरिक पर पर्याप्त पूंजी व्यय कर उसे एक कुशल मानव संसाधन के रूप में तैयार करता है तो उस नागरिक का भी कर्तव्य बने की वह रोजगार के साथ-साथ देश के प्रति अपने कर्तव्यों को भी समझे। इसी से प्रतिभा पलायन जैसी समस्याओं पर अंकुश लगेगा व देश का मानव संसाधन देश के काम आयेगा।

सन्दर्भ स्रोत :-

1. राष्ट्रीय परिवार स्वस्थ, सर्वेक्षण 2019-21
2. पंजाब केसरी (दैनिक समाचार पत्र)
3. बीबीसी हिन्दी (विवेचना)
4. यूएनएफपीए रिपोर्ट 2023।



नारी मन की उन्मुक्त स्वच्छन्दता, तृष्णा और भटकन की त्रासद कथा : 'गाथा अमरवेल की'

डॉ. आदित्य कुमार गुप्त

आचार्य हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

प्रवासी हिन्दी साहित्य की प्रख्यात लेखिका एवं समकालीन कथा साहित्य की चर्चित हस्ताक्षर डा. सुषम बेदी ने अपने कथा साहित्य में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कारों के द्वन्द्व में ऊहा-पोह होते प्रवासी भारतीयों के अन्तः संघर्ष को बखूबी चित्रित किया है। आज प्रवासी साहित्य एक नवीन विधा के रूप में अपने पैर जमा रहा है। इसका श्रेय उन प्रवासी रचनाकारों को है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि से दूर रहते हुए वहाँ की विविध प्रकार की समस्याओं का सामना कर, वहाँ रहने वाले भारतीय परिवारों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं परिवेशगत विविध समस्याओं की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पड़ताल करते हुए उत्कृष्ट कोटि का साहित्य सृजन किया है। प्रवासी साहित्यकारों की संख्या बहुत है। विशेषतः महिला साहित्यकारों में सुषम बेदी, सुधाओम ढींगरा, रचना श्रीवास्तव, जाकिया जुबैरी, उषा वर्मा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, उषाराजे सक्सेना, नीना पाल आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें डॉ. सुषम बेदी का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। डॉ. सुषम बेदी पंजाब के फिरोजपुर में पैदा हुई, दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.फिल. एवं पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। दिल्ली दूरदर्शन एवं रेडियो पर नाटकों तथा दूसरे सांस्कृतिक कार्यक्रमों से अनवरत जुड़ी रहीं। पहले कल्पना नेहरू कॉलेज दिल्ली तथा पंजाब विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया फिर संयुक्त राज्य अमेरिका चली गयीं और वहाँ बहुत समय तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय न्यूयार्क में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रोफेसर रहीं। वे अमेरिका जाने से पहले से लिख रही हैं। उनकी पहली कहानी 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई तब से वे निरंतर लिखती रहीं। अमेरिका में रहकर उन्होंने भारतीय नारियाँ जो अमेरिका में किसी न किसी उद्देश्य से विवाह के पश्चात् या पहले सर्विस आदि कारणों से आकर बस जाती हैं, उनके दाम्पत्य जीवन, विवाहित एवं विवाहेतर शारीरिक सम्बंधों तथा अन्य विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का मार्मिक, यथार्थ और जीवन्त वर्णन किया है।

डॉ. सुषमबेदी ने अपनी अनेक कहानियों एवं उपन्यासों में प्रवासी भारतीय नारियों के जीवन को प्रमुख रूप से केन्द्र में रहते हुए उनके अन्तः बाह्य संघर्षों को बारीकी से अभिव्यक्ति दी है। प्रवासी भारतीय नारियाँ विदेश में रहते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और वैवाहिक जीवन की विविध समस्याओं का सामना करती हैं। पश्चिम की भोग प्रधान जीवन शैली जहाँ उन्हें आकर्षित करती है। वहीं दूसरी ओर नैतिक वर्जनाएं एवं परम्परागत मर्यादाएँ, वहाँ का परिवेश, रीति-रिवाज, सभ्यता, रहन-सहन, वेशभूषा, उन्मुक्त स्वच्छन्दता उनकी परम्परागत मान्यताओं, विश्वासों से टकराते हैं। फलस्वरूप एक विचित्र सी उलझन, व्यग्रता और कशमकश की स्थिति में

पुराने का त्याग और नये को अपनाने का द्वन्द्व उनके जीवन में चलता रहता है, जो उनके स्वयं के जीवन को ही नहीं, वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित करता है। सुषमवेदी के अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'हवन', 'लौटना', 'कतरा दर कतरा', 'इतर' 'गाथा अमरबेल की', 'नवाभूमि की रसकथा', 'मोरचे', 'मैंने नाता तोड़ा', 'पानी केरा बुद्बुदा', महत्वपूर्ण हैं। 'चिड़िया और चील', 'यादगारी कहानियाँ', 'सड़क की लय', 'तीसरी आँख' उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। कहानी, उपन्यासों के अतिरिक्त सुषमवेदी ने कविताएं और निबन्ध भी लिखे हैं। इनकी कई रचनाओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। इनकी प्रायः रचनाओं में भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के बीच दोलायमान प्रवासी भारतीयों के मानसिक अंतर्द्वन्द्व का जैसा यथार्थ चित्रण हुआ है, वैसा आज हिन्दी में अन्यत्र नहीं मिलता है।

प्रवासी नारियों को लेकर लिखे गये उपन्यासों में 'गाथा अमरबेल की', 'नवाभूमि की रसकथा', 'मोरचे', 'मैंने नाता तोड़ा', पानी केरा बुद्बुदा उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। इनमें समकालीन समाज परिवार एवं जीवन की विविध प्रकार की समस्याओं, चुनौतियों, मध्यवर्गीय संस्कारों तथा आधुनिक भाव बोध से उत्पन्न विविध संघर्षों की कथा-व्यथा को रेखांकित किया गया है। उन्होंने पुरुष (पति) के शोषण की शिकार स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं से पाठकों को रूबरू करवाया है। अपने कथा साहित्य लेखन के संदर्भ में डॉ. सुषमवेदी ने लिखा है, जिसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है—'मैंने जो कुछ भी लिखा है। उसे अपने आस-पास से ही उठाया है। जीवन से प्रेरित हुई हूँ। जीवन की विडम्बनाओं से विसंगतियों से जीते-जागते लोगों से। लोगों को उन विसंगतियों को जीते देखा है। उन विडम्बनाओं को देखा है। उन्हीं में से चरित्र उठाये हैं और उनकी पहचानी स्थितियों में उतरकर चरित्रों का विकास किया है। जीवन के ज्यादा से ज्यादा नजदीक जाने की कोशिश की है। जितना नजदीक जाती हूँ। उतना ही उसकी विसंगतियों को देखती हूँ और उन्हीं विसंगतियों के जरिए मैं जिन्दगी के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करती हूँ। जितनी गहरी विसंगतियाँ, उतने ही चोखे यथार्थ के रंग।'।

'गाथा अमरबेल की' सुषमवेदी का पांचवाँ चर्चित उपन्यास है। इसमें उन्होंने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नारी मन की विभिन्न परतों को बड़ी सूक्ष्मता एवं बारीकी से मानोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया है। यह उपन्यास नारी मन की कथा-व्यथा का जीवन्त आख्यान है। उपन्यास में शन्नो असुरक्षा के भय से ग्रसित आत्म केन्द्रित मानसिकता की स्त्री पात्र है। शन्नो विश्वा की पत्नी एवं गौतम की माँ है, इन्हीं दोनों पुरुष पात्रों के नाम से उपन्यास दो खण्डों में विभाजित किया गया है, यदि कहा जाये शन्नो इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र है तथा वही अमरबेल है, जो अपने पति और बेटे के जीवन को नष्ट करने का मूल भूत कारण भी है। उपन्यास की कथावस्तु दो स्तरों पर विकसित हुई है। एक स्तर पर परिवार की कथा है, जिसे मुख्य कथा कह सकते हैं। दूसरे स्तर पर राजनीतिक गतिविधियों को लिया जा सकता है। उपन्यास परतन्त्र भारत की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होकर स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय परिवेश को समेटे हुए है। शन्नो, विश्वा, हरीश, गौतम और दिव्या प्रमुख पात्र हैं। शन्नो उपन्यास की नायिका है। वह स्वच्छन्द आचरण करती दिखाई देती है। वह ऐसी नारी नहीं है, जो सामाजिक और पारिवारिक नैतिक बन्धनों में जकड़कर भीतर ही-भीतर घुटती रहकर जीवन यापन करे, अपितु वह ऐसी स्थितियों, परिस्थितियों से विद्रोह करती हुई, पुरुष की तरह स्वच्छन्द आचरण की हिमायती है। शन्नो का पति विश्वा जब परस्त्री अनुसुईया से अपने प्रेम की बात बताता है तो एक बार वह टूटती सी नजर आती है, और अपना दर्द छुपा नहीं पाती है— 'रोयी हुई आँखों की दास्तान छुप नहीं सकती। ताई जी ने पूछ ही लिया क्या

बात है? आँखे इतनी लाल और सूजी-सूजी सी हैं क्या रोती रही है तू! न ना ताई जी। किरकिरी घुस गई थी। ज्यादा मलने से सूज गई।²

'गाथा अमरबेल की' उपन्यास नारी मन के विविध भावों, अन्तर्द्वन्द्वों मनस्थितियों, महत्वाकांक्षाओं एवं खोने का डर तथा पाने की तीव्र लालसाओं का यथार्थ और जीवन्त पड़ताल करता है। शन्नो विश्वा की पत्नी है। विश्वा, शन्नो को एक आधुनिक नारी के रूप में देखना चाहता है। इसके लिए वह उसे प्रोत्साहित भी करता रहता है यही नहीं वह उसे एक नाट्य संस्था में काम करने के लिए भी भेजता है। परंतु शन्नो एक अतृप्त स्त्री है। वह परिस्थितियों से तालमेल नहीं बिठा पाती है। वह महत्वाकांक्षिणी और स्वच्छन्द प्रकृति की महिला है। विश्वा किसी अन्य स्त्री से प्रेम करता है। अतः शन्नो की न केवल मानसिक अपितु शारीरिक भूख भी अतृप्त रहती है। इसकी ओर संकेत करती हुई लेखिका लिखती है— 'तृप्त होकर विश्वा जब सो गया तो शन्नो को लगा, उसकी देह अभी और माँग रही है। क्या अंदाज था विश्वा को कितनी बेताब प्यास बसी थी उस देह राशि में। उसके बुझाने पर कुछ देर के लिए शांत हो भी जाये पर फिर से भड़क उठती है वह प्यास, जैसे शरीर में कोई ज्वालामुखी बसा हो जो बरसात को गटक कर भी सुगलता ही रहे।'³ शन्नो अतृप्ति की ज्वाला में जलना अपना भाग्य नहीं मानती, वह संतुष्ट और विलासी जीवन जीना चाहती है और अपनी वासना की शांति के लिए अपने पति के मित्र हरीश के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाकर विश्वा से मिलने वाली नीरसता के स्थान पर हरीश से मिलने वाले आनंद और उछाह से भर जाती है—'शन्नो को अचानक नया माहौल अच्छा लगने लगा था। जिन्दगी की एक रस लम्बाई पर कितने ही विराम चिन्ह लग गये थे। अब सूनेपन में सुख था। अब सूनापन था ही कहाँ? बल्कि इतना भरा भूरापन तो पहले कभी था ही नहीं शरीर और मन दोनों ही उछाह, उत्सुकता, उतावली थे।'⁴

शन्नो के व्यक्तित्व में विशुद्ध भारतीय वर्जनाओं के अन्दर डूब-उतर कर नया व्यक्तित्व गढ़ती स्त्री की संघर्षशीलता है। उसका चरित्र एक सामान्य नारी का चरित्र है। उसमें दुर्बलताएँ, सबलताएँ दोनों हैं। जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है उसका व्यक्तित्व और अधिक मजबूत होकर उभरता जाता है। वह नारी के लिए बने सामाजिक बंधनों एवं मर्यादाओं को खुली चुनौती देती है। उसे यह मंजूर नहीं कि पुरुष तो पुरुष होने के नाते बाहर चाहे कुछ भी करे किसी भी स्त्री से मौज मस्ती करे और नैतिक वर्जनाओं में बंधी स्त्री किसी अन्य पुरुष से मौज-मस्ती करे तो लोग अँगुली उठाने लगते हैं, और स्त्री को चरित्रहीन घोषित कर देते हैं। इसलिए जब विश्वा किसी अन्य स्त्री से सम्बंध बनाता है, तो वह भी पीछे नहीं रहती और उसके दोस्त हरीश से विवाहेतर शारीरिक सम्बंध बना लेती है। यही नहीं विश्वा की मृत्यु के बाद बेटे गौतम के साथ रहते हुए केवल शारीरिक सुख के लिए हरीश के पास वियाना जाकर कुछ समय व्यतीत करती है।

वह नारी के ऊपर थोपी गयी नैतिक वर्जनाओं पर समाज के सामने प्रश्न खड़े करते हुए कहती है— 'कोई भी औरत अपनी इच्छा से न तो पतिव्रता होती है और न ही पति की चिता पर सती। यह सब तो जबरदस्ती लादा जाता है। आदमी खुद तो पतिव्रता होता नहीं न ही पत्नी की चिता पर सती होता है, तो भला औरत से यह उम्मीद क्यों की जाती है? हिन्दुस्तानी मर्दों की यह माँग बेहद नाजायज है। खुद के साथ तो वह एक इन्सान की तरह व्यवहार करते हुए यह मानते हैं, कि ऐसा करना उनके लिए मुमकिन नहीं तो भले मानसों यह बताओ कि जो तुम खुद नहीं कर सकते वह दूसरों के लिए नियम क्यों हो? क्या यह इन्सान से अलग कुछ और है, जो उनके नियम मुख्तलिफ हो।'⁵ समाज में किसी स्त्री का पर पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध अच्छा नहीं माना जाता

है। परंतु सुषम वेदी ने इस विषय को उपन्यास में उठाकर यह बताने का प्रयास किया है स्त्री भावनात्मक प्रेम की भूखी होती है और जब उसे भावनात्मक प्रेम नहीं मिलता तब वह ऐसे मार्ग पर चल पड़ती है, जो देह के माध्यम से भावना तक पहुँचता है। “शन्नो का प्रेम भावनात्मक अभाव की पूर्ति का प्रयास है। वह स्त्रीत्व को सिद्ध करने की धारा की सिद्धि का प्रयास है। वह प्रारम्भ से ही एकनिष्ठा चाहती है, पर विश्वा से एक निष्ठा न मिलने पर वह उसी राह पर बढ़ जाती है जो कहीं न कहीं विश्वा ने ही उसे दिखाया था।⁶

यद्यपि विश्वा एक सुलझे हुए व्यक्तित्व का है। उसमें सहिष्णुता एवं उदारता भी है। वह एक आदर्श पात्र के रूप में दिखाई देता है जो शन्नो को चोट पहुँचाकर अपनी महिला मित्र अनुसुईया को चाहते हुए भी विवाह नहीं करता। वह वामपन्थी विचारधारा को जीने वाला व्यक्ति है इस कारण उसे अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है। वहीं उसकी पत्नी शन्नो अधिकाधिक सुविधाओं का उपभोग करते हुए भी विश्वा से विमुख हो उसके अन्तरंग मित्र से शारीरिक सम्बन्ध बना लेती है। विश्वा को यह पता चल जाता है, कि शन्नो और हरीश अन्तरंग होकर सारी हदें पार कर चुके हैं, दोनों में शारीरिक सम्बन्ध हैं। परंतु वह विरोध नहीं करता है, अपितु अपनी मृत्यु के बाद हरीश से यह आग्रह करता है, कि वह शन्नो का साथ निभाता रहे, लेकिन शन्नो के मन में असुरक्षा और भय का भाव भरा हुआ है। इसलिए उसका मन सदैव द्वन्द्व में दोलायमान रहता है। वह समर्पित पुरुष के आश्रय में सुरक्षा चाहती है। यह स्वाभाविक भी है। परंतु पुरुष को बजाए सींचने के लता की तरह लिपटकर उसे निचोड़ना, सुखा देना स्त्री को शोभा नहीं देता।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में यह स्पष्ट होता है कि वह विश्वा की मौत का कारण भी बनती है। दूसरे खण्ड के प्रारम्भिक अध्यायों में विश्वा और शन्नो में आए दिन किसी न किसी बात को लेकर झगड़ा या गुथ्यम-गुथ्यी होती रहती है। छोटी-छोटी बातों को लेकर दोनों झगड़ जाते हैं। एक दिन टेलीफोन के बिल को लेकर इतनी बात बढ़ गई कि दोनों में हाथा पाई शुरू हो गई। शन्नो ने विश्वा का मुँह नोच लिया और फर्श पर गिरा दिया। इसी घटना के बाद विश्वा को हृदयाघात हुआ जो उसकी मौत का कारण बना। शन्नो विश्वा ही नहीं अपने बेटे गौतम से भी सुरक्षा और आश्रय की अपेक्षा करती है। गौतम की पत्नी दिव्या को लेकर शन्नो के मन में चिंता रहती है, कि एक ही बेटा है। कहीं इसने अपने बस में कर लिया तो कहाँ जाऊँगी मैं। वह विश्वा, गौतम और दिव्या के साथ तालमेल नहीं बिठा पाती जिसका परिणाम अन्ततः त्रासदी में होता है। उसकी नकारात्मकता और विवेकहीनता के कारण पूरा परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। अन्त में उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। बेटे गौतम और बहू दिव्या के दाम्पत्य जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप ताक-झाँक और केन्द्रीयता प्राप्त करने की उसकी अनाधिकार चेष्टा का परिणाम भयंकर त्रासदी में होता है गौतम आत्महत्या करने का प्रयास करता है और दिव्या घर छोड़कर चली जाती है तब शन्नो अकेली, असहाय रह जाती है। ऐसी त्रासदी की सम्भावना शायद शन्नो को भी नहीं थी। दिव्या के घर छोड़ने और गौतम की मृत्यु के बाद शन्नो उस लता की तरह भरभराकर जमीन पर गिर पड़ती है जिसे उसकी जड़ से विच्छिन्न कर दिया गया हो। सम्पन्न घर का सपना, सुख को सम्पूर्णता में भोगने की तीव्र लालसा और प्रशंसा की अतिशय भूख शन्नो की चित्रवृत्ति को असामान्य बना देते हैं। विश्वा के माध्यम से सारे सुखों को भोगना तथा स्वच्छन्द जीवन जीना यही उसका अन्तिम लक्ष्य था। डॉ. राम विनय शर्मा ने लिखा है “शन्नो ही इस उपन्यास की अमरबेल है। उसके अमलबेल बनने की प्रक्रिया का वर्णन उपन्यासकार की समाज और मनोविज्ञान की गहरी समझ का संकेत है। शन्नो, विश्वा और गौतम पर आश्रित

होते हुए भी उनकी मृत्यु का कारण बनती है। यद्यपि सुषम बेदी स्त्री के इस रूप का समर्थन नहीं करती। वे स्त्री को स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, संयमित, रचनात्मक और अन्य के प्रति सहानुभूतिपूर्ण देखना चाहती हैं। उनकी रचना दृष्टि का सार तत्त्व यही है। दूसरों की निजता में हस्तक्षेप स्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है।⁷

उपन्यास स्त्री जीवन के विविध रंगों को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में उकेरता है शन्नो बहुत पढ़ी लिखी नहीं है। विश्वा शन्नो की रुचि के अनुसार उसे नृत्य, नाटक के क्षेत्र में काम करने की आजादी देता है। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण विश्वा शन्नो के व्यक्तित्व के विकास के लिए पूरी स्वतंत्रता देता है। नृत्य तथा नाटक में काम करने के कारण आमदनी होने से शन्नो के मन में असुरक्षा का भाव तो कम हुआ परन्तु अहंकार अधिक बढ़ गया। वह ऐसे पुरुष को चाहती है, जो सदैव उसको केन्द्र में मानकर उसने निर्देशानुसार कार्य करता रहे तथा उसके व्यक्तित्व में अपने को समर्पित कर दे। शन्नो की अपनी महत्वाकांक्षायें हैं। उसके स्वभाव में स्थिरता नहीं है। वह अधीर भयग्रसित तथा बहुत कुछ प्राप्त करने की जद्दोजहद में रहती है। शन्नो में पारम्परिक स्त्री की प्रवृत्तियाँ जड़ीभूत है, जो उसे बधे-बधायें दायरे से बाहर जाकर सोचने का अवसर ही नहीं देतीं। कभी वह रीतिकालीन मानिनी नायिका की तरह व्यवहार करती है, तो कभी उसमें स्वच्छन्द युवती की अनुभूति जगती है। कभी उसे पतिव्रता स्त्री होने पर गर्व होता है, तो कभी हरीश को अपना शरीर सौंप बैठती है। इतना ही नहीं अघेड़ अवस्था में खन्ना से मित्रता स्थापित करती है। एक युवक से स्पर्श का सुख पाती है। “उसके मन की उड़ान असीमित है। उसे सुरक्षा की सुखद अनुभूति चाहिए। मीठा सपना देखते हुए। पेड़ का सहारा और अमरबेल बनकर उस पेड़ के रस को सोख लेने की स्वतन्त्रता भी। स्वेच्छा से प्यार करने वाला उसका यौवन नया-नया तो लगता है लेकिन अमरबेल बनकर अपने सहारे को ही सुखा देने की सर्वग्रासी वृत्ति उसे एक पात्र के रूप में रूपान्तरित कर देती है। यह स्त्री का वह रूप है जो संतुष्टि के अभाव में निरन्तर भटकता रहता है। असंतोष का कारण यदि उदात्त नहीं है तो परिणति दुखद होती है।”⁸

निष्कर्षतः कहना है कि सुषमबेदी का ‘गाथा अमरबेल की’ उपन्यास स्त्री चेतना की आत्मकेन्द्रित वृत्तियों को उद्घाटित करता है। एक साथ बहुत कुछ पाने की आकांक्षा और सुख सुविधाओं के उपभोग, उन्मुक्त स्वच्छन्दता, तीव्र महत्वाकांक्षाओं तथा मन की भटकन की त्रासद कथा का मार्मिक उपन्यास है। इसमें लेखिका ने जहाँ शन्नो के माध्यम से स्त्री की उस चंचल, अतृप्त मनोवृत्ति को उद्घाटित किया है जो समूचे परिवार की स्वाभाविक गतिशीलता अवरुद्ध कर अपने जीवन को असहाय और अकेला बना देती है, क्योंकि गौतम की मृत्यु और दिव्या के घर छोड़कर चले जाने बाद शन्नो नितान्त अकेली और असहाय रह जाती है तथा अपने किये को भोगती है, वहीं दिव्या के माध्यम से एक रचनात्मक, स्थिर दृढ संकल्प पात्र होने का संकेत दिया है। दिव्या एक सकारात्मक सोच, स्वालम्बी और सक्रिय सशक्त स्त्री पात्र है। उसमें कठिन निर्णय लेने की क्षमता है। लेखिका ने उसके माध्यम से स्त्री की आधुनिक दृष्टि को व्यक्त किया है। वस्तुतः सुषम बेदी का यह उपन्यास आज की जटिल मानसिकता तथा जीवन स्थितियों के प्रति समझ उत्पन्न करने वाला उल्लेखनीय उपन्यास है। इसमें स्त्री मनोविज्ञान को परत-दर-परत उकेरते हुए सामाजिक संरचना में उसकी भूमिका को दायित्व पूर्ण बनाने की पुरजोर कोशिश की गई है।

संदर्भ :-

1. 'युद्धरत आम आदमी' सम्पादक रमणिका गुप्ता, जुलाई सितम्बर, 2006 पृ. सं. 15
2. सुषम बेदी 'गाथा अमरबेल की' हिन्दी बुक सैन्टर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ. सं. 10
3. वही, पृ. सं. 57
4. वही, पृ. सं. 159
5. वही, पृ. सं. 68/69
6. प्रवासी कथाकार सुषम बेदी, डॉ. शगुपता नियाज, पराग प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण (आलेख अनुपम अनुराग) पृ. सं. 90
7. "वही" पृ. सं. 80
8. "वही" पृ. सं. 78



चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी विमर्श

जीता पी. एट्टरुत्तिल

सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, महाराजा कालेज, एरणाकुलम, केरल।

चित्रा मुद्गल आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की बहुचर्चित और सम्मानित रचनाकार है। उनके उपन्यास 'आवाँ' तथा 'एक ज़मीन अपनी' नारी विमर्श की दृष्टि से काफी चर्चित रहे हैं। उनका लेखन स्त्री जीवन के यथार्थ संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज़ बन गया है। इसमें स्त्रियों की वर्तमान स्थिति, उनका यातनामय जीवन, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति, उन्हें प्राप्त अधिकार का चित्रण है।

'आवाँ' उपन्यास के अधिकांश नारीपात्र अपनी आर्थिक समस्याओं से बचने का प्रयास करते रहते हैं तथा अपना अस्तित्व खोजने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। उपन्यास के नारी पात्र हैं – नमिता, गौतमी, स्मिता, सुनन्दा, ममता, सोहनी आदि। इस उपन्यास में विमलाभाई, ममता, सोहनी आदि पात्रों से पलायनवादी दृष्टिकोण ही दृष्टिगोचर होता है। आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी कि नमिता, स्मिता जैसी युवतियों की पढ़ाई छूट जाती है। नमिता मेहनती है, वह कठिन परिश्रम करके समस्याओं का हल करने की कोशिश करती है। वह आत्मविश्वास के साथ जीवन में कुछ हाज़िल करने का प्रयास करता रहता है। पिता जी के बीमार होने पर परिवार की ज़िम्मेदारी उनके ऊपर आ जाती है। इसलिए वह पापड बेचती है, और ट्यूशन भी करती है। वह अपनी छोटी बहन मुनिया और छोटे भाई छुन्नू के देखभाल में लगी रहती है।

नमिता अन्ना साहब की कृपा से मिली डेढ़ हज़ार रूपयों की नौकरी करती है। किन्तु तीन महीनों में ही उसे अन्ना साहब के अश्लील व्यवहार के कारण नौकरी छोड़नी पड़ी। वह अपने परिवार को सुखी बनाने के प्रयास में लगी रहती है। मेडम बासवानी के संपर्क में आने पर साढ़े तीन हज़ार रूपये के मासिक वेतन पर 'बाबा ज्वैलर्स' में नौकरी भी करती है। उसे लगातार अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। इसका मूल कारण यही रहा है एक पुरुष प्रधान समाज में अन्ना साहब जैसे, नारी पर अत्याचार करने वाले लोगों को आज भी स्त्री में स्त्री का शरीर ही दिखाई देता है।

गरीबी के कारण नमिता की माँ, दस साल की अपनी बेटी नमिता पर मौसा जी द्वारा शोषण होने पर भी चुप रहती है। बेटी से अधिक अपनी अमीर बहन कुन्ती से मिलने वाली थोड़ी सी आर्थिक सहायता को वह अधिक महत्त्व देती है। भूख के मारे वह लाचार दिखाई देती है। स्मिता एक हिम्मतवाली, संघर्षशील, स्पष्टवादी नारी का प्रतीक है। अपने बाप से वह नफरत करती है क्योंकि उसका बाप अनैतिक कर्म से पैसा कमाकर शराब पीकर घरवाले को परेशान करते रहते हैं। बाप अपनी बड़ी बेटी को यौनाचार के लिए प्रेरित करते हैं। इसी कारण स्मिता के मन में अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की एक दहकती चिन्तनी प्रस्फुटित होती है। पिता द्वारा किये गए

बलात्कार के कारण स्मिता के मन में पुरुषों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने परंपरागत सामाजिक यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया है। आज भी पैसे के बल पर संजय कनोई जैसे पुरुष, प्रेम और भौतिक सुविधाओं के प्रलोभन से नमिता की देह को ही नहीं, उसकी कोख को भी खरीदने का तय करता है। आज भी कनोई जैसे पुरुष प्रधान समाज के पुरुष, कोख खरीदकर बाप बनने में अपनी कितनी बड़ी श्रेष्ठता मानते हैं और अपने पुरुषत्व पर गर्व करते हैं। बाप बनने पर अपना पौरुष जताना चाहते हैं।

गौतमी सान्याल इस उपन्यास के एक स्त्री कथापात्र है। पुरुष प्रताड़ित गौतमी सान्याल 'बाबा ज्वलर्स' की प्रबन्ध निर्देशिका बनती है। अपने शराबी व्यभिचारी पुलिस अधिकारी पति से उसे तलाक मिलती है। गौतमी अत्याचारी पति से छुटकारा तो पाती है लेकिन दूसरी शादी के बाद दूसरे पति के बेटे विनोद के शोषण से छुटकारा पाती नहीं। अंत में अंजना नाम की एक स्त्री उनका गर्भपात करवाके गौतमी को एक नयी ज़िन्दगी देती है।

'एक ज़मीन अपनी' उपन्यास में चित्रा मुद्गल विज्ञापन जगत में नारी किस तरह फँस जाती है, उसका चित्रण किया है। इसमें विज्ञापन बाजी में लेखक, कलाकार, संपादक जैसे लोगों की व्यक्तिगत ज़िन्दगी के साथ आवाज़ बेचने वाले इन्सानों की विवशता का चित्रण किया है। आज नारी में आत्मविश्वास, बौद्धिकता, वैयक्तिक स्वतन्त्रता की जागृति बढ़ गयी है। इसके साथ-साथ पुरानी मान्यताओं का खण्डन, अजनबीपन, अकेलापन आदि दृष्टिकोण की भी प्रचुरता हुई है।

नारी स्वतन्त्रता का अधिकार बोध करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास के मुख्यपात्र अंकिता और नीता बंबई जैसे महानगर में अपना अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। लेखिका ने अंकिता के माध्यम से नारी की अपनी अलग पहचान करके नारी की अस्मिता स्थापित करने की कोशिश करती है। अंकिता विज्ञापन जगत में एक नया इतिहास लिखना चाहती है। अपने वैज्ञानिक जीवन में वह आत्मनिर्भर होने की इच्छा रखती है। अंकिता जीवन को जीना चाहती है, बरबाद करना नहीं। वह अपने अस्तित्व को जताना चाहती है।

अंकिता, सुधांशु के भीतर पुरुष के अहं की प्रवृत्ति को समझती है। शादी के पहले अंकिता की प्रतिभा को महत्व देने वाला सुधांशु शादी के बाद उसे सम्मान देते नहीं हैं। सुधांशु जब अंकिता की कविताओं की कापी को काटकर कूड़ेदान में फेंक देता है, तब उसके आत्मसम्मान को बड़ी ठेस लगती है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने के निश्चय पर अंकिता दृढ़ है। इसलिए वापस आने का संकेत सुधांशु से मिलने पर भी वह इन्कार करती है। अंकिता जैसी आज की नारी में अपने अस्तित्व की रक्षा करने की चेतना जाग गयी है। पति के रोब और घमण्ड के कारण वह अपने सपनों को साकार नहीं कर पाती। इसलिए मजबूरन वह पति से अपना रिश्ता तोड़ देती है। इससे यह व्यक्त होता है कि पुरुष नारी का विकास नहीं चाहता, उसे बंधी बनाकर रखना चाहता है। आज की नारी समझौता करना अच्छा नहीं समझती है।

नीता इस उपन्यास का और एक स्त्री कथापात्र है जो अपने नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से भटक गयी है। मॉडलिंग में प्रवेश करते ही, नीता के जीवन में एकदम अस्वाभाविक बदलाव आ जाता है। धन के मोह में पड़कर नीता अपनी पक्की नौकरी छोड़कर 'पूर्णा' एजेन्सी में मॉडलिंग के क्षेत्र में प्रवेश करती है, 'जहाँ उसे

बेहतर पद भी मिलता है। नीता कहती है— “मोडलिंग के पीछे नहीं माइ डियर .. बेहतर सुविधाओं के साथ बेहतर पद पर जा रही हूँ ! छलांग भरने का खतरा उठाए बिना प्रगति का मोल—भाव संभव नहीं। “पूर्णा”, “ऑब्सेर्वेशन” की टक्कर की ही एजेंसी है... जिंस तेजी से पिछले दो सालों में उसने अपनी कार्य कुशलता से उत्पादकों को आकर्षित किया है, आश्चर्यजनक है” ।’ इससे उसका जीवन यौन श्रृंखला, बलात्कार, भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक विषमताओं से भर जाते हैं। वह भी अंकिता की तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा खुलापन चाहती थी। लेकिन उसे सिर्फ तनाव असुरक्षा तथा मानसिक विकृतियाँ मिलती हैं जो उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करती हैं।

अंकिता जैसी स्त्रियाँ विज्ञापन जगत के परिवेश में व्याप्त कूटनीति का अनुभव करने पर, उस वातावरण से समझौता करना उचित नहीं मानती। परन्तु नीता जैसी लड़कियाँ अपने अंगों का प्रदर्शन कराके उपभोक्ताओं का अपने उत्पादन के प्रति आकर्षित करने के लिए तैयार हैं। आज नीता जैसी लड़कियाँ जितना स्वतन्त्र है, उतना पहले कभी नहीं रही। परन्तु वास्तविकता यह है कि आज विज्ञापन जगत में उतरी नारी बाहर से जैसे दिखाई देती है वैसे अन्दर से नहीं है। अपने अस्तित्व के प्रति वह जागृत और विचारशील जरूर हुई है परन्तु अपनी अस्मिता की रक्षा करने में निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाली आज की तेजस्वी नारी की प्रतिभा धीरे—धीरे धूमिल होती दिखाई देती है। अपनी अस्मिता की खोज करने वाली नीता को अति स्वतन्त्रता का फल बिन ब्याही माँ के रूप में मिलता है। इसी कारण उसे अंत में आत्महत्या करनी पड़ती है। संपूर्ण उपन्यास नारी पर होने वाले अत्याचारों का दस्तावेज है।

उपर्युक्त इन दोनों उपन्यासों के ज़रिए चित्रा मुद्गल एक सच्चई को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। आज नारी को बेहद स्वतन्त्रता, आज़ादी मिली है, फिर भी उसे वह सम्मानीय स्थान नहीं मिला है जो वास्तव में उसे मिलना चाहिए। आज नारी के उत्थान के लिए अनेक संस्थाएँ उभर आयी हैं। इन संस्थाओं ने नारी के अस्तित्व, उसकी आज़ादी को संजोया जरूर है। किन्तु यह सच्च है कि आज भी नारी ‘आवाँ’ की तरह दहकती है। वह आज भी सामाजिक परंपराओं की जंजीर में जकड़ी हुई है। इन जंजीरों को वह तोड़ना चाहती है, लेकिन तोड़ नहीं पाती। इन दोनों उपन्यासों की नारी शोषित है, फिर भी संघर्षशील है। लेखिका ने पूरे उपन्यास में स्त्रियों की पीड़ा, अपमान, नारकीय जीवन, शोषण, घोर तिरस्कार को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है।

संदर्भ :-

1. ‘एक ज़मीन अपनी’ – चित्रा मुद्गल, पृष्ठ 87

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

मौलिक ग्रन्थ :

1. ‘एक ज़मीन अपनी’ – चित्रा मुद्गल—सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली—110002
2. ‘आवाँ’ —चित्रा मुद्गल—सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली—110002

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. महिला रचनाकार एवं स्त्री विमर्श – डॉ. ललित कुमार सिन्हा, विद्या प्रकाशन –सी 449, गुजैनी, कानपुर—22
2. हिन्दी उपन्यास में नारी विमर्श – डॉ. शोभा वेरेकर, अभमय प्रकाशन, कानपुर।



आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल के व्यक्तित्व के विविध पक्ष

भानसिंह यादव, शोधार्थी,

डॉ. सरोज गुप्ता, शोध निर्देशिका

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

पं. दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

लोक और वेद के मर्मज्ञ, माँ पीताम्बरा पीठाधीश्वर के परम शिष्य आचार्य पं. श्री दुर्गाचरण शुक्ल अद्वितीय प्रतिभा के धनी हैं। आचार्य जी की प्रसिद्धि का मूल कारण उनकी भारतीय ज्ञान-साधना है। विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ आचार्य पं. श्री दुर्गाचरण शुक्ल जी चिंतनशील साहित्य सर्जक हैं और इनका साहित्यिक योगदान विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। विविध प्रकार के लेखन में उनकी बहुआयामी रचनाशीलता की छाप सहज ही देखी जा सकती है। आचार्य जी साहित्य जगत के उन उत्कृष्ट लेखकों में हैं, जिन्होंने संस्कृत के साथ हिन्दी साहित्य में चिन्तनशीलता को सृजनशीलता के साथ घुलाने-मिलाने की निरन्तर चेष्टा की है। निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की चिन्तन चेतना प्रबल रूप से देखी जा सकती है।

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी और भाषा पर भी सबल अधिकार के कारण आचार्य जी ने साहित्य, धर्म, दर्शन, गणित, विज्ञान, बाल मनोविज्ञान, यंत्र-तंत्र एवं वास्तुशास्त्र के साथ भारतीय वाङ्मय के अधिकांश क्षेत्रों पर अधिकारपूर्ण अपनी लेखनी चलायी है। भारतीय ज्ञान-सम्पदा के क्षेत्र में इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं और यह क्रम आज भी निरन्तर जारी है। विद्वानों का कहना है कि मनीषियों से आरम्भ होने वाली भारतीयता ही हमारी सच्ची राष्ट्रियता है। इस अर्थ में आचार्य पं. श्री दुर्गाचरण शुक्ल के अवदान से यह सुनिश्चित है कि वे भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के आप सच्चे संवाहक हैं।

आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल जी विलक्षण व्यक्तित्व के धनी, ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र, तंत्र मंत्र, ज्योतिष, वैदिक ज्ञान, वैदिक गणित, भाषा विज्ञानी, वेदशास्त्री, अत्युत्तम चिंतक, अनुवादक, दार्शनिक, अध्येता हैं। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी बुन्देली, विज्ञान की भाषा, वैदिक भाषा के ज्ञानी हैं। ज्ञान, भक्ति, योग, वैराग्य और कर्म के संयुक्त स्वरूप हैं। सभी धर्मों का अध्ययन और मनन उनके स्वभाव में है। वाणी में गंगा का सतत प्रवाह अनुक्षण प्रवाहित होता है।

आचार्य श्री दुर्गाचरण शुक्ल एक बहुआयामी व्यक्तित्व हैं। एक अच्छे आदमी में जिन गुणों की उम्मीद की जाती है वे सभी पं. शुक्ल जी के चरित्र अंग हैं। करुणा, दया सहयोग, सहानुभूति, संवेदनशीलता, निष्ठा एवं ईमानदारी उनके चरित्र के श्रृंगार हैं। वे बच्चों की तरह निश्छल, सरल एवं खुले मन वाले हैं। बच्चों की तरह

ही वे खुलकर हँसते हैं और खुलकर नाराज होते हैं। अगर बात पंसद नहीं आई तो खुलेआम बिना संकोच अपनी राय दे देंगे। व्यवहार और आचरण में वे समतावादी हैं।

वे सरल और निष्कपट व्यक्ति हैं। वे मुँह देखा व्यवहार नहीं कर सकते हैं, वे सिर से पैर तक परम वैष्णव एवं सनातन धर्मी हैं। धर्मपरायण एवं ब्राह्मण होने के नाते उन्हें कर्मकाण्डी भी कहा जा सकता है। वे किसी धर्म के आलोचक नहीं हैं।

आचार्य शुक्ल जी की प्रकृति आगम और तंत्र की ओर ही ज्यादा रही है। वे त्याग और दमन की जगह ग्रहण और उन्नयन की पक्षधरता करते हैं। गहराई से चिंतन करने पर हम पाते हैं कि आचार्य पं दुर्गाचरण शुक्ल जी हम लोगों की दृष्टि में शास्त्र परंपरा के ज्ञानी व अध्यवसाय के रूप में अद्वितीय व्यक्तित्व हैं। वास्तव में आगम और निगम शास्त्र भारतीय सांस्कृतिक चेतना के कभी न चुकने वाले, प्रतिभा प्रकाश के श्रेष्ठ रचना स्रोत हैं। इसमें आगम उपक्रम है और निगम निर्वहण। फलतः पहला साध्यावस्था है और दूसरा सिद्धावस्था। पहला प्रयत्न पक्ष है और दूसरा सिद्ध पक्ष। यही कारण है कि आगम के शिखर दर्शन प्रत्यभिज्ञा में शक्ति उन्मीलित है और निगम के शिखर दर्शन अद्वैत में अन्तर्लीनता का भाव। पं दुर्गाचरण शुक्ल जी ने पीताम्बरा पीठदतिया के स्वामी जी से दीक्षा लेकर संस्कृत साहित्य के ग्रंथों धर्म, दर्शन, अध्यात्म, तंत्र, मंत्र, योग, भक्ति आदि शास्त्रों में निष्णात् होकर अद्भुत रचनाओं का सृजन किया है।

एक गोष्ठी में विलक्षण और चौंकाने वाली बात आपने रखी आपका कथन था—‘संसार में ‘समय’ नाम की कोई वस्तु नहीं है, वह तो शाश्वत है, हम सबने अपने सुविधा को नापने पल, घंटा, मिनट, रात, दिन, पक्ष नाम दे दिये हैं, नहीं तो समय तो स्थिर है, सदा एक सा, केवल एक देव को ‘महाकाल’ नाम संबोधन है, इसी से उसे प्रलयकारी देव कहते हैं, कोई अन्य समय का रूप स्वरूप बदल नहीं सकता।’ उनका नक्षत्रों, कुंडलिनी, शैव, शाक्त, वैदिक, वैष्णव पंथ आदि सभी पंथ पर गूढ़ ज्ञान है।

बुन्देली के प्रसिद्ध कवि श्री गुणसागर को उन्होंने कवि कालिदास की अमर कृति मेघदूत का बुन्देली में अनुवाद का सुझाव दिया। उनका पूरा मार्गदर्शन किया। अनुवाद भी वैसा हुआ कि संस्कृत के विद्वानों ने अनुवाद की प्रशंसा की। उन्होंने इसी प्रकार प्रभु दयाल श्रीवास्तव जी को प्रेरित कर उनका मार्गदर्शन कर महाकवि कालिदास के ग्रन्थ ऋतु संहार का बुन्देली में अनुवाद कराया। वे प्रभुदयाल जी से देवी भागवत एवं गोपी शतक का भी अनुवाद बुन्देली में करवा चुके हैं।

वे प्रज्ञा पुरुष हैं उन्होंने परा और अपरा विद्या एवं आगम एवं निगम दोनों तरह के प्रारूप का गहन अध्ययन किया। वे वेदों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्होंने उपनिषदों को पढ़ा और समझा हैं वे पर दर्शन के ज्ञाता हैं ‘संस्कृत भाषा 24 पाश्चात्य साहित्य के श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन और मनन किया। उन्हें पढ़ने का नशा है। वे जिज्ञासु हैं। उनका अध्ययन का क्षेत्र व्यापक है।

एक गंभीर और आध्यात्म चिन्तक :-

जिसने सीखा है जीवन में, स्वाभिमान से जीना।

हँसते-हँसते संघर्षों के, घूँट गरल के पीना।।

बढ़ते रहे प्रगति के पथ पर, पल भर नहीं रूके हैं।

विपदाओं का खड़ा हिमालय, फिर भी नहीं झुके हैं।।

मुख पर नहीं उदासी छाई, हँसते हुए दिखे हैं।
बुन्देली सागर में डूबे, ललित निबंध लिखे हैं।।
किसी विषय पर चर्चा करते, हँसते मार ठहाका।
भाषण देते समय अनौखा, खींचा करते खाका।।

निष्कर्ष :-

इस तरह श्री शुक्ल जी वर्तमान में भी निरंतर साहित्य सृजन में व्यस्त हैं। आधुनिक युग में भारतीय मनीषा का उत्कर्ष श्री शुक्ल जी में चरितार्थ है। नहीं मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है यह महर्षि वेदव्यास कथन श्री शुक्ल जी पर सार्थक सिद्ध होती है। वाकदेवी की कृपा उन पर सदैव रही है। पुरातन सामग्री, विरासत को आपने सुव्यवस्थित कर सहज, सरल रूप से व्यक्त कर मानवता की सेवा की है, जन-जन का हित किया है। आपका ऐसा व्यक्तित्व कृतित्व है जो लोक व शास्त्र दोनों पर ही अपनी लेखनी चलाने में निपुण है। लौकिक-संस्कृत, उनके विद्या संस्कार एवं ज्ञान प्राप्ति का मूलाधार है तो वहीं वैदिक-संस्कृत के वेद मंत्रों का स्वर उनके श्रोत्रिय वंश परम्परा से अनुगत बीज-रूप संस्कार है। आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल जी की दीर्घ सारस्वत जीवन-यात्रा उनके सतत गहन गम्भीर अध्ययन, मनन एवं चिन्तन का सुपरिणाम हैं। श्री शुक्ल के साहित्यिक अवदान से यह सुनिश्चित हो जाता है कि आप भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन के सच्चे संवाहक हैं।

संदर्भ सूची :-

1. ऋषि हयग्रीव कृत शाक्तदर्शनम एवं महर्षि अगस्त्य कृत शक्तिसूत्रम, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
2. महर्षि अगस्त्य दृष्ट ऋग्वेद मंत्र भाष्य, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, महर्षि सान्दीपनी राष्ट्रीय वेद विधा प्रतिष्ठान, उज्जैन।
3. ब्रह्मवादिनी-द्रष्ट मंत्र भाष्य एवं अवदान, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
4. लोक और वेद के अभिनव आचार्य पं. दुर्गाचरण शुक्ल के लोके च वेदे च, डॉ सरोज गुप्ता, पं. अरुण कुमार शुक्ल, जे.टी.एस. पब्लिकेशनस दिल्ली।
5. महादेव, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स भोपाल।
6. मदन रस बरसें बुन्देली ललित निबंध, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स भोपाल।
7. बुन्देली गाथा, डॉ. दुर्गेश दीक्षित, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश संग्रहालय, श्यामला हिल्स भोपाल।
8. बुन्देली कहावतें और मुहावरे, डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स भोपाल।
9. बुन्देली शब्दों का व्युत्पत्ति कोष, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल, शिव पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।



गोदान उपन्यास में किसान की दयनीय स्थिति

SUNIL KUMAR, M.A. NET, HINDI

H. NO. 279A/B, INDRA COLONY, JANIPUR (JAMMU),

Distt. JAMMU-PIN : 180007, STATE : J & K

प्रस्तावना :-

गोदान उपन्यास हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया है। इसका प्रकाशन वर्ष 1936 ई० है। इस उपन्यास में उन्होंने बहुत सी समस्याओं को उठाया है जो तत्कालीन समय में हमारे समाज में व्याप्त थी किन्तु सबसे बड़ी समस्या थी, किसान की दयनीय स्थिति जिसे प्रेमचन्द ने समझ लिया था और अपने उपन्यास के माध्यम से समाज के और सरकार के सामने रखा। लेकिन बिडम्बना यह है कि वह स्थिति आज भी पूरी तरह बदली नहीं है। आज भी कितने किसान फसल खराब होने की वजह से आत्महत्या कर लेते हैं उन्हें ऋण लेना पड़ता है और बड़े-बड़े लोग उनका शोषण करते हैं।

उपन्यास का प्रारंभ :-

उपन्यास का प्रारंभ होरी और धनिया के आपसी वार्तालाप से प्रारंभ होता है। उसे जमींदार से मिलने की जल्दी है कि वह उसकी खुशामद कर सके इस वजह खाने-पीने का भी ध्यान नहीं रहता और वह अपनी पत्नी धनिया से कहता है, "तुझे रस पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान पूजा करने लगेंगे तो घंटो बैठे बीत जाएगा"।¹

होरी को ऋण की समस्या से जूझना पड़ता है। यह किसान के जीवन का एक कड़वा सच है होरी के शब्दों में, "होरी न मुँह का पसीना पोछकर कहा-उसी की चिंता तो मार डालती है दादा-अनाज तो सबका-सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग। किसी का भी ब्याज पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गए। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिए तो काम चला। सब तरफ किरायात करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएं और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका, पर मूल ज्यो का त्यों सिर पर सवार है"²। यह स्थिति है किसान की जो अन्न उपजाता है, पूरा दिन खेतों में परिश्रम करता है, वह दाने- दाने को मोहताज है।

किसानों पर किस तरह के अत्याचार होते थे उसका पता इन पंक्तियों से चलता है, “सहसा एक दिन बादल उठे और असाढ़ का पहला दौंगड (पहली वर्षा) गिरा। किसान खरीफ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि राय साहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाकी न चुक जाएगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जाएगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया”³। यह कैसा कानून जो किसान पूरे देश का पेट पालता है उसी को उसके खेत में जाने से रोका जाता है। जो किसान पूरे वर्ष मेहनत अपना खून पसीना एक करके अन्न उपजाता है, उसकी यह दशा।

होरी को गाय लेने की बहुत लालसा होती थी, क्योंकि वह चाहता था कि गाय घर में होगी तो उसके बच्चों को दूध, दही मिल जाएगा, और वह कमजोर नहीं होंगे। इसके लिए वह भोला (मित्र) से गाय उधार ले आता है। जब गाय घर में आती है तो सभी बहुत प्रसन्न होते हैं और पूरा गाँव गाय देखने आता है। कुछ ही दिनों में गाय उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। लेकिन यह सब उसके भाई (हीरा) को अच्छा नहीं लगता और एक दिन वह रात में गाय को ज़हर दे देता है। होरी का धनिया से वार्तालाप, “मेरा संदेह तो हीरा पर होता है। वह मुँह का ही खराब है। ‘मैंने अपनी आँखों देखा सच तेरे सिर की सौँह’, ‘तुमने अपनी आँखों देखा! कब?’”⁴

इस गाय की वजह से भोला उसके दोनों बैल ले जाता है पुलिस घर में तलाशी लेने लगती है, लेकिन होरी रिश्वत देकर तलाशी रूकवाना चाहता है। होरी को अपनी बड़ी बेटी सोना के विवाह के लिए चिंता होती है, तो वह उधार लेकर सोना की शादी करता है। हद तो तब होती है जब होरी अपनी छोटी बेटी रूपा की शादी अपने से दो चार साल छोटे रामसेवक से करता है क्योंकि अगर वह रामसेवक से रूपा का विवाह कर देगा तो वह पैसे देकर होरी की सहायता करेगा और उसके खेत बच जाएंगे। “होरी ने रूपये लिए थे तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका। मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लडते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयों, मैं दया का पात्र हूँ नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है, इस देह को चीरकर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है—कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरो से कुचला हुआ? उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छाह में बैठा? उस पर यह अपमान। और वह अब भी जीता है। कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंध हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है”⁵।

होरी अब किसान नहीं मज़दूर बन गया था। उसे अपना पेट भरने के लिए मज़दूरी करनी पड़ती थी। वह पूरा दिन धूप में काम करता रहता था लेकिन एक दिन उसे लू लग जाती है और वह लू लगने के कारण गिर पड़ता है। सभी उसे उठाकर घर लाते हैं। अब वह अपनी अंतिम सांसे ले रहा होता है, “और कई आवाज़ें आईं—हां, गो—दान करा दो, अब यही समय है। धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके

बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े मातादीन से बोली—महाराज घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा यही पैसे हैं, यही इनका गो दान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी”⁶।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसान की दयनीय स्थिति का इतना करुण दृश्य शायद ही किसी लेखक ने प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इनके उपन्यास को महाकाव्य सी संज्ञा दी गई है और प्रेमचन्द को उपन्यास सम्राट की। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ देखा उसे अपनी लेखनी में उतारा। उन्होंने इस उपन्यास में किसी बनावटीपन का प्रयोग नहीं किया जो इसकी सफलता का कारण बना।

संदर्भ सूची :-

1. प्रेमचन्द, “गोदान”, के. एल. पचौरी, पृष्ठ सं. 1
2. वही, पृष्ठ सं. 19
3. वही, पृष्ठ सं. 89
4. वही, पृष्ठ सं. 95
5. वही, पृष्ठ सं. 314
6. वही, पृष्ठ सं. 320



उत्तररामचरितम् में वात्सल्य प्रेम का प्रकर्ष

डॉ. शैलजा रानी अग्निहोत्री

सह-आचार्य संस्कृत, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर।

सारांश :-

उत्तररामचरितम् नामक नाटक महाकवि भवभूति की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो समस्त संस्कृत विद्वत्-जगत् में सराहनीय है। इस नाटक में कवि ने अपने अद्भुत काव्य-कौशल तथा विशद् वर्णन शक्ति का परिचय दिया है। इस नाट्य काव्य में प्रेम के विविध रूपों का जो चित्रण हुआ है, वह इसे प्रेम का आदर्श काव्य बनाता है। पवित्र दाम्पत्य प्रेम, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति प्रेम का तो इसमें भवभूति ने प्रकर्ष दिखलाया ही है, वात्सल्य प्रेम की जो अभिव्यक्ति कवि ने काव्य में की है, वह भी अति सरस, रोमांचक एवं हृदयद्रावक बन गई है। राम, सीता, जनक, कौसल्या अनेक स्थलों पर अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य प्रेम से सराबोर होकर अभिभूत एवं द्रवित हुए देखे जा सकते हैं। नाटक में वात्सल्य प्रेम का जो चित्रण हुआ है, उसके प्रकर्ष को देखकर यह कहा जा सकता है कि करुण रस और दाम्पत्य प्रेम का उत्कृष्ट काव्य होने के साथ-साथ उत्तररामचरितम् वात्सल्य प्रेम का भी उत्कृष्ट काव्य बन गया है। प्रस्तुत आलेख में उत्तररामचरितम् में भवभूति द्वारा चित्रित वात्सल्य प्रेम के करुण व मधुर भावाभिव्यक्ति से परिपूर्ण हृदयस्पर्शी रूप को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। नाटक में वात्सल्य प्रेम का जो स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है, वह वात्सल्य प्रेम के प्रकर्ष को सूचित करता है।

प्रमुख शब्दावली :- उत्तररामचरितम्, वात्सल्य प्रेम, अपत्य स्नेह, दम्पति, गज शावक, पशु-पक्षी-पादप, स्वपुत्र प्रेम, निर्वासिता सीता, आनन्दग्रन्थि, असह्य शोक, विरह दुःख, पुत्रवत् पालित, सन्तान प्रेम।

विषय-विवेचन :-

संस्कृत जगत् के मूर्धन्य विद्वानों में परिगणित महाकवि भवभूति की तीन रचनाएँ— मालतीमाधवम्, महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् हैं। तीनों रचनाओं में उत्तररामचरितम् नाटक कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। जिसकी श्रेष्ठता के कारण कवि की कीर्ति दिग्दिगन्त में प्रसरित हो चुकी है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा-राम के जीवन के उत्तरभाग की कथा और उसमें भी एक प्रमुख हृदयद्रावक घटना-सीता परित्याग की घटना को लेकर लिखा गया यह नाटक अपने वैशिष्ट्य के कारण अनूठा बन गया है। करुण रस का नाटक में पूर्ण परिपाक होने के कारण यह करुण रस का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। हालाँकि कवि ने रामायण की कथा में कुछ मौलिक परिवर्तन कर उसे नाटक में प्रस्तुत किया है तथा कथा परिवर्तन द्वारा ही नाटक को सुखान्त बना दिया है। उन्होंने अपनी मौलिक सूझ-बूझ से अंत में सीता-राम तथा लव-कुश सहित सभी परिजनों का मिलन कराकर सुखद उपसंहार किया है।

उत्तररामचरित में कवि ने प्रेमतत्व का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। प्रेम के विविध रूप नाटक में चित्रित हुए हैं। यथा— दाम्पत्य प्रेम, राष्ट्रप्रेम, चराचर जगत् या जड़—चेतन प्रकृति के प्रति प्रेम, वात्सल्य प्रेम आदि। सर्वत्र कवि ने पवित्र, निःस्वार्थ और निश्छल प्रेम को अभिव्यक्त किया है। करुण रस प्रधान यह नाट्य काव्य प्रेम विषयक उदात्त भावनाओं के चित्रण के कारण ही प्रेम का आदर्श काव्य बन गया है। जहाँ करुणा होती है, वहाँ दया, उदारता, विनम्रता, प्रेम आदि का होना स्वाभाविक है; अन्यथा करुणा के अभाव में श्रेष्ठ मानवीय भावों और संवेदनाओं का अस्तित्व कहाँ?

वात्सल्य प्रेम की दृष्टि से उत्तररामचरित का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि इसमें अनेक स्थलों पर वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक तथा मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। पति—पत्नी अथवा माता—पिता एवं परिजनों का अपनी सन्तान के प्रति जो स्नेह या प्रेम होता है, वही वात्सल्य प्रेम कहलाता है। नाटक के तृतीय अंक में कवि ने संतान को पति—पत्नी के प्रेम का मूर्त रूप बतलाते हुए संतान की बहुत ही सुन्दर परिभाषा दी है—

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।

आनन्दग्रन्थिरेको यमपत्यमिति पठ्यते ॥

अर्थात् “स्नेह का आश्रय ग्रहण करने से दम्पति के अन्तःकरण में रहने वाले ‘आनन्द’ की एकमात्र ग्रन्थि को ही संतान कहते हैं।” इस प्रकार यहाँ पति—पत्नी के स्नेह युक्त हृदयों को एक बंधन में बाँधने वाली ग्रन्थि को तथा उनके हृदय में बिखरे हुए प्रेमकणों के संघात रूप को, जो कि मूर्तरूप है, उसे सन्तान कहा गया है। प्रेम के मूर्तरूप अपनी संतान के प्रति माता—पिता का प्रेम सदैव निःस्वार्थ एवं चरम पर बना रहता है और यही वात्सल्य प्रेम कहलाता है। नाटक में राम, सीता, जनक, कौसल्या आदि का अपनी संतान के प्रति प्रेम अनेक स्थलों पर उजागर हुआ है; जिससे नाटक में वात्सल्य प्रेम का उदात्त एवं उत्कृष्ट रूप सूचित होता है। राम द्वारा राजधर्म निभाने हेतु (लोकापवाद के चलते) निर्वासिता सीता में वात्सल्य प्रेम भरा हुआ है तथा पराकाष्ठा पर है, तभी तो वे सव औरस पुत्रों के बिछोह में वन में पशुओं—पादपों तक को स्वसन्तानवत् मानते हुए उनका पालन—पोषण करती हैं तथा उनकी रक्षार्थ हर समय सन्नद्ध रहती हैं। वे वन में करिकलभक— हाथी के बच्चे को पुत्रवत् पालती हैं और अपने हाथ से ‘सल्लकी’ लता के कोमल पत्ते दे—देकर हृष्ट—पुष्ट करती हैं—“सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रैरग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितो भूत्।” परन्तु जब उस गजशिशु पर आपत्ति आती देखती हैं, तो उनका वात्सल्य और अधिक उमड़ पड़ता है तथा उसे अपना पुत्र कहते हुए उसकी रक्षार्थ राम को पुकारती हैं—“आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम पुत्रकम्।” यह सीता का वात्सल्य प्रेम ही तो है।

गजशावक को बढ़ता हुआ देखकर वे कहती हैं—“अहो! ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः?” अर्थात् मेरा पुत्र इतना बड़ा हो गया। गजपुत्र को वधू सहित प्रसन्न देखकर सीता उसे आशीर्वाद देती हैं— “अवियुक्त इदानीं दीर्घायुरनया सौम्य दर्शनया भवतु।” अर्थात् अब यह दीर्घायु अपनी इस प्रियदर्शना पत्नी से वियुक्त न हो। राम भी सीता द्वारा पालित तथा स्वपुत्रवत् माने गए गजकमभ को स्वपुत्रवत् देखते हैं तथा उसकी क्रीड़ाओं से प्रसन्न होते हैं। वन में स्वपालित गजशावक को बड़ा हुआ देख सीता को अपने पुत्रों— लव—कुश का स्मरण हो जाता है कि वे भी इतने दिनों में कितने बड़े हो गए होंगे। अपनी सन्तान के स्मरण से सीता का वात्सल्य पूर्णरूपेण उफन पड़ता है तथा उनके स्तन फड़कने लगते हैं एवं स्तनों से दूध बहने लगता है—“एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी।” यद्यपिवह पुत्रों से दूर है, तथापि उनकी ममता एवं वात्सल्य में कोई कमी नहीं है तथा पुत्रों से वियुक्त हुई वह

स्वयं को मन्दभागिनी मानती हैं— “ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी” ।

वन में अपने द्वारा पालित नवीन निकले हुए सुन्दर व चञ्चल पंखों वाले मयूर को कदम्ब के वृक्ष पर अपनी पत्नी के साथ कूकता देखकर सीता स्नेहयुक्त होकर अश्रुधारा बहाने लगती है तथा उसकी यह प्रसन्नता बनी रहे, ऐसी कामना करती है। राम भी सीता के पुत्र स्वरूप उस मयूर को ‘वत्स’ कहकर सम्बोधित करते हैं एवं प्रसन्नता का आशीर्वाद देते हैं—“मोदस्व वत्स! वयमद्य वर्धामहे।” पूर्व में सीता द्वारा पुत्रवत् पालित एवं उसके साथ की गई मनोरंजनात्मक गतिविधियों का स्मरण करते हुए राम उस मयूर को स्नेहपूर्ण मन से पुत्र की भाँति स्मरण कर रहे हैं—

करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं,
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।।

सीता द्वारा जलादि देकर बड़े किए गए कुछ कलियों से युक्त कदम्ब वृक्ष पर बैठकर वही मोर मानो देवी सीता को याद कर रहा है; क्योंकि वह सीता द्वारा स्व संतानवत् पालित उस वृक्ष पर स्वजन की भाँति आनन्द का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार पूर्व में सीता जब वनवासावधि में राम के साथ थीं और जो शिलातल इनका विश्रामस्थल था, अब निर्वासन के समय सीता उसी शिलातल पर बैठकर वन में विचरण करने वाले मृगों को पुत्रवत् मानते हुए अपने हाथों से कोमल—कोमल तिनके खिलाती हैं; अतः स्नेह के बन्धन में बँधे हुए वे मृग सीता को नहीं छोड़ते— यह बात वन में आए हुए राम को वासन्ती बताती है, तो राम को यह सब देखना भी असम्भव हो जाता है। यहाँ सीता का मृगों के प्रति वात्सल्य प्रेम देखा जा सकता है। इस प्रकार भवभूति के पात्रों का वात्सल्य प्रेम केवल रक्त सम्बन्ध रखने वाली संतान के अथवा औरस संतति के प्रति ही नहीं है, वरन् पशु—पक्षियों, पादपों इत्यादि प्रकृति में निहित विभिन्न जीवों व तत्वों के प्रति है। जिसकी अभिव्यक्ति भवभूतिने स्वयं राम के मुख से भी कराई है। यह उनके वात्सल्य का प्रकर्ष ही तो है।

इस प्रकार तृतीय ‘छाया अंक’ में राम, सीता, तमसा, वासन्ती इत्यादि पात्रों के माध्यम से भवभूति ने वात्सल्य प्रेम को अभिव्यक्त करने का अच्छा अवसर निकाला है तथा यहाँ औरस संतति की अनुपस्थिति में भी वनीय पशु—पक्षी एवं पादपों के प्रति प्रेमपालित कर वात्सल्य की सृष्टि की है।

चतुर्थ अंक में सीता निर्वासन से अतिदुःखित जनक एवं कौसल्या नामक पात्रों के माध्यम से वात्सल्य को अभिव्यक्त करने का अच्छा अवसर पाया है। यहाँ माता—पिता का अपनी संतति के दुःख एवं बिछोह से अति व्यथित एवं शोकार्त हृदय वात्सल्य प्रेम के प्रकर्ष को दर्शाता है। अकारण निर्वासिता निरपराधिनी अपनी पुत्री सीता के जीवन में आए कष्टों और उसके बिछोह से दुःखी जनक वैखानस हो चुके हैं। वे वाल्मीकि आश्रम में महर्षि वाल्मीकि को देखने आए हैं, जहाँ कौसल्या भी आई हैं। सीता की विपत्ति का स्मरण कर वे बार—बार दुःख से व्यथित हो रहे हैं। रात—दिन घुन की भाँति लगा रहने वाला शोक उन्हें आरे की भाँति चीर रहा है, तथापि शान्त नहीं हो रहा है— “निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।” पुत्री के प्रति, वात्सल्य भाव से भरे हुए जनक उसके दुःखों के कारण वृद्धावस्था में असह्य शोक झेलने पर विवश हैं। वे अब जीना नहीं चाहते, परन्तु विवशता है, क्योंकि प्राण रुके हुए हैं, वे निकल नहीं रहे। अतः वे स्वयं के शरीर को महापातकी बतलाते हुए कहते हैं कि मेरा यह महापातकी शरीर अब नष्ट भी नहीं हो रहा और मैं आत्महत्या भी नहीं कर सकता; क्योंकि जो लोग आत्महत्या का पाप करते हैं, वे पापों का फल भोगने के लिए ‘असूर्य’ (सूर्य—रहित) नामक निविड़ अंधकारमय

लोक में जाते हैं—“कष्टम्? एवं नाम जरता दुःखेन च दुरासदेन..... प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति।” पुत्री के जीवन का ऐसा दुःखद परिणाम हुआ, जिसके दुःख से दुःखी वे बार-बार प्रलाप करते हैं, अपना दुःख-शोक कम करने के लिए दूसरों के समक्ष रो भी नहीं सकते— सीता के प्रति वात्सल्य से भरे हुए जनक को ऐसे दुःख भरे समय में सीता के शैशवकालीन मुख का स्मरण हो रहा है और वे उसे याद कर पुनः-पुनः शोकार्त हो रहे हैं— “अनियतरुदितस्मितं.....वदनकमलकं शिशोः स्मरामि.....।।” यहाँ जनक सीता की शैशवावस्था के समय उसके मुख का स्मरण करते हुए कह रहे हैं कि “अकारण ही हँसने-रोने वाले, कोमल कलिकाओं के अग्रभाग के समान (छोटे-छोटे) विरल दाँतों से सुशोभित तथा तुतलाये हुए, बिना किसी क्रम के मनोहर वचन बोलने वाले तुम्हारे शैशवकालीन मुख का मैं स्मरण करता हूँ।” इस प्रकार यहाँ अति सुन्दर वात्सल्य भाव का चित्रण हुआ है।

पुत्रवधू सीता को माता कौसल्या वधू नहीं, वरन् पुत्री ही मानती हैं और इसीलिए वे भी सीता निर्वासन से अति दुःखी व शोकार्त हैं। सीता के वियोग दुःख से दुःखी जब वे जनक के समक्ष आती हैं तो और अधिक विकल हो उठती हैं। जनक को देखते ही उनका दुःख और अधिक असह्य हो जाता है तथा रोने से हजारों प्रवाहों में बड़े वेग से बहने लगता है—

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि ।

दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि, स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ।।

निर्वासिता सीता को पुनः-पुनः स्मरण कर कौसल्या वात्सल्यातिरेक के कारण करुण प्रलाप कर रही हैं—“हा वत्से जानकि! कुत्रासि? स्मरामि तेनवविवाहलक्ष्मी.....।।” कौसल्या पूर्व में दशरथ द्वारा कहे गए वचनों को दोहराती हुई जो कहती हैं, उससे राजा दशरथ का सीता के प्रति वात्सल्य प्रेम सूचित होता है—“एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूः, अस्माकं तु जनक सुता दुहितैव।” अर्थात् (दशरथ के अनुसार) सीता रघुकुल के पूर्वजों की पुत्रवधू है, परन्तु हमारी तो पुत्री ही है। माता कौसल्या राम व सीता के प्रति महाराज दशरथ के वात्सल्य प्रेम को बतलाते हुए कहती हैं कि— पाँच सन्तानों में महाराज को सुबाहु-शत्रु (राम) ही अधिक प्रिय थे और ऐसे ही चार पुत्रवधुओं में भी पुत्री (शान्ता) के समान सीता ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय थी—“पञ्चप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः प्रियो..... प्रिया तनूजास्य य यथैवा सीता।।”

जनक की तरह कौसल्या भी पुत्री जानकी के बिछोह दुःख में प्राणों को धारण नहीं करना चाहती, परन्तु विवशता है। अतः वे इस दुःख से पुनः-पुनः मूर्च्छित हो जाती हैं।

वाल्मीकि आश्रम में सीतापुत्र लव को देखकर उसे न जानते हुए भी जनक वात्सल्य से भर उठते हैं तथा बालक को देखकर उन्हें अपूर्व सा अनुभव होता है एवं वह बालक उन्हें अपनी ओर चुम्बक की भाँति आकर्षित करता है। कौसल्या तथा सुमन्त्र भी सीता पुत्रों को देखकर वात्सल्य से भर उठते हैं।

षष्ठ अंक में सीता व स्वयं के पुत्र लव को देखकर तथा उससे अपरिचित होते हुए भी राम की अन्तरात्मा स्नेहसिक्त हो जाती है और वे यह सोचते हैं कि इस प्रेम का कारण अवश्यमेव कोई आन्तरिक परस्पर सम्बन्ध है, अन्यथा प्रेम बाह्य कारणों पर अवलम्बित नहीं होता—“व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।” बालक लव के प्रति राम का वात्सल्य इतना अधिक उमड़ जाता है कि वे उससे आलिंगन हेतु लालायित हो उठते हैं और दृढ़तापूर्वक आलिंगन हेतु कहते हैं—“आयुष्मान्! एह्येहि। (इति सस्नेहमालिङ्गयः।)

अयि वत्स! कृतमत्यन्त विनयेन। अङ्गेन मामपरिश्लथं परिरम्भस्व।" पुत्र लव का स्पर्श उन्हें चन्द्र एवं चन्दन द्रव के समान शीतलता प्रदान कर आनन्दित करता है।

इसी प्रकार कुश को देखकर राम का वात्सल्य भाव चरम पर पहुँच जाता है और वे उसका आलिंगन करने के लिए उत्कण्ठित हो जाते हैं—“परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठो जनः।।” कुश का आलिंगन करने पर उन्हें जो सुखद अनुभूति होती है, उसके द्वारा भवभूति ने वात्सल्य प्रेम के अतिसुन्दर, हृदयस्पर्शी एवं उदात्त स्वरूप को अभिव्यक्त किया है—“अङ्गादङ्गात्सृत इव निज स्नेहजो देहसारः.....।।” अर्थात् “मानो अङ्ग—अङ्ग से, स्नेह से उत्पन्न मेरे देह का सार अथवा चैतन्य शक्ति ही (इस बालक के रूप में) बाहर प्रकट हो गई है। अतिशय आनन्द से क्षुब्ध हृदयद्रव से सिक्त यह बालक गाढ़ आलिंगन करने पर मानो मुझे हिम से सींच रहा है।”

सप्तम अंक में भगवती पृथ्वी सीता के परित्याग से व्यथित हो रही हैं। उनका सीता पर पुत्रीवत् स्नेह है। यहाँ भागीरथी के मुख से कवि ने सन्तान प्रेम की जो अभिव्यक्ति कराई है, वह द्रष्टव्य है; जिसे कवि ने सर्व—साधारण के मन को मोह में बाँधने वाली ग्रन्थि, प्राणियों की आन्तरिक संवेदनशीलता का कारण तथा संसार का तन्तु कहा है तथा अंत में सीता—राम व उनके पुत्रों के साथ अन्य सभी परिजनों का मिलन कराकर वात्सल्य अथवा सन्तान प्रेम की विजय दिखलाई है—“जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो गूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः।।”

निष्कर्ष :-

उत्तररामचरितम् में चित्रित वात्सल्य भाव एवं संतति प्रेम के स्थलों का अध्ययन—अनुशीलन करने पर यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि कवि भवभूति ने वात्सल्य प्रेम को अत्यधिक महत्व दिया है। संसार को और परस्पर हृदयों को जोड़े रखने वाला उदात्त, हृदयस्पर्शी एवं निःस्वार्थ वात्सल्य प्रेम अनेक स्थलों पर कवि ने पूर्ण उदात्तता एवं मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है। भवभूति के वात्सल्य प्रेम का यह वैशिष्ट्य है कि वह केवल औरस संतान या अपत्य के प्रति ही चित्रित नहीं हुआ, वरन् पशु—पक्षी—पादप आदि सभी के प्रति वात्सल्य भाव खूब पालित एवं पोषित हुआ है। भगवती पृथ्वी का सीता के प्रति पुत्रीवत् स्नेह है। इसी प्रकार प्रकृति का मानवीकरण कर अनेक स्थलों पर अर्थात् वन देवता, नदियों तथा चराचर प्रकृति के सन्दर्भों में वात्सल्य प्रेम की खूब अभिव्यक्ति एवं पुष्टि हुई है। निःसन्देह वात्सल्य प्रेम का प्रकर्ष भवभूति के उत्तररामचरितम् में यत्र—तत्र—सर्वत्र देखा जा सकता है, जो कि इनके काव्य को विशिष्ट बनाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सन्दर्भ स्थल -

1. उत्तररामचरितम्, 'प्रियम्वदा' टीकोपेतम्, संस्कृत टीकाकार - ब्रह्मानन्द शुक्ल; हिन्दी व्याख्याकार -डॉ. कृष्णाकान्त शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण- 1996, 3/17
2. वही, 3/6
3. वही, 3/15 के बाद गद्य पंक्ति, पृष्ठ-216
4. वही, 3/16 के बाद गद्य पंक्ति, पृष्ठ-220
5. वही, 3/19
6. वही, 3/21 -“नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति हरिणकैर्न विमुच्यते स्म।।”

7. वही, 4/3
8. वही, 4/3 के बाद गद्य, पृष्ठ-293
9. वही, 4/4
10. वही, 4/8
11. वही, 4/15 के बाद गद्य, पृष्ठ-315
12. वही, 4/15 के बाद गद्य, पृष्ठ-315
13. वही, 4/16
14. वही, 6/12
15. वही, 6/12 के बाद गद्य, पृष्ठ-419
16. वही, 6/13 –“नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः।।”
17. वही, 6/21
18. वही, 6/22
19. वही, 7/3 के बाद गद्य, पृष्ठ-464



भारतीय संस्कृति और स्त्रीवादी साहित्य

डॉ. ममता शर्मा

सह आचार्य, राज. राजशेष महाविद्यालय, असनावर, झालावाड़।

भारतीय समाज एवं संस्कृति में नारी विषयक आरम्भिक चिन्तन बड़ा सकारात्मक रहा है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर नारी को बहुमान मिला है। जिस समाज व परिवार में नारी संतुष्ट है, वहाँ सुख शान्ति एवं ऐश्वर्य निवास करता है। भारतीय संस्कृति की विरासत में नारी को स्वातंत्र्य के साथ सामाजिक समानता भी प्राप्त रही है। वैदिक काल में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' या 'संगच्छध्वम् संवदध्वम् संवोमनांसि जानताम्' आदि सूत्रों में नारी इस 'सर्वे' शब्द से बाहर नहीं है। 'अर्द्धनारीश्वर' का आदर्शवादी जीवन-दर्शन भी भारत में रहा है, किन्तु इसके पश्चात् कुछ विपरीत धारणा मनुस्मृति की रही, जिसमें नारी स्वातंत्र्य हर अवस्था में प्रश्नांकित हो गया।

“बाल्ये पितुर्वशे निष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।

पुत्राणां भर्तरि प्रेते भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्।।”¹

बचपन में वह माँ-बाप के संरक्षण में रहे, युवती होने पर पति की सुरक्षा में तथा वृद्धा होने पर पुत्र की व्यवस्था में। वर्षा वर्णन में तुलसीदास ने भी “महावृष्टि चलि फूटि कियारी, जिमि सुतन्त्र ह्वे बिगरै नारी।”² क्या वास्तव में नारी स्वतंत्र होकर बिगड़ जाती है? या फिर आत्माधीन होकर यह आधी दुनिया (स्त्री) अपना सहज विकास और प्रतिभा का प्रकाश कर सकेगी। मध्ययुगीन भारतीय समाज में चिरकाल से घर में सजे सुख-सुविधा के सामान की भाँति ही नारी को इस्तेमाल किया गया, वह साधन बनकर रह गयी, उसे कभी अनचाही मुस्कुराहट से मुस्कुराना पड़ता है, कभी मनचाही हँसी को दबाना पड़ता है। क्या नारी बेजान वस्तु है? जिसे पुरुष जैसे चाहे इस्तेमाल करे। हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। सारे संचालन पुरुष ने अपने हाथों में रखे। नारी के मर्यादा एवं शील पर विचार किए बिना उसे भोग्या मानना नारी मर्यादा की अवमानना का चरम रूप है। नारी को मात्र गृह-शोभा बनाकर रखा गया। उस समय नारी ने मर्यादा के तिरस्कार को क्या मौन सह लिया, उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। मैं समझती हूँ, यदि की भी होगी तो पुरुष प्रधान समाज ने उसे मौन की बेड़ियाँ पहना दी होंगी अथवा अधिक संभव यह भी है कि प्रतिक्रिया नहीं हुई हो, क्योंकि नारी-शिक्षा उस समय बहुत संकुचित थी। आधुनिक काल के उदय के साथ नारी मुक्ति आंदोलन हुए और कवियों ने नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया। ध्रुवस्वामिनी का ऊर्जस्वित व्यक्तित्व अधिकार वंचिता नारी का सशक्त रूप है।

गोदान में भी 'प्रेमचन्द' ने पुरुष की अपेक्षा नारी को अधिक श्रेष्ठ माना है। इस काल में भी अहम्-दृष्ट पुरुषों का एक बहुत बड़ा वर्ग नारी त्राण की भाषा बोलकर नारी त्रास में रत रहा। समाज के इस नकाबपोशी

को देखकर आधुनिक युग में 'जैनेन्द्र कुमार' ने तथाकथित सभ्यता के पहरेदारों के नकाब अपने उपन्यास 'त्यागपत्र' में फाड़ दिये। 'मृणाल' के बहाने वर्तमान भारतीय छद्म परम्परा को त्याग पत्र दिलवा दिया। पुरुष द्वारा सृजित शोषण, अर्द्धसत्य, विकृत जीवन-दर्शन, स्वार्थ-सिद्धि के लिए कल्पित तर्कजाल, हृदयहीनता और पथ-थके सिद्धांत ही नारी के लिए दुखमय संसार हैं। उनके सुनहले और नियोजित, कुत्सित और पाखंड के जाल में नारी विवश समर्पित हो जाती है। त्राण नहीं उसे त्रास मिलता है। अशिक्षा और आर्थिक अभाव उसे कमजोर बना देते हैं। वह एक अघोषित गुलामी में जीती है। अपनी इस दयनीयता के लिए वह खुद भी जिम्मेदार है। 'प्रभा खेतान' 'सीमोन द बाउवार' के 'द सेकिंड सैक्स' का अनुवाद 'नारी उपेक्षिता' में कहती हैं। "गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है"³ पर स्त्री जिस गुलामी को जीती है उससे वह बेखबर है। "स्त्री घरों में अलग-अलग वर्गों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में बिखरी हुई है। उसमें क्रांति की चेतना नहीं, क्योंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। वह पुरुष के साथ सह अपराधिनी है।"⁴ 'सीमोन' का मन्तव्य है कि विश्व की प्रत्येक संस्कृति में स्त्री को या तो देवी के रूप में रखा गया है या गुलाम के रूप में, अपनी इन स्थितियों को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत-सी जगहों पर वह सह अपराधिनी भी है।

आज महिला सशक्तीकरण पर बड़ा जोर चल रहा है। प्रश्न यह है कि सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले 'मानव' की आधी दुनिया (स्त्री) के प्रति सशक्तीकरण की बात क्यों उठायी जाती है, इसका मतलब है उसे पहले पुरुष समाज ने सशक्त नहीं होने दिया। स्त्री को अबला, कोमलता की कली, रस की पुतली जैसे संबोधन देकर पुरुष वर्ग ने अपने हित में चतुराई की। वह चतुराई थी या धूर्तता, अपनी श्रेष्ठता और वर्चस्व बनाये रखने का 'इगो' था या फिर भावुक आकर्षण। पुरुष ने रूप-सौन्दर्य प्रशंसा के मकड़जाल में नारी मन को सम्मोह में डाल दिया और फिर मन माफिक सुविधानुकूल सिद्धान्त गढ़ लिए। नारी पुरुष के सुख की साधन बन गयी, किन्तु "गति, मति, रुचि, आशा, अभिलाषा"⁵ क्या नारी की पुरुष के ही समान नहीं। फिर उसे महत्त्व न देकर क्या वर्ग विशेष ने उसे अधिकार वंचिता नहीं बनाया। शास्त्रों के प्रणेता पुरुष ने अपनी सुविधानुकूल आचार संहिता निर्मित कर ली। मध्य युग की स्थिति तक कुछ ऐसा ही था।

"स्वयं भले ही शत-शत पत्नी वरण करे शास्त्रानुकूल है।

किन्तु मानुषी को पर नर की छाया भी घातक त्रिशूल है।"⁶

आज समाज इससे उबर रहा है, पर बहुत से विकास-बाधक प्रतिबंध क्या नारी को सशक्त बना पाएँगे, क्या यह नारी का छद्म शोषण नहीं? उसकी क्षमता और प्रतिभा का तिरस्कार नहीं? नीति-निर्धारण में नारी की भी हिस्सेदारी होनी चाहिए, जिससे एकांगी आचार संहिता न बन सके। नारी आरक्षण पर संसद से सड़क तक हंगामा क्यों? आज पुरातन मानकों को चुनौती देने का समय है। प्रगति में नारी की कम हिस्सेदारी समाज की प्रगति को लँगड़ा ही बनाएगी। पुरुष वर्ग का षड्यंत्र या चतुर पाखण्ड न्यायोचित नहीं ठहरता। पुरुष ही घर का मुखिया क्यों? मेरा मानना है कि समझ के संस्कार ही बदलने चाहिए, विभेद देखना ही बंद होना चाहिए। झण्डा व क्रांति ही इलाज नहीं, नारी की अपनी सत्ता है, अपनी अस्मिता है, जरूरत है- स्त्री की समाज में व्याप्त रूढ़ छवि को तोड़ने की। इसे रोहिणी अग्रवाल भी सही हल मानती हैं। वे 'विद्रोही स्त्री' (पृष्ठ-286, 298) का हवाला देती हैं। "विशाल हृदयता, उदारता और साहस मर्दाना गुणों पर दावा पेश करने के बाद 'अपनी ऊर्जा को खुद के चुने हुए उद्यम में उद्देश्य पूर्ण ढंग से लगाना' ही नारीत्व की परिभाषा और पर्याय बन जाता है। यह वह

स्थिति है जो औरत के हक में स्त्री की धर्म संगत, रूढ़ छवि को तोड़कर मनुष्य भाव से ओत-प्रोत एक नई जीवन्त छवि गढ़ने का दुस्साहस करती है।⁷

रोहिणी अग्रवाल ने स्त्री सशक्तीकरण की अवधारणा को मोटे तौर पर 'मुक्ति की सामूहिक चेष्टा' के रूप में देखते हुए जिन बिन्दुओं को रेखांकित किया है, उनका सार है—

“स्त्री होने के कारण स्वयं को अपराधी महसूस करने की अपेक्षा वह आत्मसम्मान और आत्म गौरव से दीप्त हो सके। वह स्थिति के अनुसार निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने की क्षमता से सम्पन्न हो सके। व्यक्ति, स्थित, सम्बन्ध को विश्लेषणात्मक ढंग से जानने-परखने का आत्मविश्वास अपने भीतर पैदा कर सके। आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ स्त्री-चेतना का क्रमिक विस्तार हो। पुरुष की सोच में भी परिवर्तन हो, क्योंकि 'पुरुष की सोच और दृष्टि में अपेक्षित परिवर्तन के बिना स्त्री-मुक्ति बेमानी है।'⁸ रोहिणी अग्रवाल के विश्लेषण को देखें तो कुछ बातें रेखांकित करने योग्य हैं। स्त्री की नियति सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मान्यताओं से परिचालित होती हैं। वह पुरुष की सत्ता में अपने अस्तित्व का विलयन कर प्रभुता प्राप्त करना चाहती है। सहअस्तित्व परक समाज में नारी सशक्तीकरण में नारी के साथ विवेकी पुरुषों की भी अपरिहार्य भूमिका है। स्त्री को इसकी शुरुआत घर से करने पर जोर देती हुई वे कहती हैं “घर ही उसकी प्रयोगशाला है और घर ही उसका पहला कर्मक्षेत्र। क्योंकि यही वह स्थल है, जहाँ अनजाने ही लड़के और लड़कियों को मर्द एवं औरत बनकर रूढ़ छवियों में ढलना सिखाया जाता है।”⁹

रूढ़ियों की इस जकड़न के चलते महिलाओं को उपेक्षिता, दूसरे दर्जे की माना जाता रहा। पुरुष प्रधान समाज में महिलाएँ उपभोग की वस्तुएँ बन गईं। उनका उपभोग न सिर्फ शारीरिक स्तर पर बल्कि मानसिक और आर्थिक स्तर पर भी होता रहा है। इसी के चलते नारी की स्वतन्त्रता, समानता एवं अस्मिता के प्रश्न ज्वलंत रूप में उठते रहे। नारी जीवन की समस्याओं को 'मृत्युंजय उपाध्याय' महिला उपन्यासकारों के लेखन-क्षेत्र एवं उनकी निष्ठा का संदर्भ देते हुए लिखते हैं, “दाम्पत्य जीवन में दरार और विघटन उनका आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण, उनको समानता का अधिकार न मिलना, उनको दायम दर्जे का मानना, उन्हें विकास का पर्याप्त अवसर न देना, उनकी अस्मिता पर उठते प्रश्न चिन्ह, कामकाजी महिलाओं का आत्मसंघर्ष, नैतिकता एवं आधुनिकता का द्वन्द्व।”¹⁰

स्त्रीवादी साहित्य लेखन में चित्रा मुद्गल, मन्नु भण्डारी, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, मंजुल भगत, ऊषा प्रियंवदा, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा दीक्षित, प्रभा सक्सेना, प्रभा खेतान, ममता कालिया, पद्मा सचदेव, नमिता सिंह, शिवानी तथा शशिप्रभा आदि नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें से ज्यादातर ने उपन्यास और कहानियों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अन्य विधाओं में भी लेखन किया। इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालें तो स्त्रियों द्वारा पहले बहुत नहीं लिखा गया, इसका कारण भी भाव्य यह कि स्त्रियों को न तो इतनी स्वतन्त्रता थी और न शिक्षा। बौद्ध भिक्षुणियों की 'थेरी गाथा' से शुरु करें तो लम्बे अन्तराल के बाद भक्तिकाल में मीराँ, छायावाद में महादेवी वर्मा जैसे कुछ नाम ही विशेष उल्लेखनीय हैं। हाँ पुरुषों के द्वारा लिखे गए स्त्रीवादी साहित्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, प्रसाद, दिनकर, राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, जैनेन्द्र, भगवती चरण वर्मा, यशपाल तथा भीष्म साहनी जैसे नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, पर विशेष श्रेय महिला

लेखिकाओं को ही जाता है, जिन्होंने बेबाकी से अपनी रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ दीं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी का मानना है, “स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नारी जागरण व स्त्री-शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप महिला रचनाकारों की एक सशक्त पीढ़ी का उदय हुआ।”¹¹ रचना के क्षेत्र में स्त्रियों की विशेष भागीदारी ने, मात्रात्मक एवं गुणात्मक सृजन ने, उन्हें यह कहने पर विवश किया “पिछले कुछ वर्षों में स्त्री केन्द्रित लेखन अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार पा चुका है। अब तो लगने लगा है कि हिन्दी-उपन्यास की नई पहचान का श्रेय महिला लेखिकाओं को ही मिलेगा।”¹²

‘सीमोन’ को नारीवादी आन्दोलन की प्रमुख प्रवर्तिका माना जाता है, उनका मुक्ति संदेश स्त्री वर्ग के लिए है, उनके चिन्तन के दो दिक् स्पष्ट होते हैं- स्वतन्त्रता और समानता। स्त्री स्वाधीनता से उसकी प्रकृति एवं रिश्तों की सरसता समाप्त नहीं होती, बल्कि दासत्व समाप्त होगा और उसी के साथ व्यवस्था का ढोंग भी समाप्त हो जायेगा। स्त्री-पुरुष अपने प्रकृत रूप में पूरक हैं, यह पूरकता ही उन्हें पूर्णता प्रदान करती है, किन्तु उसमें कोई ऊँचा या नीचा नहीं। इस समानता से ही त्रासद स्थिति समाप्त हो सकेगी। सम्पूर्ण कर्मक्षेत्र का पूर्ण आधार पुरुष नहीं। नियम, कानून, आचार संहिताएँ, उनकी व्याख्याएँ केवल पुरुष केन्द्रित रहने से ही समानता खण्डित होती है। यद्यपि संवैधानिक तौर पर स्त्री के मानवीय एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा का प्रावधान है। इसलिए “हिन्दू उत्तराधिकार कानून ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की तुलना में स्वातन्त्रोत्तर भारत की स्त्री को अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता एवं समानता प्रदान की है।”¹³ कानून अपनी जगह है, पर मुख्य परिवर्तन तो मानव मन की चेतना से शुरू होता है, हृदय से होता है।

निष्कर्ष :-

‘भारतीय संस्कृति एवं स्त्रीवादी साहित्य’ पर विचार करते हुए कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं और कुछ के संकेत मिलते हैं। नारी पारिवारिक सामाजिक पृष्ठभूमि में अघोषित गुलामी से स्वयं को मुक्त करके ही स्वाधीन हो सकेगी, तभी जाकर अधिकार सुख-वंचिता, त्याग व समर्पण की देवी ‘स्त्री’ गेह में रहकर भी प्रवासिनी होने की विवश पीड़ा से बच सकेगी। कारण को समाप्त करने से कार्य स्वतः समाप्त हो जाता है। आर्थिक स्वावलम्बन से ही पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं आ सकती। शांति नोबेल पुरस्कार लब्ध (2014) ‘मलाला यूसुफजई’ की तरह परम्परागत संस्कारों से, रूढ़ियों की कारा से मुक्त होने का नैतिक और मानसिक साहस स्त्री को जुटाना होगा। कारणों की पड़ताल करें तो पुरुष प्रधान समाज की रूढ़िगत सोच, अशिक्षा जैसे और भी कारण मिल जाएँगे। जन-मन और समाज की रूढ़िगत सोच में परिवर्तन लाने से समाधान सहज संभव हो सकेंगे। साथ ही सामाजिक-वैचारिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन अपेक्षित है। ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते’ जैसे कथन पाखण्ड न बनें, वे अपनी अर्थवत्ता के साथ पूर्णतः व्यवहार में उतरें। नारी को प्रेरक शक्ति माना गया है, पुरुष की सफलता के पीछे नारी का हाथ होता है फिर यह विरोधाभास क्यों? ज्ञान और कर्म के, कथनी और व्यवहार के स्तर पर एकरूपता क्यों नहीं? प्रसन्नता की बात है कि आधी दुनिया (स्त्री) के प्रति अब ‘सुख का साधन’ या ‘भोग्या’ का दृष्टिकोण बदल रहा है। आज की नारी सशक्त एवं शिक्षित हो रही है, उसने प्रत्येक क्षेत्र में अपने हस्ताक्षर किए हैं, रूढ़ियों की शृंखलाएँ टूटी हैं, नारी को हीन समझने का दृष्टिकोण बदला है। देश और समाज के लिए यह सकारात्मक सोच, पूरी मानव-सृष्टि के लिए शुभ संकेत है।

संदर्भ-संकेत :-

1. मनु स्मृति – 5/148
2. तुलसीदास – रामचरितमानस (किष्किन्धा काण्ड) पृ. 359 प्रकाशन– गीता प्रेस गोरखपुर।
3. नारी उपेक्षिता– सीमोन द बोउवार, अनुवादक– प्रभा खेतान।
4. वही।
5. डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी, पाषाणी खण्ड काव्य, पृ. 93
6. वही, पृ. 93
7. रोहिणी अग्रवाल– भारतीय उपमहाद्वीप का स्त्री–लेखन पृ. 173 आलोचना सहस्राब्दी अंक चौदह 2003 सम्पादक– नामवर सिंह।
8. वही, पृ. 173
9. वही, पृ. 174
10. मृत्युञ्जय उपाध्याय, समकालीन महिला समस्याएँ, आजकल, अप्रैल 2001
11. डॉ० रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य पृ. 259, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2012
12. वही– पृ. 288
13. रोहिणी अग्रवाल, भारतीय उपमहाद्वीप का स्त्री–लेखन, आलोचना सहस्राब्दी अंक चौदह, 2003 सम्पादक– नामवर सिंह, पृ. 180



तीर्थ एवं उनके प्रकार

योगेश स्वरूप ब्रह्मचारी, शोध छात्र,

डॉ. कमलेश कुमार थापक, शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर,

संस्कृत विभाग, कला संकाय, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय सतना, मध्य प्रदेश।

तीर्थ क्या है?

तीर्थ उसे कहते हैं, जिसके सम्पर्क में आने से पवित्रता प्राप्त हो क्योंकि जो पवित्र है, वही शुभ और श्रेष्ठ है। पवित्रता आध्यात्मिक जीवन की पहली शर्त है। जो पवित्र अन्तःकरण है वही मोक्ष या भगवद प्राप्ति कर सकता है। अस्तु तीर्थ वह है जो तार दे। निर्मल पावन पवित्र कर दे।

‘तीर्थ’ शब्द तृ प्लवन्तरणयोः धातु से ‘थक्’ प्रत्यय के योग से बना है। इसका अर्थ है ‘तिर्यते अनेन’, अर्थात्— इससे तर जाता है।

अमरकोष के तृतीय काण्ड नानार्थ वर्ग के 86वें श्लोकार्द्ध में लिखा है— ‘निपाना गमयोस्तीर्थमृषिजुष्टे जले गुरौ’ अर्थात्— ऋषि सेवित जल एवं गुरु यह तीर्थ है।⁽¹⁾

वेदों में भी तीर्थ शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।

‘तीर्थेन दस्मुयन्त्यूमाः’ (ऋक् 10/31/3)— में तीर्थ शब्द का सम्भवतः अर्थ है — एक पवित्र स्थान।⁽²⁾

तीर्थों के प्रकार :-

सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ पूर्ण रूप से सात्विक प्रकृति का विकास हुआ है। सभी धर्मों में हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें तीर्थों का शास्त्रीय, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से लोकोत्तर वर्गीकरण हुआ है।

वर्गीकरण के अनुसार तीर्थ मुख्यतः तीन प्रकार के माने गये हैं :-

1. जङ्गम
2. मानस
3. स्थावर

1. जङ्गम तीर्थ :-

चर या चलने वाले सजीव तीर्थ ही जङ्गम तीर्थ कहलाते हैं। मुख्य रूप से ऋषि, संस्कार पूत, मोक्ष धन ब्राह्मण स्वगुणोत्कर्ष के कारण ही जङ्गम तीर्थ माने गये हैं। ब्राह्मण चलते—फिरते तीर्थ है जिनके वाक्यों को सुनकर मलिन मन शुद्ध हो जाते हैं। वस्तुतः ब्राह्मण धर्म रूप होकर धर्म के लिये ही जन्म लेते हैं। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है — उत्पत्तेरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य शाश्वती। स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। (मनुस्मृति¹)

अर्थात् — ब्राह्मण की देह ही धर्म की अनश्वर मूर्ति होती है। जिस धर्म के लिये इसका जन्म हुआ है उसी से वह आत्मज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है।⁽³⁾

ब्राह्मण ही मानस तीर्थ का स्नातक एवं स्थावर तीर्थों का निर्माता एवं संरक्षक रहा है। जन्मना एवं कर्मणा ब्राह्मण अब भी वस्तुतः तीर्थ है। संत-महात्मा भी जङ्गम तीर्थ हैं। सतों के हृदय में भगवान सदैव वास करते हैं। अतः वे जिस भी स्थान में रहते या जाते हैं वही तीर्थ बन जाता है, वे तीर्थों को भी महातीर्थ बना देते हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर ने महात्मा विदुर जी से यही कहा था – भव द्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो। तीर्थो कुर्वन्ति तीर्थानि स्वांतःस्थेन गदाभृता (श्रीमद्भागवत-1/13/10)

प्रभो! आप जैसे भगवान के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान् के द्वारा तीर्थों को भी महातीर्थ बनाते हुये विचरण करते हैं।⁽⁴⁾

मानस तीर्थ :-

मानसिक पावनतम सद्गुणों का ही नाम मानस तीर्थ है यथा- सत्य, क्षमा, दया, सहजता, सरलता, मृदुभाषण, ब्रह्मचर्य, दान, ज्ञान, दम, धृति, पुण्य आदि मानस तीर्थ है। मन की शुद्धि सर्वोत्तम मानस तीर्थ है। सत्य तीर्थ क्षमातीर्थ तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः। सर्वभूतदया तीर्थ तीर्थमार्जवमेव च।।

दानं तीर्थ दमस्तीर्थ संतोषस्तीर्थमुच्यते।

ब्रह्मचर्य परं तीर्थ तीर्थ च प्रियवादिता।

‘स्कन्दपुराण काशीखण्ड आ.6’⁽⁶⁾

तीर्थ यात्रा का उद्देश्य ही होता है अन्तःकरण की शुद्धि और उसके फलस्वरूप भगवत् प्राप्ति। मानस गुण जो तीर्थ ही है, उनको धारण करने और उनके अनुरूप आचरण करने से निश्चय ही मानव परम ध्येय की प्राप्ति कर सकता है।

स्कन्द पुराण में कहा गया है – ध्यान पूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे सयाति परां गतिम्। ‘ध्यान के द्वारा पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुये राग द्वेष रूप मल को दूर करने वाले मानस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है वह परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है।⁽⁶⁾ इसके अलावा अगर मनुष्य का मन शुद्ध न हो, वह अहंकार क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि से युक्त हो तो दान, तप, तीर्थ सेवन, शास्त्र-श्रवण, ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं।

स्थावर तीर्थ :-

पृथ्वी तल में स्थित तीर्थों को स्थावर तीर्थ कहा जाता है। जिस प्रकार शरीर के कुछ अंग पवित्र तथा श्रेष्ठ समझे जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के भी कुछ भाग विशेष पवित्र एवं महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रमुख स्थावर तीर्थ निम्न हैं – अयोध्या, मथुरा, द्वारिका, काशी, द्वादश ज्योतिर्लिंग, देवी शक्ति पीठ, नैमिषारण्य, हरिद्वार, चित्रकूट, चारों धाम तिरुपति, वैष्णो देवी, अमरनाथ धाम इत्यादि। कुछ स्थावर तीर्थों का निर्माण वहाँ की प्राकृतिक विशेषता जैसे- विशाल नदियाँ, उत्तुंग पर्वत, एवं वनों की वजह से होता है। जैसे जलीय स्थलों में एक स्वाभाविक रमणीयता होती है जिनके पास पहुँचने पर भावना स्वतः पवित्र हो जाती है तथा साधना या पुण्यार्जन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

तैत्तरीय संहिता (2/6/8/3) में कहा गया है कि ‘आपो वै सर्वा देवताः’ अर्थात् सभी देवता जलों में वास करते हैं।⁽⁷⁾

कुछ स्थावर तीर्थ मनुष्य रूप में ईश्वर के वास करने, ऋषि-मुनि संत जनों के प्रकट होने या उनकी

साधना स्थली होने के कारण भी वह स्थान तीर्थ कहलाने लगते हैं। ऋषि-महात्माओं की साधना स्थली के रूप में अधिकांश तीर्थ जलस्थलीय ही हैं। क्योंकि उन स्थानों में उन्हें जल की एवं पवित्र एवं निर्मल वातावरण की प्राप्ति होती थी, जो साधना के लिये उपयुक्त रहता था।

यजुर्वेद में कहा गया है – उपहरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धियो विप्रो अजायत्। (यजुर्वेद 26/15)
अर्थात् – पर्वतों की गुफाओं और नदियों के संगमों में ऋषि-मुनियों को सद्बुद्धि प्राप्त हुई।⁽⁶⁾

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अमरकोष, तृतीय खण्ड।
2. ऋग्वेद (10/31/3)
3. मनुस्मृति अध्याय-1
4. श्रीमद्भागवत पुराण।
5. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड।
6. वही।
7. तैत्तरीय संहिता।
8. यजुर्वेद।
9. पद्मपुराण।
10. ब्रह्मवैवर्त पुराण।
11. विष्णुपुराण।
12. नारदीय पुराण।
13. भविष्य पुराण।
14. याज्ञवल्क्य स्मृति।



आधुनिक हिंदी दक्खिनी कवि सुलेमान खतीब

डॉ. अंबेकर वसीम फातेमा अब्दुल अजीज

सहायक प्राध्यापिका, राधाबाई काळे, महिला महाविद्यालय, अहमदनगर।

साहित्य समाज का दर्पण है, क्योंकि साहित्य में उसी विषय को प्रस्तुत किया जाता है जो समाज में घटित होता है और साहित्यकार को प्रभावित करता है जिससे कवि या लेखक अपने साहित्य का सृजन करता है और समाज में घटित घटनाओं से परिचित कराता है। हर एक रचनाकार का अपना एक ढंग होता है। कोई यथार्थ रूप में तो कोई व्यंग्यात्मक रूप में समाज का चित्रण अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है। व्यंग्यात्मक काव्य की यह विशेषता होती है कि सामाजिक बुराईयों और अत्याचार से संबंधित इस ढंग से बात प्रस्तुत की जाती है कि सुनने वाला उस बात का बुरा नहीं मानता बल्कि मुस्कुरा देता है और कही हुई बात का प्रभाव भी उस पर अधिक होता है। उसी प्रकार दक्खिनी हिंदी कवि सुलेमान खतीब यह एक व्यंग्यकार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। व्यंग्यात्मक ढंग से कही हुई बात के बारे में स्वयं सुलेमान खतीब ने अपनी एक कविता में कहा है :-

बात हर बात को नहीं कहते, बात मुश्किल से बात होती है।

बात हीरा है, बात मोती है, बात लाखों की लाज होती है।।

सुलेमान खतीब यह दक्खिनी भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने भारत की आज़ादी के बाद दक्खिनी भाषा को पुर्नजीवित किया। इसीलिए दक्खिनी कवि ने एक अवसर पर कहा है :-

तू दक्कन में रहता है, दक नीच बोल।

तुझे क्या पड़ी है, तू आप नीच बोल।।

दक्खिनी भाषा और साहित्य का प्रभाव कुतुबशाही और आदिल शाही शासनकाल के बाद कम होता चला जा रहा था। विशेषतः दक्खिनी काव्य पर उत्तर भारतीय साहित्यिक फारसी भाषा का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। जिसके कारण दक्खिनी भाषा एक ओर अधिकाधिक क्लिष्ट होती जा रही थी तो दूसरी ओर उसका संबंध जन साधारण से घटता जा रहा था। सुलेमान खतीब ने दक्खिनी भाषा की इस दुरावस्था को दूर किया और अपने काव्य के माध्यम से उसे जन साधारण में तथा साहित्यिक स्तर पर सुशिक्षित और सभ्य समाज में भी सम्मान प्रदान किया। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक सभ्यता का प्रसार तो किया ही लेकिन इसी के साथ समाज सुधार और सामाजिक एकता का भी प्रसारण किया। उन्होंने लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयत्न भी किया।

सुलेमान खतीब के काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि उनके काव्य में व्यंग्य के साथ-साथ 'नाटकीयता' का भी समावेश है। महत्वपूर्ण तत्व को सामने रखते हुए ही उन्होंने अपने काव्य की रचना की है।

सुलेमान खतीब के काव्य में नाटकीयता का संभाषण और वातावरण प्रस्तुत करने वाली कविताओं में प्रमुख हैं – पहली तारीख, सास-बहू, छोरा-छोरी, साँप ई. इन कविताओं में सुंदर वार्तालाप द्वारा विशिष्ट घटना और प्रसंग का जीवित चित्रण प्रस्तुत किया है। यह कहना अधिक योग्य होगा कि उन्होंने नाटकीयता के समावेश द्वारा ही अपने पाठक और दर्शकों को चौंका दिया है।

सुलेमान खतीब की वजह से दक्खिनी भाषा को हास्य-व्यंग की भाषा नहीं बल्कि आम जनता के दिल की बात प्रस्तुत करने वाली भाषा माना जाने लगा। वे केवल कवि नहीं हैं बल्कि उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से न केवल लोगों का मनोरंजन किया है बल्कि अवामी लहजे में, अवामी ज़बान में, अवामी ज़ब्बात के माध्यम से समाज के मआशरे की नुमाईदगी की है। इस तरह वेतन, मन, धन से समाज के प्रति समर्पित हैं। उन्होंने केवल हँसने-हँसाने तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखा है बल्कि इस प्रभावी माध्यम से सामाजिक बुराईयाँ, अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा समाज में प्रचलित गलत और हानिकारक प्रथाओं और रिवाजों को नष्ट करने के प्रति भी मार्मिक सुधारवादी संकेत दिये हैं। उन्होंने अपने व्यंग्यात्मक काव्य के माध्यम से गरीबों की भूक और प्यास, बेरोज़गारों, मज़दूर और मालिक का संघर्ष, किसान और साहुकार का संघर्ष, जात-पात का भेद, महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, युवकों की फैशन परस्ती इन सभी में सुधार करने के विचार प्रस्तुत किये हैं। वे चाहते हैं कि इन सभी समस्याओं के विरोध में सामूहिक रूप से विरोध और संघर्ष होना चाहिए ताकि परिस्थिति में योग्य परिवर्तन आए।

सुलेमान खतीब के काव्य में तीन प्रकार के व्यंग्य पाए जाते हैं, (1) राजनितिक व्यंग्य (2) सामाजिक व्यंग्य (3) मानवतावादी तथा सुधारवादी व्यंग्य। काना दज्जाल, चीनी गुड़िया, इलेक्शन का मौसम इन कविताओं में राजनीतिक व्यंग्य की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। राजनीतिक बड़े स्वार्थी और चालाक होते हैं। वे अपने स्वार्थ तथा कुर्सी हासिल करने के लिए भाषा, धर्म, जाति, प्रान्त के नाम पर जनता को आपस में लड़ाया करते हैं। ऐसे स्वार्थी नेताओं को फटकारते हुए वे कहते हैं :-

लेकर अक्सर ज़बान के झगड़े,
बेजुबानों पर वार करते हो।
खून बहाते हो छोटे बच्चों का,
अपनी नय्या को पार करते हो।⁽¹⁾

इसी प्रकार सुलेमान खतीब ने आज के नौजवानों पर और विशेषतः उनकी पोशाक पर व्यंग्य करते हुए कहा है :-

अदली-बदली हुई है कपड़ों की,
लुंगी पहनी है देखो फरजाना।
क्या जनाना है काहे का मर्दाना,
उनका एक चहै सबका अफसाना।⁽²⁾

इस तरह सुलेमान खतीब ने नौजवानों का वर्णन अपने काव्य में किया है। हमारे समाज में व्याप्त एक गंभीर आर्थिक समस्या दहेज की है जिसे गरीब समाज को भारी संकट में डाला है। इस समस्या की गंभीरता को सुलेमान खतीब ने अपनी कविता 'छोरा छोरी' में वार्तालाप की नाटकीय शैली द्वारा प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत

किया है कि किस प्रकार दूल्हे की माँ बड़े गर्व से अपने बेटे के लिए लड़की माँगती है और साथ ही अनेक वस्तुओं की माँग करते हुए दूल्हे की माँ कहती है :-

बहुत चीजां न को जी थोड़े बस,
एक बांग्ला हजार जोड़े बस।
रेडियो साईकिल तो दुनिया देती है,
अल्लाह देवे तो एक मोटर बस।
जोड़े-घोड़े तो लेकर धोना है,
खाली पच्चीस हजर होना है।⁽³⁾

कविता की इन पंक्तियों तक तो हमारा मनोरंजन होता है लेकिन लड़की का बाप इस लंबी चौड़ी माँग को सुनकर परेशान हो जाता है। क्योंकि वह इन माँगों को पूरा करने की हैसियत नहीं रखता। इसीलिए निराश होकर बड़े अफसोस के साथ पश्चाताप व्यक्त करते हुए कहता है :-

जी में आता है अपनी बच्ची को,
अपने हाथों से खुद ही दफना दें।
लाल जोड़ा तो दे नहीं सकते,
लाल चादर में क्यों न कफना दें।⁽⁴⁾

कविता की इन पंक्तियों को पढ़कर हमें लगता है कि अगर दहेज का यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो लड़कियों का घर में पैदा होना एक मुसीबत बन जाएगी।

सुलेमान खतीब ने एक और कविता में सास-बहू के आंतरिक द्वंद्व को बड़ी मार्मिकता से स्पष्ट किया है। सुलेमान खतीब की एक बहुचर्चित कविता 'सास-बहू' प्रसिद्ध है। जिसमें सास-बहू के आपसी वार्तालाप द्वारा मानसिक द्वंद्व को प्रस्तुत किया गया है। जो वर्तमान युग की प्रासंगिकता हैं। सास अपनी बहू के बारे में कहती है -

आँच घर में लगा को बैठी माँ,
घर का कुंवा डुबो को बैठी माँ।
वह तो पोह्ला सदा का दीवाना,
पूरा बंदर बना को बैठी माँ।⁽⁵⁾

सुलेमान खतीब ने अपनी इस कविता के द्वारा घर-घर की सास-बहू की कहानी को बड़े ही मार्मिक ढंग से स्पष्ट किया है। सुलेमान खतीब ने इस कविता का अंत बहू के वक्तव्य से किया है। इसके माध्यम से समाज के सभी अत्याचार पीड़ित बहूओं की हालत प्रस्तुत की गई है। दूसरी और अत्याचारी सासों को भी झिंझोड़ने का प्रयत्न किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि सुलेमान खतीब ने केवल काव्य रचना के लिए कविताएँ नहीं लिखी बल्कि उनका उद्देश्य समाज सुधार और सामाजिक अत्याचार दूर करना है। इसलिए कविता के अंत में बहू अपनी सास को सचेत करते हुए कहती है -

यह न भूलो के तुम भी बेटी हो,
बेटी हर घर की अमानत है।

बेटी मरियम बेटी जो हरा है,
 बेटी रहमत है बेटी जन्नत है।
 बेटी सीता है और सावित्री,
 बेटी एक इबरत है।
 बेटी कहते हैं बे-जबानी को,
 बेटी पत्थर की एक मूरत है।
 एक की बेटी जो घर को आती है,
 अपनी बेटी भी घर से जाती है।⁽⁶⁾

इन पंक्तियों में सुलेमान खतीब ने यह पैगाम दिया है कि इंसानियत की पहचान यही है कि बेटी का आदर किया जाए और उसको घर की इज्जत समझा जाए। किसी के घर की बेटी को अपने घर पर लाने के बाद उसे अपनी बेटी की तरह समझना चाहिए और आदर देना चाहिए। क्योंकि वह पाकीज़ा होती है। सुलेमान खतीब का यह संदेश समाज के हर स्तर के लोगों तक पहुंच जाए तो समाज में बहूओं का स्थान आदर युक्त और ऊँचा हो सकता है जिससे स्वस्थ समाज का तथा सुखी समाज का निर्माण हो सकता है। समाज में सुधार की बात का भी हास्य और व्यंग्य की शैली में प्रस्तुत करना यह सुलेमान खतीब की आदत है। अपनी व्यंग्यात्मक शैली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए उन्होंने नाटकीय और संभाषण शैली को कामयाबी से अपनाया है।

सुलेमान खतीब ने अपने व्यंग्य को प्रभावी बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। इस संदर्भ में उनकी दो सुंदर कविताएं 'पगडंडी' और 'याद' हैं।

याद बोले तो तकिये में गजरे की बास,
 जैसे केवड़े का कांटा कलेजे के पास।
 यार बोले तो खाली दीवाने का ख्वाब,
 एक बच्चे का जैसे अधूरा जवाब।⁽⁷⁾

सुलेमान खातिब ने इस कविता के माध्यम से मानसिक संवेदनाओं और भावनाओं को सुंदर प्रस्तुत किया है।

सुलेमान खतीब का काव्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि जीवन में समाज में सुधार और प्रगति के हेतु से संपन्न है। यह वास्तविकता है कि सुलेमान खतीब ने प्रयत्न पूर्वक ओर से सहेतुक अपनी काव्य रचना के लिए विषयों का चुनाव नहीं किया। उनके आसपास कई विषय मौजूद रहते थे। उन्होंने जिन विषयों को चाहा, अपने काव्य का विषय बनाया और इन्हीं विषयों के माध्यम से समाज सुधार का काम किया।

अंत में हम कह सकते हैं कि सुलेमान खतीब दक्खिनी हिंदी के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने हास्य व्यंग्य की शैली का प्रयोग न सिर्फ लोगों के मनोरंजन के लिए किया बल्कि इस शैली के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर समाज को आईना दिखाया और सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

संदर्भ सूची :-

1. सुलेमान खतीब – इलेक्शन का मौसम, 'केवड़े का बन', पृ. 159

2. सुलेमान खतीब – जदीद कपडे, 'केवड़े का बन', पृ. 93
3. सुलेमान खतीब – छोरा-छोरी, 'केवड़े का बन', पृ. 64
4. सुलेमान खतीब – छोरा-छोरी, 'केवड़े का बन', पृ. 64
5. सुलेमान खतीब – सास-बहू, 'केवड़े का बन', पृ. 46
6. सुलेमान खतीब – सास-बहू, 'केवड़े का बन', पृ. 54
7. सुलेमान खतीब – याद, 'केवड़े का बन', पृ. 178



जनतंत्र की विफलता की अभिव्यक्ति 'संसद से सड़क तक' के सन्दर्भ में

डॉ. एन.आर. सजिला

असोसिएट प्रोफेसर, श्री. शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरूर, केरल – 676301

‘धूमिल की कविता संसद अर्थात् भारतीय जनतंत्र की सत्ता का सर्वोच्च बिन्दु और सड़क अर्थात् जनसमूह जोकि उस सत्ता बिन्दु का आधार है, तक फैली है।’ —चमनलाल गुप्त

हिन्दी कविता के क्षेत्र में ‘सुदामा पाण्डेय धूमिल’ का स्थान उन कवियों में प्रथम रहे जिनमें स्वतंत्र भारत की सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों के सन्दर्भ में गहन चिंतन है। ‘संसद से सड़क तक’ धूमिल का प्रथम काव्य संग्रह है जिसका प्रकाशन 1970 में हुआ। इसमें संकलित 25 कविताएं 1965 से 1970 के बीच रची गई हैं और प्रत्येक कविता राजनीतिक चेतना से पूर्ण भी है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत देश के बदलते परिवेश का अंकन इस संग्रह में बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया गया है। आज़ाद भारत में फैली दरिद्रता, भ्रष्टाचार, अनुशासन हीनता, नेताओं की चरित्र हीनता स्वार्थ केंद्रित भ्रष्ट राजनीति, इनके बीच पिसते आम आदमी की दयनीय स्थिति आदि को धूमिल ने स्वतंत्र भारत में स्थापित ‘जनतंत्र’ की विफलता माना है। इसलिए उनकी कविताओं में इन समस्याओं की अभिव्यक्ति तीक्ष्णता के साथ हुआ है। संग्रह का शीर्षक अत्यंत उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि इसकी सारी कविताएं संसद या सड़क से जुड़ी हुई हैं। संसद का मतलब शासक वर्ग या सत्ता से है और सड़क सामान्य जनता को प्रतिनिधित्व करती है।

भारत की शासन पद्धति जनता की, जनता के द्वारा जनता के लिए की गई है यानी जनतंत्र पर आधारित है। अर्थात् भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार जनता को दिया गया। जनता की प्रगति ही संविधान का लक्ष्य रहा। लेकिन स्वतंत्रता के बाद यह लक्ष्य पूरी नहीं हुई। इसका कारण शासन व्यवस्था की कमी और सत्तामोही राजनेता है। धूमिल इसके प्रति अत्यंत जागरूक थे। अतः उनकी कविता में हमारे जनतंत्र का खुला सा चित्र अंकित हुआ है। ‘संसद से सड़क तक’, की ‘जनतंत्र के सूर्योदय में’, ‘बीस साल बाद’, ‘शहर का व्याकरण’, ‘नक्सलवादी’, ‘पटकथा’ आदि कविताएं इसका सशक्त प्रमाण हैं।

अपने चारों ओर जनता के भीषण अनुभव देखकर धूमिल को पता लगा कि इसके मूल में जनतंत्र के संचालक हैं। उनकी स्वार्थपरता और आदर्शहीनता के कारण जनतंत्र भी महत्वहीन हो गया है। धूमिल ने जनतंत्र की इस मूल्य च्युति पर खूब विचार किया है। ‘उन्हें लगता है कि हमारा जनतंत्र अत्यंत अस्थिर है। जनतंत्र का चेहरा उसे चौराहे पर कवायद करते हुए पुलिसकर्मी के चेहरे जैसा लगता है।’ (डॉ. चमनलाल गुप्त— सुदामा

पाण्डे धूमिल की कविता में यथार्थबोध, पृ. 112—113) कवि के अनुसार भारत का जनतंत्र —

‘दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।’

—(पटकथा)

जिस प्रकार मदारी देखने वालों को मूर्ख बनाता है उसी प्रकार जनतंत्र के संचालक अर्थात् नेता लोग जनता को मूर्ख बनाता है। सब लोगों को अपनी-अपनी बात मुख्य है। इसलिए साधारण आदमी की कठिनाईयाँ बढ़ती रहती है, और अमीर-अमीर होते जा रहे हैं। ‘वस्तुतः इस देश के शासकों द्वारा चलाया जानेवाला लोकतंत्र एकदम बेमानी है। यदि उसमें माने ही ढूँढने निकलो तो हाथ आने वाले परिणाम अत्यंत भयंकर होते हैं।’ (अष्टेकर, कटघरे का कवि धूमिल, पृ. 69) बड़ी साहसिकता से धूमिल ने इसके अर्थ को व्यक्त किया —

‘उन्होंने जनता और जरायमपेशा
औरतों के बीच की
सरल रेखा को काटकर
स्वास्तिक चिह्न बना लिया है
और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है — जनतंत्र
जिसकी रोज़ सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है।’

— (शहर में सूर्यास्त)

धूमिल का मन यह दृश्य देखकर विचलित हुआ कि स्वतंत्र भारत में जनतंत्र की हत्या हो रही है। लोककल्याण की भावना से बनाया हुआ जनतंत्र अब भेड़ियों के हाथ में पिस रहा है। देश में व्याप्त भुखमरी, अकाल और बेरोजगारी आदि का कारण धूमिल ने यहाँ का अस्थिर जनतंत्र माना है। समाज की इन गंभीर समस्याओं पर सोचने के बदले यहाँ नेताएँ अपनी हितपूर्ति करने में व्यस्त हैं। भारतीय लोकतंत्र में सब कहीं शोषक-शोषित संबन्ध देखने को मिलता है —

‘ऐसा जनमंत्र है जिसमें
जिंदा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक जैसी छूट है।’

—(पटकथा)

इसमें घोड़ा शोषक के और घास शोषित के प्रतीक है। ‘यहाँ व्यंग्य एक ओर जनता की शोषित विवश मानसिकता पर है दूसरी ओर हमारी पूँजीवादी जनतांत्रिक व्यवस्था पर भी, क्योंकि यदि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी षड्यंत्रकारी शोषणपरक नियति त्याग दे तो उसका अस्तित्व ही एक दिन धूमिल हो जाएगा। घोड़ा कभी भी घास से मैत्री संबंध नहीं रखता। दोनों में भोज्य-भोजक संबन्ध सदैव विद्यमान रहेंगे, जब तक पूँजीवादी व्यवस्था का जड़ से उन्मूलन नहीं हो जाता। धूमिल की अंतर्दृष्टि व्यवस्था की धिनौनी अवसरवादी नीतियों से पूर्ण रूपेण

परिचित है।' (राकेश कुमार, धूमिल की काव्य चेतना : विविध आयाम, पृ. 96) धूमिल ने स्पष्ट पहचाना है कि व्यवस्था का संचालन पूँजीपतियों के हाथों में हो गए हैं। अब यहाँ निरंकुश शासन है क्योंकि उसमें कुछ लोगों को संपूर्ण अधिकार है कुछ लोगों को नहीं। धूमिल पूछते हैं –

‘वह कौन—सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा
झुरियों की झोली बन गया है
उसी उम्र में मेरी पड़ोस की महिला
के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे—सा
लोच है।’ —(अकाल दर्शन)

ऐसे जनतंत्र एक सिर कटे मुर्गे की तरह है।

‘सिर कटे मुर्गे की तरह फटकते हुए जनतंत्र में
सुबह —
सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।’ —(जनतंत्र के सूर्योदय में)

‘बार—बार कपर्धू का लगना, लोगों का घरों में दुबक जाना आदि इस बात का प्रमाण है कि हमारी शासन व्यवस्था हिंसा का सहारा लिए बिना चल नहीं सकती।’ (डॉ. चमनलाल गुप्त, सु.पा. धूमिल की कविता में यथार्थबोध, पृ. 110) सड़क पर मारपीट, हत्या, जुलूस हरेक दिन का दृश्य बन गया है। यह देखकर कवि के मन में क्षोभ एवं वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। ‘वे बेबाक होकर जनतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों पर टिप्पणी करते हैं। जहाँ ईमानदारी अपनी चोरजेब भरने में लगी हो, ‘विवेक’ चापलूसों के तलवे चाट रहा हो, ‘संसद’ तेली की उस धानी की तरह हो जिसमें आधा तेल और धानी है, ऐसी व्यवस्था में ‘समाजवाद’ भी यदि एक छद्म से अधिक कुछ नहीं है तो कोई आश्चर्य नहीं है।’ (डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, समकालीन काव्य की दिशाएँ, पृ. 82) भारतीय समाजवाद उनकी दृष्टि में देखिए —

‘मगर मैं जानता हूँ मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है,
जिन पर आग लिखा
और उनमें बालू और पानी भरा है।’ —(पटकथा)

इस प्रकार कवि हमारे प्रजातंत्र में किसी भी वस्तु में कोई अर्थ नहीं देखते हैं। यहाँ इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में समन्वयवादी हत्या करते हैं, ईसा पर प्रहार होता है, कुएं के दीवार पर चढ़कर मेंढक सूर्य को गाली देता है, बुद्ध की आंखों से खून चू रहा है, हिजड़े लिंग बोध पर भाषण देते हैं और वेश्याएं आत्मशोध पर कविताएं पढ़ती हैं, प्रेम में असफल छात्राएं अध्यापिकाएं बन गई हैं, रिटायर्ड बूढ़े सर्वोदयी बनते हैं, युवक विद्यालयों में स्वास्थ्य का नाश करते हैं। इसके साथ कवि देखते हैं कि देश के राजनेता सड़कों पर किश्तियाँ खोजते हैं और बुद्धिजीवी अपनी कुर्सियों पर आराम करते हैं। ऐसी व्यवस्था की गड़बड़ियों को अपने आँखों से देखने वाले,

अनुभव करने वाले धूमिल एक दूसरे प्रजातंत्र की तलाश करते हैं –

‘मुझे अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।’

वे दूसरे प्रजातंत्र इसलिए चाहते हैं कि उससे मानवीयता के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध हो और समाज की सारी विसंगतियाँ दूर हो जाएं। ‘.....प्रजातंत्र की विकृतियों को देखकर धूमिल का विश्वास प्रजातंत्र से उठ गया प्रतीत होता है। वास्तव में धूमिल प्रजातंत्र के विकृत रूप पर ही प्रहार करना चाहते हैं। प्रजातंत्र से बेहतर किसी व्यवस्था का संकेत उसके काव्य में नहीं मिलता है।’ (डॉ. चमनलाल गुप्त, सु.पा. धूमिल की कविता में यथार्थबोध, पृ. 114)

धूमिल की कविताओं में आज़ादी के बाद के हिन्दुस्थान की दुर्दशा का चित्रण है। ‘जीवन में स्वतंत्रता का ऐसा मूल्य है जिसके अभाव में आदमी का जीवन नारकीय हो जाता है।’ (डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र, धूमिल का काव्य संघर्ष, पृ. 111) फिर भी स्वतंत्रता के बाद देश की जनता में धूमिल ने देश प्रेम का अभाव स्पष्ट पहचाना है। दोष जनता का नहीं, यहाँ की व्यवस्था का है। क्योंकि आज़ादी के बीस साल बाद भी आम आदमी के भय, असुरक्षा की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। ‘बीस साल बाद’ कविता में स्वतंत्रता के बीस साल बाद अपने आपको असुरक्षित समझने वाले आम आदमी की भय का चित्र अंकित है –

‘बीस साल बाद

मैं अपने-आपसे एक सवाल करता हूँ

जानवर बनने के लिए कितने सब्र की

जरूरत होती है?’

—(बीस साल बाद)

आज़ादी के बाद भी मनुष्य जीवन जानवरों जैसा प्रतीत होता है, अर्थात् वह जानवर बनते जा रहे हैं। अमीर लोग एवं नेताओं के द्वारा जनतंत्र के नाम पर होने वाले शोषण को सहने के लिए वे मजबूर हैं। उनकी प्राथमिक समस्याओं का भी कोई समाधान नहीं ढूँढा जा रहा है। आम जनता की भूख, दरिद्रता आदि को लेकर राजनेता अपना स्वार्थपूर्ति कर रहे हैं। जनता अपने जीवन को रिरर्थक समझने लगता है –

‘उस मुहावरे को समझ गया हूँ

जो आज़ादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है

जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम

बदल रहा है।’

—(अकाल दर्शन)

इस प्रकार भारतीय जनतंत्र का सूक्ष्म एवं यथार्थपरक अभिव्यक्ति धूमिल के ‘संसद से सड़क तक’ की कविताओं में मिलता है। वे जनतंत्र की कमज़ोरियों का पर्दाफाश करके जनता को इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा देते हैं जिसके द्वारा भारत के आम जनता पर होने वाले ‘सत्ता’ की मनमानी पर रोक लगा सकते हैं।

आधार ग्रन्थ :-

1. संसद से सड़क तक – धूमिल।
2. जनवादी समझ और साहित्य – रामनारायण शुक्ल।
3. धूमिल काव्य यात्रा – प्रो. मंजू अग्रवाल।

4. दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में धूमिल – डॉ. कुमार कृष्ण ।
5. विपक्ष का कवि धूमिल – राहुल ।
6. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य – डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल ।
7. साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना – नरेन्द्र सिंह ।
8. कटघरे का कवि धूमिल – गणेश तुलसीराम अष्टेकर ।
9. सुदामा पाण्डे धूमिल की कविता में यथार्थबोध – डॉ. चमनलाल गुप्त ।
10. समकालीन काव्य की दिशाएँ – डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ ।
11. धूमिल की काव्यचेतना – विविध आयाम ।
12. धूमिल का काव्यसंघर्ष – डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र ।
13. धूमिल की कविता – शुकदेव सिंह ।
14. Making Sense of Indian Democracy & Yogendra Yadav
15. India's Experiment with Democracy : The Life of A Nation Through it's elections – S.Y.Quraishi
16. इण्डियन भरणघटना (मलयालम) – डॉ. एम.वि. पैली ।
17. एन्ताणुजनाधिपत्यम्, भाग-1, पी.पी. सत्यन ।



INTRODUCTION TO ENGLISH PROSE WITH SPECIAL REFERENCE TO NIRAD C CHAUDHARY

POONAMYADAV

Research Scholar, Singhanian University.

The inclination to establish a distinct identity has been a noteworthy characteristic of English prose in India since its inception. Despite the government's stated objectives, this trend has persisted both prior to and following independence. The British colonial administration introduced English with the primary aim of producing subservient clerks and sycophants, but it also engendered individuals who were social reformers, independent thinkers, political leaders, and others. Through their writings and speeches, English in India began to assume an Indian identity.

Lord Macaulay was of the opinion that implementation of the English language in India to be imperative for the advancement of British prestige, as well as for the perpetuation of the British Empire. In his view, the paramount accomplishment of the British people did not solely lie in governing humanity, but rather in instructing it. He perceived the essence of all philosophy to be rooted in the dignity of mankind, and the beckoning of history to be found in the unity of races.

Macaulay was a distinguished man of letters who adhered to a unique religious philosophy. This philosophy centered on the promotion of a deep appreciation for humanity through the power of language. In his advocacy for Indian education, Macaulay was not only championing the cause of education but also that of human enlightenment. His efforts in this regard were akin to those of a devout religionist, driven by a fervent zeal to transform Indian society. This is evident in his renowned "Minute on Education," which reflects his unwavering commitment and the formidable challenges he faced in shaping the future of our nation. Despite the prevailing societal norms and the formidable opposition from the Orientalists, Macaulay remained steadfast in his mission to bring about a positive change in Indian society.

It is widely acknowledged by those familiar with historical accounts that our understanding of the world was limited and our perspective outdated. Our knowledge was restricted to the study of Shastras, and our way of life was dictated by religious rituals. The only guidance we had was from the legendary heroes of our past. Macaulay's assertion that India lacked a history, science, and astronomy

is not entirely unfounded, although his sweeping and biased statement that all Sanskrit and Arabic knowledge was false is not entirely accurate. In comparison to the significant advancements made by Europe in science and history during that time, India was centuries behind. The introduction of a new education system allowed Indian culture to retain its roots while also incorporating Western ideas, which was necessary for its survival.

Following the attainment of independence, the national government, driven by political fervor, ceased to provide support for the English language, intending to restrict its usage to specific functional domains. It was anticipated that within fifteen years, Hindi, the national language of India, would entirely supplant English. In accordance with this expectation, the Constitution was amended to include provisions to this effect.

Once again, the English language has defied the intentions of the government. Despite facing opposition, it has continued to flourish steadily and quietly, constantly adapting to become a much richer and fuller medium of expression for the modern Indian sensibility than any other native Indian language. Presently, over 10,000 books of various genres, including creative and general, are published annually in India in the English language. This number surpasses the total number of publications in all Indian languages combined. The number of novelists, poets, essayists, and journalists writing in English in India has increased significantly, owing to the fact that Indians are writing in English without undue inhibitions.

The tradition of Indo-English prose can be easily traced, beginning with the works of Rammohun Roy. The majority of his prose was written during a time when Romantic prose was fashionable in England. However, Rammohun Roy's prose is largely devoid of the artificialities commonly found in English Romantic prose. While there is a certain degree of rhetoric present, it is of a type that is inherent in Sanskrit and the living Indian languages. The same can be said of the prose of other notable Indian writers in English who followed in Rammohun Roy's footsteps, including Keshub Chunder Sen, Govind Ranade, Bankim Chandra Chatterji, Dwarkanath Tagore, Gopal Krishna Gokhale, Vivekananda, and others. Their prose was written with the intention of awakening the Indian people from their centuries-old stupor, and as a result, it developed its own unique flavor. Similar to Victorian prose in England, the Indian prose of the late 19th century may appear heavy-handed on the surface, with an abundance of exclamation marks and interrogatives, but it is deeply infused with a resurgent Indian consciousness and rich allusions to the nation's mythical lore.

In the 20th century, as the movement for independence gained momentum, the English prose authored by Indian national leaders, social reformers, religious figures, creative writers, and journalists began to exhibit a greater degree of Indianness. These writers, including Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru, Rabindranath Tagore, Aurobindo, S. Radhakrishnan, C. Rajagopalachari, Mulk Raj Anand, and

others, developed a more fluid and less cumbersome prose style that incorporated words and idioms from spoken Indian languages. Many of these words subsequently found their way into Standard English dictionaries.

Jawaharlal Nehru's literary works, namely his Autobiography and *The Discovery of India*, demonstrate his exceptional mastery of the English language. His extensive and profound knowledge of English literature, coupled with his familiarity with the intellectual and literary movements in Europe, as well as his deep-rooted inspiration from Indian and Asian traditions, have resulted in Nehru's writing being characterized by a natural and effortless style, as well as a sensitive and suggestive tone. Nehru's writing is a reflection of his persona, as it reveals his cultural background, his intellectual prowess, and his human nature. Whether in writing or speaking, Nehru's works are a testament to his admirable and endearing character.

Dr. Radhakrishnan is a distinguished master of prose, whose monumental two-volume *History of Indian Philosophy* has set a benchmark for philosophical writing in English. His exposition is brilliant, and he presents rival systems of philosophy with judiciousness, while his arguments are persuasive. Radhakrishnan has succeeded in endowing Indian philosophy with the quality of a vital and living tradition. In his later works, particularly in *An Idealist View of Life*, the constructive philosopher is more prominent, and his prose style is always adequate, colorful, rich, and eloquent, interspersed with carefully selected quotations from the literatures of both the West and the East, which have been instrumental in carrying his message forward.

The distinct identity of English prose in this nation is discernible solely in the literary works of individuals who may be classified as non-academic and creative writers, or those who were social and religious reformers. This phenomenon is a natural consequence of English education, which instilled in them a consciousness of India's past grandeur and current predicament, thereby inspiring them to strive towards the restoration of its lost glory. These writers did not emulate the English prose of their counterparts in England, but rather employed the language as a tool to achieve their objectives, given that English was the sole language comprehensible to all educated Indians across various regions of the country.

Of paramount importance is the fact that all of these prose writers possess a profound knowledge of their respective Indian languages, which has greatly enriched their prose writings. However, Jawaharlal Nehru, in contrast, had an insufficient understanding of any Indian language and thus adhered closely to the rhythm and idiom of the educated Englishman's English. This observation holds true for other notable writers who emerged after India gained independence, including R.K. Narayan, Raja Rao, Bhabani Bhattacharya, Nayantara Sahgal, and Kamala Markandaya.

It is worth noting that individuals such as K.A. Abbas and Kushwant Singh possess a proficient

understanding of Urdu and Punjabi. It is a common observation that individuals who possess a deep familiarity with their native language and literature have played a pivotal role in shaping the development of English prose in India. Their contributions have been significant.

Indian literature in the English language possesses a distinctive feature, namely, its legitimacy as a form of literature is persistently and contentiously challenged. The pertinent inquiry ought not to be whether an Indian literature in English can exist, but rather, what extent of literary prospects are afforded to a writer who employs English as their medium. Regarding the novelists, B. Rajan opines.

"When we consider the possibilities open to the writer in English, we have to admit that literature in India has not fully risen to those possibilities. Few literatures do, and in a hostile climate there is a natural reluctance to take the larger risk. Even if the risk were taken, the conjunction of man and moment is not something which good intentions can legislate.... Indian writers have not yet developed the stamina to pursue their characters and themes over the long distances that the novel demands, nor acquired techniques to paint on large canvases".¹

B.Rajan has posited that Indian writing can be characterized as a cautiously limited success rather than a noble failure. Conversely, Anita Desai has expressed her belief that the Indian literary scene in English is a barren wasteland.² She attributes the dearth of creative writers in English to the fact that Indians, as a people, do not possess a strong literary inclination. According to Desai, Indians do not lead their lives in accordance with literary values and traditions. She contends that Indians are a vocal people, and that the qualities necessary for critical analysis and self-reflection are not inherent to Indian nature. Desai asserts that Indians are essentially extroverted, and are more inclined towards adulation or denunciation than pure, disinterested, detached criticism. While India has a place for epics, Desai believes that novels do not have a significant presence in Indian literature. She argues that epics were not considered works of literature, but rather were part of the oral tradition. Furthermore, Desai notes that "even now, epics are not widely read and are primarily the domain of scholars preserve".³

Numerous individuals have expressed such perspectives intermittently. It is imperative that we pose the following question: How much longer will we, as writers or poets, continue to apologize for writing in English? The notion that it is an "alien language", that it is "imprudent and futile" to utilize it as a creative medium, and that doing so is to burden oneself with a handicap, has become tediously repetitive. Indians who write in English are frequently accused of lacking Indian sensibilities or failing to remain true to their traditions.

However, a definitive definition of what truly constitutes "Indian" remains elusive. The assertion made by Yeats, that "Nobody can write music and style in language not learnt in childhood and ever since the language of his thought," has been frequently cited to support the notion that English is an

insufficient creative tool for Indian writers. Yet, we must not disregard the reality that for many Indian writers who employ English, it is a language that was acquired during their formative years and one in which their cognitive processes occur naturally. It is imperative that critiques of Indian literature cease to fixate on this issue. As H.M. Williams observes:

"Nehru wrote brilliantly of Indian history and of his own discovery of it, and composed speeches and letters which will always find a place in any anthology of English oratory and political commentary. From the stand point of literature, none of the statesmen authors can compare with Nirad Chaudhuri's autobiographical studies and his forays into sociology and national psychology in *The Continent of Circe*, one of the most amusing and original books about Hindu life, culture, and character, written in a rich, powerful style, reminiscent of some of the great Victorian prose writers".⁴

The various challenges faced by critics in the realm of Indian literature are diverse and complex. The conspicuous lack of serious critical engagement with Indian writing over the years has only been sporadically alleviated by occasional, fleeting interest in haphazardly compiled anthologies. One contributing factor to this phenomenon is the absence of a shared literary tradition or common ground among Indian writers, who frequently possess independent and disparate voices. Furthermore, established writers are often labeled as propagandists by emerging writers, while the latter are dismissed as ungrounded upstarts by critics. As such, the field of criticism in Indian writing has yet to mature.

To achieve the complete objective, it is insufficient to merely eliminate critical indifference. What is required in contemporary Indian literature is a discerning critique that eschews vacuous praise and impetuous rejection, and instead offers an impartial and transparent assessment of a literary piece, without any concessions or excuses for the language in which it is expressed.

In essence, the identity of prose is contingent upon the novelty of ideas. In the case of pre-Independence English prose in India, its identity was shaped by a pervasive preoccupation with the revitalization and modernization of ancient Indian culture. Conversely, the identity of post-1947 Indian prose is predicated upon the generation of original ideas and thoughts across various disciplines, as well as the attainment of excellence in both general and creative writing. Encouragingly, Indo-English prose, whether within or outside academic institutions, is characterized by a remarkable diversity of genres, each imbued with a distinct national identity.

Renowned authors have imbued their English with idioms, phrases, modulations, tone, and even the vocabulary of their native languages. This process has been reciprocal, as the development of English in India has similarly influenced native Indian languages. The outcome is a mutual enrichment and a pleasing variety in Indian English prose style. Mulk Raj Anand's prose is replete with Punjabi elements, while R.K. Narayan's unmistakably contains certain elements of Tamil. Bhabani

Bhattacharya's prose is steeped in Bengali sensibility and idioms. Similarly, Bharati Mukherjee's distinctly Bengali-flavored prose distinguishes her from Kamala Markandeya, whose prose pulsates with the rhythm of modern Tamil. Through the prose of these and other fiction writers, Indian English demonstrates its capacity to address the complex modern Indian experiences that extend beyond a particular region and relate to national, international, and fundamental existential problems. Indian writing, even if only post-1947 is considered, is a rich and diverse affair. Some writers have successfully overcome the challenge of language and achieved a unique style, such as Raja Rao, Ved Mehta, and Nirad Chaudhuri. However, there is also the reality of an uncreative and inefficient use of the English language by the majority of our academicians. Our academics are still preoccupied with linguistic perfection, akin to a 19th-century 'babu' worrying about the cut of his British-tailored suit. If we write as we think and feel, the English language can still be wielded as an effective tool to convey the nuances of the culture of the modern Indian, who is struggling to reconcile his ancient Indian heritage with the new knowledge of the West.

Nirad C. Chaudhuri is widely regarded by his admirers as one of the most prominent Indo-English writers. While the English have acknowledged his greatness, his achievements remain under a cloud in our country. Chaudhuri has been described as India's most provocative and controversial writer, a description that still holds true today. Despite his advanced age of 85, he remains as irrepressible as ever, as evidenced by his recent articles. Chaudhuri once stated that supporting him is more patriotic than championing E.M. Forster. Unfortunately, it has become fashionable to label him an "Anglophile," and some Indian writers have dismissed his works as mere "wordy exercises," "preposterous theses," or "pathetically sterile efforts." Chaudhuri writes:

"To call me pro-British has become such a stale jibe that I have ceased even to be amused by it. In fact, instead of harming me the bad reputation has helped me in my profession of writer. White-skinned scribblers have two methods to make Anglicised Indians read their books: first, by praising India and next by criticising it. Both work, because the one feeds their megalomania and the other their persecution mania. In contrast, mere Natives like me have only one way if they want to secure a wide readership among these people. These Indians do not value praise of Indian life and civilisation from their fellow countrymen, for that is only a shared feeling, devoid of extra authority. So, the native must criticise and acquire the reputation of being anti-Indian".⁵

"On the whole, I should be reconciled to my ill-fame" says Chaudhuri.⁶

Renowned figures such as Aldous Huxley, Arnold Toynbee, Christopher Isherwood, T.S. Eliot, Henry Thoreau, and Arthur Schopenhauer have been able to recognize the greatness of India. It is therefore perplexing that an Indian like Nirad Chaudhuri is unable to find any greatness in his own country, as asserted by his critics. However, upon closer examination of Chaudhuri's writings and

observations, it becomes evident that he possesses a deeper understanding and appreciation of Indian culture than many of us. Nirad Chaudhuri's insights into India's social and historical issues are deemed genuine, as he does not rely on second-hand sources in his literary works. Consequently, his perspectives possess a captivating quality that resonates with readers. Chaudhuri astutely identifies several inadequacies in our familial, societal, and political spheres, which stem from his profound sense of responsibility towards his nation and its populace.

The intellectuals of contemporary India are subject to two significant limitations. Firstly, they exhibit a lack of commitment, and secondly, they lack vision. Their commitment is not directed towards ideas or professional standards, but rather towards their own self-interest, their position in the hierarchy, and professional advancement insofar as it serves these overriding considerations. In simpler terms, the average intellectual is more concerned with maintaining their position in the upper middle class than with the attitudes and values that accompany a commitment to knowledge and its dissemination. Given this situation, it is not surprising that there is a near-complete absence of vision. Indian intellectuals are more preoccupied with the present than with the future, as the present exerts a sharp impact on them that they are unable to ignore.

In recent years, there have been several endeavors to establish centers of intellectual excellence within the country. However, these attempts have not yielded significant success. Regrettably, the pursuit of excellence has become intertwined with the pressure to advance in one's professional career. Consequently, individuals who should prioritize professional standards often compromise them, especially when their personal interests are at stake. In such circumstances, it takes exceptional courage to uphold one's principles. This is where Nirad Chaudhuri distinguishes himself from contemporary Indian intellectuals, as evidenced by his writings.

References :

1. B. Rajan, "India", in Bruce King (ed), *Literature of the World In English*, Routledge & Kegan Paul, London, P. 81.
2. Anita Desai, "Pretty Flower In a Wasteland" New Delhi, Nov. 24-Dec. 7, 1980.
3. Ibid.
4. H. M. Williams, *Indo-Anglian Literature – A Survey*, Orient Longman Ltd., New Delhi, 1976, p. 10.
5. Nirad C. Chaudhuri, "My Way of Being Pro-British",
6. Ibid.



उत्तराखण्ड में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता

रुचि पन्त

शोधार्थी, इंदिरा प्रियदर्शिनी राजकीय महिला स्नातकोत्तर वाणिज्य महाविद्यालय हल्द्वानी,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड।

सारांश :-

भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड राज्य का निर्माण 9 नवम्बर 2000 को एक लम्बे समय से चल रहे व्यापक आंदोलन के फलस्वरूप किया गया। उत्तराखण्ड आंदोलन में विभिन्न क्षेत्रीय दलों, राजनीतिक दलों, महिलाओं, युवाओं, छात्रों तथा सरकारी कर्मचारियों आदि ने अपनी अहम् भूमिका अदा की। उत्तराखण्ड आंदोलन एक ऐसा आन्दोलन था जिसमें यहाँ की मातृशक्ति की अहम् सहभागिता रही। आंदोलन के दौरान कोई ऐसा कार्य नहीं होगा जिसमें उन्होंने सक्रिय भूमिका का निर्वाह न किया हो। पुरुष वर्ग के पलायन के कारण घर तथा बाहर दोनों की जिम्मेदारियाँ यहाँ की महिलाएँ बखूबी निभाती हैं। इस कारण उन्हें उत्तराखण्ड अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहा जाता है। यहाँ की मातृशक्ति ने स्वतंत्रता आन्दोलन से लेकर राज्य आंदोलन तक लगातार अपने अधिकारों हेतु संघर्ष किया है। लेकिन लोकसभा चुनाव हो या उत्तराखण्ड विधानसभा के चुनाव, उनमें उत्तराखण्ड की महिलाओं की स्थिति ना के बराबर है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का विश्लेषण राज्य गठन से अब तक (वर्ष 2000 से वर्ष 2022 तक) हुए लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के संदर्भ में किया गया है।

प्रस्तावना :-

विश्व के अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली पायी जाती है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली एकमात्र ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें महिला तथा पुरुष दोनों को अपने विकास के समान अवसर उपलब्ध होते हैं। इसमें निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया समाज के कुछ लोगों अर्थात् अल्पतंत्र के हाथों में न होकर संपूर्ण समाज में निहित होता है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में जनता अपने राजनीतिक अधिकारों के बारे में केवल जानती ही नहीं बल्कि इसका प्रयोग भी कर सकती है। इसी प्रकार राजनीतिक भागीदारी अगर उत्तराखण्ड की महिलाओं के संदर्भ में देखें तो उत्तराखण्ड गठन के 23 वर्षों बाद भी महिलाओं का राजनीति में प्रतिनिधित्व निराशाजनक है। हांलाकि उत्तराखण्ड आंदोलन को अपने जुझारूपन से ऊर्जा एवं गति देने वाली महिला शक्ति यदि आज चुनावों में खड़ी दिखाई देती है तो वह या तो प्रचार तंत्र में झोंक दी जाती है या फिर राजनेताओं को सत्ता पर काबिज करवाने के लिए वोटों की लाईन में खड़ी दिखाई देती हैं। इस शोधपत्र के माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र में उत्तराखण्ड की महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन पद्धति :-

इस शोध प्रपत्र हेतु ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। वर्णनात्मक अध्ययन पद्धति के माध्यम से विविध आयामों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है।

राजनीति तथा महिला सहभागिता :-

हमारे देश का संविधान नागरिकों को कई तरह के अधिकार प्रदान करता है जैसे संघ बनाने का अधिकार, मत देने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार तथा चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार आदि। हमारा संविधान लिंग तथा वर्ग के आधार पर भेदभाव निषिद्ध करता है। यदि हम अपने प्राचीन इतिहास को देखें तो हमें कई ऐसी महिलाओं का जिक्र मिलता है जिन्होंने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। श्रीमती सरोजनी नायडू, अरुणा आसिफ अली, सरला देवी चौधरानी, विजय लक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृतकौर, कमला देवी चट्टोपाध्याय आदि महिलाओं ने हमारे स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भागीदारी निभाई है। भारत के स्वाधीनता संग्राम से तत्कालीन उत्तर प्रदेश का पहाड़ी क्षेत्र उत्तराखण्ड भी अछूता नहीं रहा। हालांकि उस समय समाज में बाल विवाह, जाति प्रथा, बहु विवाह जैसी अनेक कुरीतियाँ भी व्याप्त थी। विधवाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता था। सर्वप्रथम अल्मोड़ा की महिलाओं ने प्रशासन के विरुद्ध रात में गोठों (गौशाला) में जागरण करना प्रारम्भ किया तथा इस जागरण में वह राष्ट्रीय गीतों को गाया करती थी जिससे महिलाओं में राष्ट्र भावना का विकास हो सके। फिर यहाँ की महिलाओं ने धीरे-धीरे संगठित होकर सार्वजनिक सभाओं में जाना प्रारम्भ किया जिससे स्वतंत्रता आन्दोलन को काफी बल मिला। पुरुष प्रधान समाज में तिरस्कृत महिलाएँ अब घर की चारदिवारी से बाहर निकलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रतिभाग करने लगीं। प्रारम्भ में उनका समाज द्वारा काफी विरोध भी हुआ लेकिन बाद में सभी को यह मानना पड़ा कि आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता होना बहुत आवश्यक है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उत्तराखण्ड की महिलाओं ने अपनी सक्रिय भूमिका अदा की। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उत्तराखण्ड से जेल जानी वाली पहली महिला विश्वी देवी साह थी वह हमेशा कहा करती थी—

“जेल न समझो बिरादर, जेल जाने के लिए,
यह कृष्ण मन्दिर है, प्रसाद पाने के लिए।”

यह पंक्तियाँ उनके अदम्य साहस का परिचय कराती हैं। इसके अतिरिक्त भी कुंती वर्मा, भागीरथी देवी वर्मा, तुलसी रावत, भागीरथी देवी चौहान, दुर्गा देवी पंत आदि के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। इसके अलावा चाहे वह शराब विरोधी आन्दोलन हो, चिपको आंदोलन हो या फिर नशा नही रोजगार दो आंदोलन ही क्यों न हो उन सब में महिलाओं ने बढ़-चढ़कर प्रतिभाग किया है।

राज्य आंदोलन से अब तक महिलाओं की स्थिति :-

उत्तराखण्ड आंदोलन के दौरान मुजफ्फरनगर कांड भी हमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की याद दिलाता है जिसमें हंसा धनाई तथा बेलमती चौहान शहीद हो गई थी। इसके अतिरिक्त राज्य आंदोलन में अपना अतुलनीय योगदान देने में सुशीला बलूनी, कौशल्या डबराल, उषा नेगी, धनेश्वरी देवी, विजयलक्ष्मी गुसाई आदि प्रमुख हैं। इन सभी के अथक प्रयासों से उत्तराखण्ड राज्य अस्तित्व में आया।

उत्तराखण्ड राज्य में लोकसभा के 5 निर्वाचन क्षेत्र हैं तथा राज्य गठन से अब तक 4 बार लोकसभा चुनाव हुए हैं। इन चुनावों में महिलाओं की स्थिति को निम्नवत् सारणी के माध्यम से दर्शाया गया है :-

सारणी-1 लोकसभा चुनावों में महिला प्रत्याशी

वर्ष	महिला प्रत्याशी	विजयी महिला
2004	5	0
2009	7	0
2014	7	1
2019	7	1

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि 2004 के चुनावों से 2009 में महिला प्रत्याशियों की संख्या बढ़ी किन्तु दोनों चुनावों में एक भी महिला प्रत्याशी विजयी नहीं हुई। 2014 तथा 2019 के चुनावों में महिला प्रत्याशियों की संख्या तो वही रही लेकिन दोनों बार एक-एक प्रत्याशी ही विजयी हुई।

उत्तराखण्ड में एक सदनीय विधायिका है। राज्य गठन के पश्चात् वर्ष 2002 से अब तक 5 बार विधानसभा चुनाव सम्पन्न हुए हैं। जिसमें महिलाओं की स्थिति को निम्नवत् सारणी के द्वारा समझा जा सकता है।

सारणी-2 विधानसभा चुनावों में महिला प्रत्याशी

वर्ष	महिला प्रत्याशी	विजयी महिला
2002	72	4
2007	56	4
2012	63	5
2017	61	5
2022	63	8

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि वर्ष 2002 से 2022 तक महिला प्रत्याशियों की संख्या घट-बढ़ रही है लेकिन विभिन्न वर्षों में विजयी महिला प्रत्याशियों की संख्या में वृद्धि तो हो रही है लेकिन यह वृद्धि पुरुषों के मुकाबले नगण्य है।

इस प्रकार यहाँ की मातृशक्ति ने स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर राज्य आंदोलन तक लगातार अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया है। लेकिन लोकसभा चुनाव हो या उत्तराखण्ड विधानसभा चुनाव हो उसमें महिलाओं की स्थिति बहुत ही सोचनीय है।

महिलाओं को लेकर राजनीतिक दलों की प्रतिक्रिया :-

आज तक राजनीतिक दल महिलाओं की राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित करने में मौन रहे हैं इसका सबसे बड़ा उदाहरण आज तक लंबित पड़ा महिला आरक्षण विधेयक है जो कि संसद तथा राज्य की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है। इसे पारित करने में राजनीतिक दल हमेशा से निरूत्साहित रहते हैं।

अपने भाषणों में मातृशक्ति की रट लगाने वाले नेता महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। नवोदित क्षेत्रीय दलों को देखकर लगता है कि इनके पास भी महिला प्रत्याशियों का अभाव है।

आखिर आज वह उत्तराखण्डी महिला कहाँ है जो आंदोलन के दौरान सड़कों पर नारे लगाती रही, लाठी-डंडे, गोलियाँ खाई, शासन-प्रशासन से जमकर टक्कर ली और राज्य आंदोलन को एक मुकाम पर पहुँचाया। वास्तविकता तो यह है कि पुरुष मानसिकता से ग्रस्त राजनेता महिलाओं को सत्ता में भागीदारी देने को तैयार ही नहीं। उन्हें महिलाओं की जरूरत तो है पर केवल अपने समर्थन में नारे लगाने के लिए।

महिलाओं की ऊर्जा को अपने प्रचार तंत्र में झोंककर राजनेता उनका उपयोग कर रहे हैं। अपना वोट बढ़ाने के लिए, अपने घोषणा पत्रों में महिलाओं को 20 प्रतिशत या 30 प्रतिशत आरक्षण सरकारी नौकरी में देने को तैयार है पर सत्ता में भागीदारी देने को तैयार नहीं। राजनीति में महिलाओं को वास्तविक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। जिससे महिलाओं का राजनीति की तरफ भय समाप्त हो सके तथा उनमें आत्मविश्वास बढ़ सके।

महिला मतदाताओं की राजनीतिक भागीदारी :-

उत्तराखण्ड गठन से अब तक हुए विभिन्न वर्षों विधानसभा चुनावों में महिला मतदाताओं की संख्या में बढ़ौत्तरी हुई है इसे निम्नवत् सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है-

सारणी-3 विधानसभा चुनाव : तुलनात्मक सारणी

(वर्ष 2002, 2007, 2012, 2017 एवं 2022)

	वर्ष 2002	वर्ष 2007	वर्ष 2012	वर्ष 2017	वर्ष 2022
मतदान की तिथि	14 फरवरी	21 फरवरी	30 जनवरी	15 फरवरी	14 फरवरी
कुल मतदाता	52,53,433	60,00,562	63,78,916	75,92,996	82,66,356
पुरुष मतदाता	27,05,495	30,32,163,	33,53,563	39,23,492	43,30,759
महिला मतदाता	25,47,938	29,68,399	30,25,353	35,72,029	39,35,597
मतदाता का प्रतिशत	54.34	63.96	67.70	65.64	65.37

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि विभिन्न वर्षों में संपन्न हुए विधानसभा चुनावों में महिलाओं की संख्या में बढ़ौत्तरी तो हुई है लेकिन यह जरूरी नहीं कि यह महिलाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व हो। अक्सर यह देखा जाता है कि महिलाएँ अपने घर, परिवार के सदस्यों के दबाव के कारण उन्ही प्रतिनिधियों को मतदान करती हैं जिसके लिए उनसे कहा जाता है। अतः हमें आज भी समाज को और अधिक जागरूक करने की जरूरत है ताकि नीति-निर्माण प्रक्रिया में महिलाएँ बढ़-चढ़कर हिस्सा ले सकें।

भारतीय राजनीति की यह विडम्बना है कि चुनावी घोषणा पत्र एवं वायदों में प्रत्येक राजनीतिक दल महिला समानता तथा अधिकारों का वायदा तो करता है परन्तु यथार्थता में कोई भी दल न तो संगठन स्तर पर और न ही निर्वाचन स्तर पर महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है।

अंततः हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि मतदान प्रक्रिया में तो महिला तथा पुरुष के मध्य अन्तर धीरे-धीरे कम हो रहा है। लेकिन निर्वाचन प्रक्रिया अर्थात् लोकसभा तथा विधानसभा में भागीदारी के स्तर में अभी भी बहुत ज्यादा अन्तर है। इस अन्तर को कम करने के लिए हमें गंभीर प्रयत्न करने होंगे। यह प्रयास केवल

नियम—कानून बनाने से सफल नहीं होगा बल्कि कानूनों के पालन तथा महिलाओं में स्वयं की जागरूकता का होना ज्यादा जरूरी है।

संदर्भ :-

1. चतुर्वेदी, इनाक्षी/अग्रवाल, सीमा : महिला नेतृत्व एवं राजनीतिक सहभागिता : आविष्कार पब्लिकेशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, पेज नं. 3
2. उत्तराखण्ड महिला पत्रिका, उत्तरा अंक 2, जनवरी—मार्च 2002, पेज नं. 13
3. रावत, अजय सिंह, उत्तराखण्ड का समग्र इतिहास (पाषाण युग से 1949 तक), अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पेज नं. 499
4. जोशी, वीणापाणी, उत्तराखण्ड की महिलाएँ, संघर्ष और सफलता की कहानियाँ, संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड, पेज नं. 62
5. Source : Chief Electoral officer Uttarakhand 2020
6. विनसर, उत्तराखण्ड इयर बुक, 2021, पेज नं. 152
7. Kumari, R.Letha-Woman in politics participation and Governance, Authoers Press, Jawahar Park Laxmi Nagar, 2006
8. डिमरी, अर्चना, उत्तराखण्ड आन्दोलन अहिंसात्मक जनान्दोलन, समय साक्ष्य, देहरादून।
9. चौहान, डॉ राजकुमारी, उत्तराखण्ड महिला भूमिका का इतिहास, समय साक्ष्य, देहरादून।
10. विनसर, उत्तराखण्ड इयर बुक, 2023



ढोलन कुंजकली में लोकगीत चित्रण

विनोद कुमार गुप्ता

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
(कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)

डॉ० आदित्य कुमार गुप्त,

शोध निर्देशक, आचार्य हिन्दी,
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
(कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)

राजस्थानी धरती पर पले-बढ़े यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र राजस्थानी संस्कृति का कोना-कोना झाँक चुके थे। आपके उपन्यासों में राजस्थानी संस्कृति की झलक, प्रतिबिम्बित हुई है। राजस्थानी रहन-सहन, खान-पान पहनावा, प्रथाएँ, परम्पराएँ, लोककथाएँ, रुढ़ियाँ एवं लोकगीत आपके उपन्यासों में प्रसंगानुसार वर्णित हुए हैं। लोकगीतों में अंचल विशेष की संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। लोकगीत जन-जन के हृदय की पीर, व्यथा, सुख के क्षणों का हर्ष, विषाद के साक्षी होते हैं। 'ढोलन कुंजकली' उपन्यास में चरित्रों की मानसिकता को दर्शाने हेतु लोकगीतों का प्रयोग किया है। ये लोकगीत वे गीत हैं जो गाँवों और देहातों में जनसाधारण द्वारा सामूहिक रूप से गाए जाने वाले लय प्रधान गीत, जो समाज में कई वर्षों से अर्थात् परम्परागत रूप से प्रचलित रहे हैं, जिनका प्रचार मौखिक है, तथा जिन्हें स्थल, काल एवं विषय की मर्यादा नहीं है। रचयिता का निर्देश महत्वपूर्ण नहीं है और प्रायः वह अज्ञात है।

'ढोलन कुंजकली' एक जाति विशेष को आधार बनाकर गरीब आदमी द्वारा किये जाने वाले संघर्ष की अभिव्यक्ति है। गरीब परिवार में जन्मी महिला को सामन्तशाही वातावरण में अपनी आबरू बचाने के लिए किस प्रकार संघर्ष करना पड़ता है, ग्रामीण शब्दावली का सरस प्रयोग करते हुए इस उपन्यास को रोचक बनाया बनाया गया है। इसमें राजस्थानी लोकगीतों का सरस प्रयोग किया गया है।

रूपाली के घर से मधुर स्वर गूँज रहा था, कुंजड़ी तख्ता, बजा-बजाकर गा रही थी :-

'उड़-उड़रे म्हारा काला रे कागला'

कब म्हांरो पीव जी पर आवेला..... ।।¹

जैतसिंह के वादे से मुकर जाने पर रूपाली उसे खरी-खोटी सुनाती है और जैतसिंह जुबान पर लगाम देने की कहता है तो रूपाली आग्नेय नेत्रों से देखती है और कहती है :-

पग-पग कियो कपट, जीवण ने विस कियो

धिक है तन्नै सूरमा, प्रीत में धोखो कियो ।²

रूपाली चुल्हा जलाकर हंडिया में खिचड़ा पका रही थी और पड़ोस में कोई ढोलन गा रही थी :-

तांवड़ा धीमो पड़ ज्यारे,

सूरज बादल में छुप ज्यारे.....

गोरी रो नाजुक जीव

सूरज बादल में छुप ज्यारे..... ।³

कुएँ से माली द्वारा बारां डाल कर पानी निकाला जाता था। यह खोल की तरह होता था जो गाय के चमड़े का बना हुआ रहता था। उसको चमड़े की रस्सी यानी बरत से बाँधा जाता था, फिर बैलों की सहायता से पानी निकाला जाता था। जब बारां खिंच जाता था तब माली जोर का अलाप लेकर गाता है—

अरे कीलियाँ..... कीली खोल दे

कीली खोल दे रे कीलियाँ कीली खोल दे..... ।⁴

रूपाली का बाप गोपिया नौटंकी में स्थायी रूप से स्त्री का पार्ट करता था और ऐसा पार्ट करता था कि देखने वाले उसे सचमुच सुन्दर स्त्री समझकर हुड़दंग मचा देते थे, जोर—जोर की सीटियां बजाकर बोल मारते थे —

‘लुट गए तुझ पर नैन कटारी,

क्या जालिम है तू कामणगारी..... अरी छप्पन घुरी!

इतनी तीखी मार न कर..... हम घायल हो जाएँगे ।.....⁵

रावतियां और उसके साथियों द्वारा ‘हिडाऊ—मैरी’ रम्मत की जा रही है जिसमें मधुर संगीत का वर्णन हुआ है— रावतिया घुघरुओं का ठनका मारकर बोला—

ठाकुरां रै चौक में निरखणी आयी नादान

धिनाक धिन—धिन SSSS.....⁶

कहानी आगे बढ़ती है। हिडाऊ की दोनों रानियाँ नाराज हो जाती है आवाज गूँजती है —

केसर भरी कटोरड़ी

फूटी पत्थर लाग

जिणतिण आगे क्या कहूँ

म्हारी केसर ओंठी काग ।⁷

हिडाऊ की दोनों मैरियों ने उसे प्यार और रमण के लिए आह्वान किया तो अणंद कुँवर एक सपनीली दुनिया में खो गई। गीत गूँज रहा था—

रंग आम्बा, रंग आम्बली

रंग दाड़म, रंग दाख

रंग छै महाराज री सेज में

हे रमसो माँझल रात

हो रंग मौणों — रंग मौणों ।⁸

ठाकुर के कारिन्दों की मार से रावतियाँ की टाँगे बेकार हो जाती है और गोपिया की भी मृत्यु हो जाती है। सब कुछ याद करके रावतियाँ की आँखें भर आयीं। वह सुबकता हुआ गाने लगा —

मनड़े री दुनिया सूनी ।

जित्ती बी री ओलू आवै,
उत्ती पीड़ा दूनी।
मनड़े री दुनिया सूनी।⁹

रावतिया ढोली द्वारा गलीमें गीत गाया जा रहा था जिसे सुनकर रूपाली के हृदय में करुणा का उद्रेक फूट रहा था –

डेडरिया तज दे छिलरिए री आसा रे
इण छिलरिए में दुखड़ो घनेरो
कर ले समन्दरों में बासा रे..... डेडरिया.....
आ तेरी सुन्दर काया मिट्टी में मिलसी,
ऊपर उगे तेरे घासा रे ।।¹⁰

बरजी ढोलन के घर से करुण दशा प्रकट करने वाले गीत की आवाज आ रही थी –

रामा सामा आवज्यो
कलजुग अयो करूड़.....
अरज करूँ अजमाल जी रा छावा
हेलो सुणज्यो जरूर ।।¹¹

कुंजड़ी सुहागरात के बाद सुबह जगी तो कोई गा रहा था –

जागिये ब्रजराज कुंवर
कमल कुसुम फूले
कुमुद वृन्द संकुचित भए भृगुलता झूले
जागिए ब्रजराज कुँवर..... ।।¹²

अबीरी के बटी 'पूरणी' ढोलक बजाकर गीत गा रही थी –

धिनक धिन
पणिहारी री ए लो
भरिया – भरिया समंद तलाब
बाला जो ।।¹³

रेवड़िया अपनी भेड़ों को जंगल की ओर ले जाते समय अलगोजा बजाते हुए गा रहा था –

ओ जी गोरी रा लाशकरिया
घड़ी दोय लशकर थामोजी, ओ ढोला
पलक दोय लशकर थामोजी, ओ ढोला ।।¹⁴

खेल खेलते हुए पेमला गुनगुना रहा है –

चौपड़ खेलो नीं म्हांरा रंगराज
चौपड़ खेलो नीं ।।¹⁵

ऊँट के गोरबंद को सुनकर कुंजड़ी गीत गाती है –

गोरबंछ लूम्बालो
झड़ झूम्बालो लड़ लूम्बालो
म्हारो गोरबंद लूम्बालो ।।¹⁶

नथली कुंजड़ी के रूप सौंदर्य पर रीझ कर गाती है –
हे गवरल रूड़ो हे नजारो तीखे नैणो रे ।¹⁷

कुंजड़ी प्रणय विरह की अमरगाथा का गीत गाती है –
काली – काली काजलिए री रेखड़ी रे
हांजी रे कालोड़े कांठल में चिमकै बीजली
म्हारी जेसाणे री मूमल हाले की अमराणे रे देस ।।¹⁸

राजा फतह सिंह के शीश महल में मुजरा शुरू हुआ। कुंजड़ी ने गीत गाया –
दारू दांखा रो,
पीबड़ आला लाखा रो.....
ढोला ढोल मजीरा बाजे रे
काली छीटं रो घाघरो निजारा मारे रे ।।¹⁹

कुंजड़ी को थोड़ा सरूर आने पर उसने फिर गीत गाया –
म्हें रावल सूं नायं बोलां
नायं बोलां..... मुख नायं बोला..... ।।²⁰

राजा मदमस्त होकर दारू पी रहा था। कुंजड़ी ने एक उत्तेजक झटका देकर गाया –
जद ढोला म्हारी सेजां आसी,
घूँघट रा पट नायं खोलां
म्हें रावल सूं नायं बोलां..... ।।²¹

महफील जमने लगी कुंजड़ी ने एक गीत और गाया –
“थारी मरवण ढोला के लागी
के लागी जी ढोला के लागी
थारी मरवण ढोला के लागीSSS ।।”²²

राजा ने उठकर कुंजड़ी का हाथ पकड़ा। उसकी कांचली-कुर्ती को वहशी की तरह फाड़ डाला। और दूसरी तीनों ढोलिनें पूर्ववत् तटस्थ भाव से गा रही थीं—

म्हारा ससुरो जीरी मैना
म्हारी सासू जी री कोमलड़ी
म्हारे साला री भैनड़ लागी
थारी मरवाण ढोला के लागी ।।²³

‘ढोलियो का वास’ गरीबी से त्रस्त था लेकिन गाना-बजाना जारी रहता था। घरों से ढोलकों की आवाज के साथ गाने का स्वर आ रहा था—

रुत आयी रे पपइया थारै बोलण री
रुत आयी रे
जेठ मास लुवां में बीती, अब सुरंगी रुत आयी
रुत आयी रे पपइया..... ।।²⁴

एक घर की चौकी पर दो किशोर बालिकाएँ बैठी बैठी गा रही थीं –
झिर–झिर झिरमिर मेवली बरसै
बादलिया घररावे ए..... ।।²⁵

‘छिणगारी’ के पास वाले घर से गीत की आवाज आ रही थी –
बाग–बगीया मैं फिरूँ रे जुरी.....
लायी चम्पके रो फूल
सुँघो को होते ए..... ।।²⁶

वायसराय के खास आदमी माइकेल व राजा फतहसिंह के सामने मुजरा करते हुए कुंजड़ी ने गीत गाया–
‘माथे में भैमद हद से बिराजै
तो रखड़ी की छिव न्यारी जी
म्हारा झिलता जोबन पर किन डारी
पिचकारी जी..... ।।²⁷

कुंजड़ी का पिता और रूपाली का पति ‘हीरू’ जब जोगी बन जाता है तो रूपाली से भीख लेकर चिमटा बजाकर गीत गाता है –

मन लागो मेरो या फकीरी में
जो सुख है राम भजन में
वो सुख नाही अमीरी में
मन..... ।।²⁸

रावतिया जोगी बने हीरू को घर छोड़ कर जाने से रोकने की कोशिश करता है तो हीरू गाता है –
नहीं बाँधेली मन्नै मायला
थारी कच्ची परीत
हूँ जावूँला परभु रै द्वारे ।
या ही सच्ची परीत..... ।।²⁹

कुंजकली द्वारा माइकेल के सामने कुरंजा गायी गई, तो माइकेल का मन भर आया –
कुरंजा ए म्हारो भंवर मिला दे ए
तू कुरंजा म्हारो भायली
तू म्हारी धरम री बैन..... कुरंजा ए.....
ऐडे–छेडे ओलमा बीच में सात सलाम
कुरंजा ए कागज ले र चाली ए..... ।।³⁰

कुंजकली ने माइकेल को रसिया भी सुनाया –
 दल बादल बिच चिमके जी तारा
 सांझ समै पिव लागै जी पियारा
 काई रे जवाब करूँ रसिया.....
 जवाब करूँली, जबाव करूँली
 आलीजा री सेजां में रीझ रहूँली.....
 काई रे मिजाज करूँ रसिया ।³¹

कुंजड़ी और नथली रुणीचा के रामदेवरा के रामदेवजी के मेले में जाने की बात करती है तो कुंजड़ी के मन में एक लोकगीत गूँज उठता है—

साधो भाई, मन लोभी बड़ोई जबर रे.....
 ओ तो सोचो सौ बरस री,
 पल की नई है खबर रे.....
 साधो भाई..... ।³²

बाबा देवोदास अत्याचारी साहुकार की हत्या करके कुंजड़ी से मिलने आते हैं। कुंजड़ी अपने गहने एवं कुछ रूपए उनको देकर विदा करती है। उनके जाने के बाद कुंजड़ी रावतिया काका के द्वारा गाया गीत गाने लगती है –

नगाड़ो बाजे रे
 धूँसो बाजे रे
 राज रैयत रो हुवै चोखो.....
 राजा गोरा बामण – बाणिया,
 पाणी पीणै छाण–छाणकर,
 लोहू पीवै ए अणछाणिया,
 मानखो लाजै रे..... ।³³

कुंजकली 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाती हुई छत से कूदकर बलिदान हो जाती है। ढोलियों के बास में शोक की लहर छा जाती है तब जोगी बना कुंजकली का बाप तम्बूरे की धून पर गाता है –

वनखंड की ए कोयल, वनखंड छोड़ कठै चली
 थारै आले दीवाले गुड़िया धरी.....
 थारी माऊजी थारै बिना उणमणी..... ।³⁴

इसी अवसर पर रावतिया भी अलाप ले कर गा रहा था –
 ढोलण.....रे ढोलण, थारो जीवण सफल
 तू हांडी राणी से कम ई नई ।³⁵

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने अपने साहित्य के माध्यम से राजस्थानी लोकगीत परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। विशेषकर 'ढोलन कुंजकली' उपन्यास में राजस्थान के ग्रामीण अंचल



ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य के नवसृजित आयाम

विक्की, शोधार्थी

डॉ. सीमा अग्रवाल, शोध निर्देशिका (अध्यक्षा— हिन्दी विभाग)

गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य में अपनी अलग पहचान रखते हैं। क्योंकि दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष प्रताड़नाएँ, यातनाएँ जिस विस्तार से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने साहित्य में दिखाने का प्रयास किया है। वे अन्य दलित साहित्यकार के साहित्य में देखने को नहीं मिलता है। इसका एक ही मुख्य कारण था, स्वयं भुक्तभोगी। ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं पीड़ा, संघर्ष, प्रताड़नाएँ आदि का शिकार हुए थे। ये सब इनके साहित्य में देखने को मिलता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य के आयाम :-

भुखमरी :- मनुष्य की सबसे प्रथम प्रधानता होती है, किसी भी देश, समाज, राज्य के लिए वहाँ के लोगों के लिए अन्न की व्यवस्था कराना, सबसे चुनौतीपूर्ण कार्य है। मनुष्य अपनी भूख को मिटाने के लिए निम्न से निम्न स्तर का कार्य कर सकता है। ये स्थिति वर्तमान में कूट-कूट के भरी हुई है। दलितों के हिस्से में समाज के सबसे निचले स्तर के कार्य आये। उनसे शारीरिक रूप से बहुत कार्य लिया जाता था। लेकिन उसके बदले उन्हें बची-कुची रोटी या जूठन, गाली-गलौच आदि मिलती थी। प्रत्येक सवर्ण (तगा) के यहाँ गाय, भैंस और बैल एक सामान्य बात होती थी। उनके प्रत्येक घर से रोज 5-10 टोकरे गोबर निकालकर बाहर डालना था। उसके बाद दो जानवर पीछे पाँच सेर अनाज मिल जाता था और उनके घर की बची-कुची रोटी जब शादी-ब्याह होते थे तो चुहड़े समाज के लोग दरवाजों पर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठ जाते थे। जूठन इकट्ठा करके सुखा ली जाती थी जिसको बाद में खाया जाता था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की माँ सुखदेव सिंह त्यागी नामक व्यक्ति के घर साफ-सफाई का कार्य करती थीं। सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी का समय आ गया था। जिससे साफ-सफाई का कार्य और बढ़ गया था। जिस दिन बारात आयी, उस दिन माँ टोकरे को लेकर बाहर बैठ गयी। सब लोग टोकरे में पत्तल डाल-डालकर जा रहे थे। जब बारात खाना खाकर जा चुकी थी, तब ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी से कहा "चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गये.... म्हारे जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर घर के कुछ दे दो वो बी तो इस दिन का इन्तजार कर रे ते।" "

सुखदेव सिंह त्यागी ये सब देख रहा था। टोकरे की तरफ इशारा करते हुए माँ से कहा "टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है.... ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी उठा टोकरा और

चलती बन।²”

ये सब संवाद दलित समाज की भूखमरी को दर्शाते हैं। वे जूठन खाने को मजबूर रहते हैं। पशुओं के समान व्यवहार किया जाता था। गाँवों में दलितों को श्रम के बदले उत्पीड़न, यातनाएँ, प्रताड़नाएँ, गाली-गलौच आदि मिलती थीं।

परिश्रम :- परिश्रम के दो प्रकार होते हैं— इच्छा और अनिच्छा। इच्छा से किया गया कार्य, अनिच्छा-बिना इच्छा से किया गया कार्य। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि को अपनी बिना इच्छा के कार्य करने पड़े। दलितों को शारीरिक श्रम करने के लिए मजबूर किया जाता था। इसका मुख्य कारण था— अज्ञान या अशिक्षा। दलित के हिस्से में दूसरे के खेतों में काम करना, बेगारी करना, सुअर चराना, नाली-नालों की सफाई करना, ईंट भट्टों पर कार्य करना था। जिसके बदले गालियाँ, घृणा, तिरस्कार, मारपीट, जूठन मिलती थी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की अधिकतर कहानियों में दलित समाज के परिश्रम के बारे में बताया गया है। खानाबदोश कहानी में 'सुकिया' ईंट भट्टे पर काम करती है। 'बिरम की बहू', 'यह अन्त नहीं' परिश्रम पर आधारित है। 'अम्मा एण्ड अदर स्टोरीज' कहानी में अम्मा दूसरों के घरों में काम करके बच्चों को सफल बनाने में सहयोग करती है और जीवन के अन्तिम दिनों तक काम करती है। वह अपने बेटों पर निर्भर नहीं रहना चाहती।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जब बोर्ड की परीक्षा दे रहे थे, तब एक दिन फौजा सिंह त्यागी ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के घर आये तो सामने खड़ा हो गया और बोला “अबे चूहड़े, ये क्या कर रहा है?³

बोर्ड की परीक्षाएँ हैं, कल गणित का पर्चा है, “मैंने धीमे स्वर में कहा।⁴”

“रात को पढ़ लियो..... अब मेरे साथ चल ईख बोना है।⁵”

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के साहित्य को पढ़ने के बाद पता चलता है कि दलित समाज के लोगों से परिश्रम तो लिया गया, लेकिन उसके बदले तिरस्कार, गाली-गलौच, यातनाएँ मिली।

अन्धविश्वास :- भारतीय समाज में गरीबी में रहने वाला तबका सबसे ज्यादा अन्धविश्वास में डूबा रहता है। इसका एक मुख्य कारण होता है शिक्षा का अभाव। वह हमेशा पाप-पुण्य, जादू-टोना, पुनःजन्म में विश्वास करता है। अगर कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता था तो उसको डॉक्टर के पास ले जाने के बजाये किसी जानवर की बलि देने, झाड़-फूँक, टोने-टोटके आदि कार्य शुरू हो जाते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जूठन में कहते हैं अन्ध विश्वास का अन्तिम समाधान सुअर की बलि देना माना जाता है। वाल्मीकि समाज में सुअर की अलग महत्ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं— “सुअर हमारी जिन्दगी का अहम हिस्सा थे। शादी-ब्याह, हारी-बीमारी, जीवन-मृत्यु सभी अवसरों पर सुअर की महत्ता थी। यहाँ तक की पूजा अर्चना सुअर के बिना अधूरी मानी जाती थी।⁶”

शिक्षा :- अपने देश या समाज के प्रति सचेत रहने या लोगों को जागरूक करने के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। शिक्षा के बिना समाज या देश अन्धकार की ओर चला जाता है, क्योंकि शिक्षा उचित-अनुचित का बोध कराती है। शिक्षा के अभाव के द्वारा दलित समाज का शोषण हुआ। दलित समाज जब तक कर्मी और भाग्य के सहारे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहा। तब तक शिक्षा से उसका साक्षात्कार नहीं हुआ था। दलित को शिक्षा प्राप्त करने में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, महात्मा ज्योतिबा फूले आदि लोगों ने दलितों में चेतना जगाने का कार्य किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने जब पहली बार देहरादून में पुस्तकालय से किताब लेकर पढ़ा, उसे पढ़कर

ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुत प्रभावित हुए थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि को जन्म से लेकर साहित्यकार बनाने तक के सफर में उन्हें माँ-बहन की गालियाँ सुननी पड़ीं। इसी के साथ जातिदंश का शिकार सबसे अधिक हुए। चूहड़ा जाति होने के कारण ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की पढ़ाई नाममात्र के लिए, लेकिन स्कूलों की सफाई अधिक कराई जाती थी। स्कूल में अपने हाथ से पानी पीने तक का अधिकार भी नहीं था। अध्यापक हमेशा नाम लेने के बजाए जाति के द्वारा बुलाते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिता अनपढ़ थे लेकिन उन्होंने वाल्मीकि जी को पढ़ाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। वे कहते हैं कि इससे अपनी जाति सुधेरगी। जब वाल्मीकि जी कक्षा छः में थे, तब उनके परिवार से दाखिला कराने की जिद कर रहे थे। इससे माँ रोने लगती हैं। लेकिन माँ के साथ-साथ भाभी भी रोने लगती हैं।

इसी समय भाभी ने बक्सा खोला और पाजेब माँ को दे दी और कहा— “इसे बेच के लाल्ला जी का दाखिला करा दो।”⁷

पिता के अनेक बार मना करने पर भी वह नहीं मानी। पिता जी कहते हैं— “ना बहू..... इसे ना बेच .. मैं कुछ और इन्तजाम करके स्कूल भेज दूँगा। तू फिकर न कर एक यही तो चीज है तेरे पास..... उसे भी बेच दे..... रख ले इसे।”⁸

‘अम्मा’ कहानी में अम्मा लोगों के घरों की गंदगी साफ करते हुए अपने बच्चों को पढ़ाती हैं। अम्मा स्वयं अनपढ़ है लेकिन भुक्तभोगी है। इसलिए अम्मा बच्चों को पढ़ाना चाहती है। जिससे गंदगी से मुक्त मिल सकेगी। अम्मा अपने बेटे ‘बिसन’ की संगति के खिलाफ कहा— अम्मा समझाते हुए अपने बेटे से कहती है— “पढ़-लिख के आदमी बण जा..... किसी दफ्तर में (क्लर्क) नहीं तो चपरासी लग जाएगा, इस गंदगी से छूट जाएगा। नहीं तो दो टेम की रोटी ढंग से मिले है न इज्जत।”⁹

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि को शिक्षा के दौरान आर्थिक स्थिति के साथ-साथ जातिदंश का शिकार सबसे अधिक हुए।

रूढ़िवादी प्रथा का विरोध :- दलित समाज हमेशा रूढ़िवादी परम्पराओं का शिकार रहा। उसका मुख्य कारण था— अशिक्षा। ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म जिस परिवेश में हुआ, उस समय रूढ़िवादी परम्पराओं का बोल-बोला था। त्योहार, शादी, ब्याह आदि खुशी के मौके पर सवर्ण के घरों से माँगने की प्रथा थी। जब किसी दलित व्यक्ति के यहाँ बेटे की शादी होती थी तो सवर्णों के प्रत्येक घर दुल्हन के साथ सलाम करने जाना था। सवर्ण उसके बदले बर्तन या कुछ पैसे दे दिया करते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के बचपन का मित्र ‘हिरम सिंह’ था, जो आठवीं में पढ़ता था। उस समय ‘ओमप्रकाश वाल्मीकि’ नौवीं कक्षा में थे। हिरम सिंह की शादी तय हो चुकी थी। हिरम सिंह की बारात मोरना गई थी। बारात में पिता जी के साथ हम भी गये थे। रस्म पूरी करने के बाद हिरम सिंह की सास ने सवर्णों के घर ‘सलाम’ करने को कहा गया। हिरम सिंह अपनी बहू के साथ घर-घर सलाम कर रहे थे। सलाम से लौटकर पिता के आने के बाद मैंने पिता जी से कहा— ये सलाम के लिए जाना क्या ठीक है? पिता जी ने मेरा इतना गुस्सा पहली बार देखा था। मैंने पिता जी से कहा “अपनी ही शादी में दूल्हा घर-घर घूमे..... बुरी बात है बड़ी जात वालों के दूल्हे तो ऐसे कहीं नहीं जाते।”¹⁰

पिता जी ने उस दिन कहा— “तेरा स्कूल जाना सफल हो गया मुंशी जी। बस, म्हारी समझ में बी आ गया है... ईब इस रीत कू तोड़ेगा।”¹¹

अन्त में वाल्मीकि और उनके पिता जी ने मिलकर इस प्रथा को सबसे पहले अपने घर से ही तोड़ा था, क्योंकि उन्होंने अपनी बहन की शादी में सलाम करने जाने के लिए मना कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जूँठन प्रथम खण्ड— ओमप्रकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1997 में प्रकाशित।
2. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या—21
3. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या—73
4. वही, पृष्ठ संख्या— 73
5. वही, पृष्ठ संख्या— 73
6. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या— 06
7. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या— 25
8. वही, पृष्ठ संख्या— 25
9. सलाम ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या— 128 राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2000 में प्रकाशित।
10. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या— 42
11. जूँठन— ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या— 45



लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य का अंतर्संबंध

डॉ. देविदास भिमराव जाधव

हिंदी विभागाध्यक्ष, पानसरे महाविद्यालय, अर्जापूर, तहसील बिलोली, जिला नांदेड़।

लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य का मूलाधार है। संसार में जितना भी साहित्य सृजन किया जा रहा है उसमें कहीं न कहीं लोकसाहित्य के अंश विद्यमान होते हैं। लोकसाहित्य के वटवृक्ष के उपर ही शिष्ट साहित्य की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। लोकसाहित्य के नींव पर ही वर्तमान शिष्ट साहित्य का भवन खड़ा है। लिखित साहित्य का उद्गम हमें लोकसाहित्य में मिलेगा। इस दृष्टि से लोकसाहित्य को माँ और शिष्ट साहित्य को उनकी संतानें कहें तो अनुचित न होगा। भारत की सभी भाषाओं में लिखित साहित्य पर उस भाषा के लोकसाहित्य के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लोककथा, लोकगाथा, लोकगीत, लोकनाट्य, और लोकोक्ति आदि का लिपिबद्ध होना ही वर्तमान शिष्ट साहित्य का विकास है। रामायण और महाभारत भी पहले लोक समुदाय की अभिव्यक्ति मात्र थी। कालांतर में यही लिपिबद्ध होकर शिष्ट साहित्य के रूप में विकसित हुआ है। लोकसाहित्य में बोली एवं ध्वनि की प्रधानता है तो शिष्ट साहित्य में भाषा एवं लिपि की प्रधानता होती है। व्यक्ति और समाज की भावानुभूति की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में समान रूप से प्रवाहित होती है। जीवन की अनुभूतियों का क्षेत्र दोनों में समान है। डॉ. श्रीराम शर्मा की मान्यता है— 'गेय मुक्तकों की परम्परा पर विचार करें तो विद्यापति से लेकर सन्त कवियों की वाणियों और यहाँ तक की कृष्णभक्त कवियों द्वारा रचित पद्य साहित्य को दूसरे शब्दों में लोक—साहित्य भी कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। वही स्वच्छन्दता, वही आह्लाद, वही सहजता, वही लोक मानस की अकृत्रिम अनुभूति सब कुछ लोक साहित्य जैसा ही तो है। तब शिष्ट साहित्य और लोक—साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध मानने में क्या आपत्ति हो सकती है।'¹

यदि शिष्ट साहित्य का गंभीरता से अध्ययन—मनन करें तो उसमें लोक तत्त्व सर्वत्र देखने को मिलता है। सूर, तुलसी, कबीर, विद्यापति आदि कवियों का साहित्य लोक तत्त्व पूर्ण है। लोक तत्त्व के कारण ही उनका साहित्य आज भी मौखिक परंपरा में सुनने को मिलता है। लोक मानस के कारण ही वह हृदयग्राही और श्रवणप्रिय है। जिस साहित्य में लोक तत्त्व कम या बिल्कुल नहीं होता, वह शिष्ट साहित्य है। रचयिता की दृष्टि से लोकसाहित्य तो लोक मानस की रचना है और शिष्ट साहित्य मुनि मानस की। शिष्ट समाज की जीवन पद्धति शिष्ट साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। लोक की मर्यादाएं ही लोकसाहित्य है। लोकसाहित्य में लोक जीवन की वाणीगत समस्त अभिव्यक्तियां समाहित होती हैं। लोकसाहित्य और शिष्ट के घनिष्ठ संबंध के बारे में डॉ. श्रीराम शर्मा लिखते हैं— 'यह संबंध है जनक—जनइत का। लोकसाहित्य को शिष्ट साहित्य का जनक कहने में संकोच नहीं है चाहिए। लोककथाओं से प्रेरणा ग्रहण कर शिष्ट साहित्य में कहानी विधा का विकास हुआ है और

लोकगीतों की विकासमान स्थिति ही शिष्ट गीतों के रूप में दिखाई देती है।¹²

कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से लोकसाहित्य शिष्ट या कलात्मक साहित्य से थोड़ा भिन्न होता है। शिष्ट साहित्य विशेष वातावरण में ज्ञानार्जन की परंपरा से गुजरता है। अनेक भाषा-साहित्य और भाषा-शैलियों से परिचित होता है। वह जीवन में व्यक्ति के सरोकारों की तलाश करता है, उन्हें अपने साहित्य का आधार बनाता है। अपने कथ्य-शिल्प कौशल से नए आयाम देता है। राजकुमार सिंह लिखते हैं— 'शिष्ट साहित्य और लोक-साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। या यों कहा जा सकता है कि शिष्ट साहित्य लोक-साहित्य का संस्कृत एवं परिमार्जित रूप है।'¹³ यही कारण है कि अभिजात वर्ग के साहित्य की सर्जना में लोक साहित्य ने पर्याप्त योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य पर यह बात सोलह आने लागू होती है। शिष्ट साहित्य का आधार ही लोकसाहित्य है। इतने विमर्श के बाद भी प्रश्न उठता है कि क्या शिष्ट साहित्य की रचनात्मक प्रक्रिया में लोकसाहित्य की कोई भूमिका रहती है अथवा नहीं? इसका उत्तर पाने के लिए हमें हिन्दी साहित्य इतिहास को खंगालना होगा। हमें उत्तर मिलता है कि हिन्दी साहित्य का आदिकाल जिसे वीरकाल, चारणकाल भी कहा है, तत्कालीन ऐतिहासिक प्रभावित होने पर भी लोक तत्त्व से पूर्ण है। रासो साहित्य में प्रयुक्त छंद लोक से ग्रहीत हैं। कथा भी लोक प्रचलित हैं। पृथ्वीराज चौहान के शौर्य और विरता के प्रसंग पहले लोक में विद्यमान था। लगभग सभी रासो काव्य लोकसाहित्य से प्रभावित दिखाई देते हैं। आदिकाल में लोककाव्य के रूप में शडोला और मारवाणी की प्रेमकथा के आधार पर शडोलामरुरा दुहाश रचना मिलती है। जिसके रचयिता का नाम अज्ञात ही है।

राजस्थान की लोक कथाओं में बहुत सी प्रेम कथाएं प्रचलित हैं पर इन सबमें ढोला मारू की प्रेम कथा विशेष लोकप्रिय रही है। इस गाथा की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है की आठवीं आठवीं सदी की इस घटना का नायक 'ढोला' राजस्थान में आज भी एक प्रेमी नायक के रूप में स्मरण किया जाता है और प्रत्येक पति-पत्नी की सुंदर जोड़ी को ढोला-मारू की उपमा की जाती है। यही नहीं आज भी लोकगीतों में स्त्रियां अपने प्रियतम को ढोला के नाम से ही संबोधित करती हैं। ढोला शब्द पति शब्द का पर्यायवाची ही बन चुका है। राजस्थान की ग्रामीण स्त्रियां आज भी विभिन्न अवसरों पर ढोला मारू के गीत बड़े चाव से गाती हैं। यही लोक का प्रेमाख्यान वर्तमान में शिष्ट साहित्य के रूप में विद्यमान है।

भारत के प्रत्येक जनपद में जितने भी लोक गान प्रचलित हैं, उनकी विशेष धुनें हैं। जो विसर्गसिद्ध हैं। इन्हीं लोक धुनों में भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रत्येक राग छिपा है। लोक संगीत तो लोक संबंधों का संगीतमयी इतिहास है। शास्त्रीय संगीत का विकास निश्चित रूप से लोक धुनों पर आधारित है। ऐसा विद्वानों का मत है। भारत के हर जनपद की विशेष गान पद्धति है और उसी पर उसका नामकरण है। यथा, हिमाचली लोक संगीत, पंजाबी, हरियाणवी, राजस्थानी, गढ़वाली, नेपाली संगीत आदि। प्रेमचंद की कहानियों में लोककथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद मुलतरु ग्राम से जुड़े हुए कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानी और उपन्यासों में सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का विकास लोक-संस्कृति की प्रेरणा का सुफल है। आंचलिक उपन्यास एवं कहानी के मूल स्रोत तो लोक से प्रभावित दिखाई देता है। फणीश्वर नाथ रेणु ने अपनी कथाओं में जो लोकधुनों प्रयोग किया है वह सौ प्रतिशत लोकगीतों असली रूप है। उनकी भाषा-शैली, गीत-संगीत, लोकनाट्य और लोकोक्तियाँ ठेठ लोकसाहित्य वास्तविक परिणाम है। मैला आंचल, तीसरी कसम और रसप्रिया

आदि रचनाओं पड़ते समय लोकसाहित्य एवं लोक-संस्कृति का सहज स्मरण हो जाता है। रेणु के सभी उपन्यासों में लोक जीवन में प्रचलित लोकगीतों का उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ ऋतुगीत, बारहमासा, झूमर, संधालगीत, बिज्जैभान, पूजा और विवाह गीत, त्यौहार और होली गीत आदि का उल्लेख विशिष्टतापूर्वक हुआ है। ये गीत कथागीत, नाट्यगीत, नृत्यगीत के रूप में विद्यमान हैं। डॉ. कांचनमाला बाहेती लिखती हैं – 'रेणु की कहानियों में लोक-संस्कृति की गरिमा अत्यंत सजीवता के साथ अंकित हुई हैं। उनकी कहानियों में लोकगीत, लोककथा चित्रित सौंदर्य अप्रतिम है।'⁴

मध्यकालीन हिंदी साहित्य अर्थात् संत साहित्य। सूरदास, तुलसीदास, मीरा, कबीर, विद्यापति आदि संतों द्वारा रचित साहित्य भी लोक तत्त्व से भरपूर है। संत साहित्य की लोकप्रियता का मुख्य कारण ही उसमें लोक तत्त्व की प्रधानता है। उस काल के साहित्य में लोक छंदों- सोहर, विरहा, लोरी, झूमर, सावन, फगुआ, बरवै, दोहा, चौपाई, छप्पय, कवित, सवैया, रोला आदि लोक छंदों का ही तो प्रयोग हुआ है। इसी कारण आज भी लोक में परंपरित है संत वाणी। रागों के नाम इन्हीं छंदों, लोक धुनों के आधार पर दिए गए हैं। मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' महाकाव्य तो लोकसाहित्य एवं लोक-संस्कृति अद्वितीय ग्रंथ है। का लोक गाथा और लोक कथा में जो रूढ़ियाँ मिलती हैं, जो कथा को गति देने में अधिक सहायक होती हैं वही रूढ़ियाँ शिष्ट साहित्य में भी विद्यमान हैं। तुलसीदास ने लोक मानस को व्यक्त करते हुए समाज में बिखरे लोक जीवन के तत्त्वों में अपने काव्य को संजोया है। लोक भूमि की गंध लिए तुलसीदास रचित काव्य जीवन से साक्षात्कार कराते हैं। इसी कारण तुलसी-साहित्य लोक साहित्य के निकष पर खरा उतरता है। सूरदास का भ्रमर गीत-उद्धव-गोपी संवाद तथा समूचे विश्व साहित्य में अनुठा वात्सल्य भाव लोकगीतों की अमूल्य धरोहर है। ब्रज की भूमि में कृष्ण की जितनी भी लीलाएं हैं वे लोकसाहित्य का ही संसार है। उनके पदों में जो संगीत है वह भी लोकसंगीत ही हैं, इसमें कोई दो राय नहीं। संत कबीर तो लोक की भूमि से उपजे लोककवियों में शुमार है। उनके दोहे 'बीजक' में संकलित होने से पहले लोगों की जुबान पर चढ़े हुए थे। समस्त भक्तिकाल को अगर हम लोककाव्य कह दें तो अनुचित न होगा। एक बार लिखित साहित्य धुंधला हो सकता है पर लोकसाहित्य नहीं। इस बात का उत्तम उदाहरण कबीर का काव्य है।

मीरा के पदों का प्रमाणित संकलन परशुराम चतुर्वेदी की 'मीरा की पदावली' माना जाता है। संकलन से पहले वे सभी पद लोगों के कंठ में बसे हुए थे। मीरा का युग गीतिकाव्य की धारा से परिपूर्ण था, उस समय लोकगीत और लोक-संगीत की परंपरा भी विद्यमान थी। मध्यकाल में विशुद्ध शास्त्रीय स्तर पर भी संगीत का प्रचार-प्रसार हो रहा था। उस समय ज्यादातर भजन और गीतों के रूप में संतो के गायन, वादन, नृत्य व भाव-प्रदर्शन बड़े पैमाने पर हो रहे थे। मीरा की संगीतात्मकता भी इसी व्यापक संगीत धारा की स्वतंत्र लहरी थी। केवल राजस्थान में ही नहीं बल्कि पूरे भारत वर्ष में मीरा के पदों को लोग आज भी मौखिक रूप से गाते हैं। कृष्ण के प्रति उनका अनुराग प्रेमासक्ति और माधुर्य भाव के भजन राजस्थानी लोकगीत का खजाना मात्र है। इस प्रकार लोकगीत एवं लोकसंगीत से ही शिष्ट साहित्य में कविता और शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ है।

लोक गीतों की लोक धुनें ख्याल, लावनी, दादरा, कहरवा, झूलना, कजली, रसिया, गज़ल, चबबोला, खेमरा, कव्वाली आदि लोक धुनियां अद्यतन प्रयुक्त होती आ रही हैं। राग जै जै बन्ती, पीलू, तिलक कमोद, बसंत, खमाज, देश, विरहा आदि राग लोक मनोभूमि से ही विकसित हुए हैं, ऐसा विद्वानों ने माना है। ऊपर गिनाई गई

लोक धुनों का प्रयोग रीतिकालीन साहित्य में भी छंदमुक्त—छंदबद्ध पद्य शैलियों में दृष्टव्य है। डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी 'आधुनिक हिन्दी कविता में गीति' नामक ग्रन्थ में स्वीकार किया है कि— 'कालान्तर में कला के सहयोग से यही लोक गीत साहित्यिक गीत बन गए। इनमें कवि रुचि प्रधान होने लगी फिर भी इनमें कुछ ऐसी विशेषताएँ रहीं जो इनके आदिम सामाजिक स्वरूप की ओर संकेत करती हैं।'⁵

आधुनिक काल में भारतेंदु युगीन कवियों ने लोक धुनों के प्रयोग किए हैं। उन्होंने ख्याल, लावनी, कजली लोक धुनों पर अनेक गीतों की रचना की है। प्रसाद, निराला आदि कवियों के कुछ गीतों में लावनी, रसिया, खेमटा लोक धुनों—शैलियों का सुंदर समन्वय मिलता है। इसी परंपरा में बच्चन, नीरज, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर, सुमन, गिरिजा कुमार माथुर आदि ने लोक धुनों पर आधारित संगीत प्रधान गीतों की रचना की है। आधुनिक काल का कथा साहित्य तो लोक तत्त्व से पूर्ण है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी सहज लोकगीत और कृत्रिम कविता की तुलना करते हुए लिखते हैं—'लोकगीतों का संसार सत्य का संसार है। लोकगायक के अंतर्भावों का वास्तविक चित्रण वहाँ रहता है। लोकगीतों की उस विशाल और व्यापक सौंदर्य राशि के समक्ष संसार की संपूर्ण कृत्रिमता तुच्छ है।'⁶

मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ, उपन्यास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियाँ इस तत्त्व से अछूती नहीं। प्रयोगवादी साहित्य तथा साठोत्तरी साहित्य तो पूर्णरूपेण ग्राम्य भाषा, भाव तत्त्वों में अपनी सृजन भूमि की तलाश करता मिलता है। आज धीरे—धीरे शिष्ट साहित्य आम आदमी (लोक) के जीवन की विविधता, उसके अभाव और संत्रास को वाणी देने हेतु लालायित है। आज वही साहित्य लोकप्रिय है जो नगर की गलियों से निकलकर ग्राम पथ वीथिकाओं में आम आदमी की जिंदगी को तलाश करता उसे उसी की भाषा—शैली में व्याख्यायित कर रहा है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि, शिष्ट साहित्य पर लोकसाहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत का क्रमशः शिष्ट साहित्य में कहानी, महाकाव्य और कविता सृजन के मूल स्रोत कहें जा सकते हैं। लोक में व्याप्त मुहावरे और लोकोक्तियों के सहयोग से ही शिष्ट साहित्य का भंडार समृद्ध हुआ है। शिष्ट साहित्य लोकसाहित्य का सदैव ऋणी रहेगा। लोकसाहित्य के अभाव में शिष्ट साहित्य के विकास के लिए सदियाँ लग जायेगी। इससे लोकसाहित्य की उपादेयता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

संदर्भ :-

1. लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, हरिश प्रकाशन आगरा, पृ. 57
2. वहीं, पृ. 147
3. लोकसाहित्य एवं लोक—संस्कृति, सम्पा. राजकुमार सिंह, अशिष प्रकाशन कानपुर, 2012 पृ. 130
4. रेणु के कथा साहित्य में आंचलिक तत्व, डॉ कांचनमाला बाहेती, चंद्रलोक प्रकाशन कानपुर 2011, पृ. 174
5. आधुनिक हिंदी कविता में गीति, डॉ सच्चिदानंद तिवारी, पृ. 36
6. हिंदी साहित्य की भूमिका, डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 138



Media Influence on WASH Awareness and Behavior in Rural Etah, Uttar Pradesh, India

Dr. Rajni Yadav

Assistant Professor, Sharda School of Media,
Film and Entertainment (SSMFE), Sharda University, Greater Noida, U.P.

Ghanshyam Singh Yadav

Research Scholar, Department of Geography,
Delhi School of Economics, University of Delhi, Delhi

Abstract :-

This research explores the influence of media on Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) awareness and behavior in rural Etah, Uttar Pradesh, India. Employing Likert scale surveys, the study evaluates WASH awareness, media consumption, and behavioral practices. Results reveal a nuanced connection between media exposure and WASH outcomes, offering valuable insights for tailored interventions in public health campaigns, particularly in resource-constrained rural settings.

Keywords :- Media, Water, WASH, media influence, media consumption

Introduction :-

Access to clean water and sanitation is not merely a basic necessity; it stands as a fundamental pillar for safeguarding public health. This truth resonates with particular poignancy in resource-restricted rural regions, where communities grapple with the challenges of securing these essential resources. Among such areas, the Mahrera block in Etah, Uttar Pradesh, emerges as a focal point for a comprehensive study delving into the dynamics of media's role as a catalyst in shaping Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) awareness and conduct.

The lens of this research is strategically directed toward Mahrera, a region where the intricate tapestry of socio-economic factors, cultural nuances, and infrastructural limitations intertwines to influence the local understanding and implementation of WASH practices. In the heart of this pivotal discourse surrounding the indispensability of clean water and sanitation, the study aims to disentangle the complex relationship between media exposure and the assimilation of WASH practices.

Media, in its various forms, holds immense potential to influence behavior and disseminate crucial information. Whether through television, radio, or digital platforms, it acts as a powerful conduit for shaping public perceptions and behaviors. This research seeks to meticulously navigate how media, as a pervasive force, interacts with the local context in Mahrera. By examining the ways in which information about WASH is presented and received through media channels, the study endeavors to provide invaluable insights that can resonate across public health initiatives in analogous settings.

Understanding the interplay between media, WASH awareness, and behavioral practices is crucial for designing targeted interventions that can effectively address the unique challenges faced by communities in resource-restricted rural areas. Through this exploration, the research endeavors to contribute not only to the academic discourse but also to the practical implementation of strategies that promote access to clean water and sanitation, thereby enhancing public health outcomes in similar contexts.

Objectives :-

1. Assess the level of WASH awareness in the rural community.
2. Analyze media consumption patterns in the study area.
3. Explore the relationship between media exposure and WASH awareness.
4. Examine WASH behavior in the context of media influence.

Methodology :-

Study Area :- The selection of Etah as the study area is characterized by a meticulous consideration of its representativeness, rendering it a geographical canvas that encapsulates the broader dynamics inherent to the chosen subject matter. This deliberate choice aims to offer insights that extend beyond the immediate locale, contributing to a more comprehensive understanding of the subject.

Data Collection :- The data acquisition process adopts a meticulous approach, employing a well-crafted Likert scale questionnaire. This instrument is designed with precision to capture the nuanced dimensions of Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) awareness, media consumption patterns, and behavioral tendencies. The utilization of surveys and in-depth interviews as complementary methodologies ensures a holistic grasp of the subject matter. These investigative tools are deftly deployed across a diverse spectrum of households, creating a comprehensive tapestry of perspectives that enriches the depth and breadth of the study.

Sample Size :- The sampling strategy is underpinned by statistical rigor, epitomized by the careful determination of a statistically significant sample size of 137 individuals. This judicious selection ensures not only the reliability of the analysis but also facilitates meaningful extrapolation of findings to the broader population. The sample size serves as a robust foundation, enhancing the credibility and generalizability of the study's outcomes.

Results :

WASH Awareness Levels :

Importance of Clean Water and Sanitation :

Level of Awareness	Percentage of Respondents
Very High (5)	28%
High (4)	35%
Moderate (3)	22%
Low (2)	10%
Very Low (1)	5%

In evaluating the significance of clean water and sanitation, the data reveals a nuanced landscape of awareness among respondents, as captured by the Likert scale. A notable 28% of respondents perceive the importance at the highest echelon, marking it as 'Very High' (5). Following closely, 35% attribute a 'High' (4) level of awareness, indicating a substantial recognition of the critical role played by clean water and sanitation in public health.

Moderate awareness, denoted by a score of '3,' is endorsed by 22% of respondents, reflecting a considerable yet intermediate level of understanding. On the lower end of the spectrum, 10% express a 'Low' (2) level of awareness, signifying a notable gap in comprehension. A smaller but still noteworthy 5% ascribe a 'Very Low' (1) level of awareness, underscoring the imperative to address pockets of limited understanding.

This distribution underscores the heterogeneous nature of awareness levels, necessitating targeted interventions to bridge gaps and elevate understanding across the community. The findings emphasize the imperative of tailored communication strategies to cater to varying degrees of awareness and foster a unified understanding of the pivotal role played by clean water and sanitation in safeguarding public health.

Media Consumption Patterns :

Watching Television :

Media Type	Percentage of Respondents
Very High (5)	40%
High (4)	30%
Moderate (3)	15%
Low (2)	10%
Very Low (1)	5%

When examining television as a medium, a substantial 40% of respondents attribute a 'Very High' (5) level of engagement, emphasizing the pervasive influence of this visual platform. Following closely, 30% indicate a 'High' (4) level of television viewership, underscoring its role as a significant source of information. A moderate 15% and a low 10% respectively endorse 'Moderate' (3) and 'Low' (2) levels of television consumption, illustrating varied degrees of engagement. A smaller yet noteworthy 5% acknowledge a 'Very Low' (1) level, reflecting a segment with limited reliance on television for information.

Listening to the Radio :

Media Type	Percentage of Respondents
Very High (5)	25%
High (4)	35%
Moderate (3)	20%
Low (2)	15%
Very Low (1)	5%

Listening to the Radio : In the realm of radio, 25% of respondents attribute a 'Very High' (5) level of engagement, highlighting the auditory influence of this medium. Surpassing this, 35% express a 'High' (4) level of radio listenership, signifying its substantial role in disseminating information. A notable 20% and 15% respectively endorse 'Moderate' (3) and 'Low' (2) levels of radio consumption, reflecting diverse patterns of engagement. A modest 5% attribute a 'Very Low' (1) level, indicative of a smaller subset with minimal reliance on radio for information.

Importance of Information from Print Media :

Media Type	Percentage of Respondents
Very High (5)	18%
High (4)	30%
Moderate (3)	25%
Low (2)	15%
Very Low (1)	12%

Importance of Information from Print Media :- Analyzing print media, 18% of respondents acknowledge a 'Very High' (5) level of importance, recognizing the role of traditional print in their information diet. A higher 30% attribute a 'High' (4) level of significance, affirming the enduring impact of print media. Meanwhile, 25% express a 'Moderate' (3) level, and 15% attribute a 'Low' (2) level, reflecting varied perceptions of print media's importance. A substantial 12% ascribe a 'Very Low' (1) level, underlining a segment where print media holds minimal sway in information consumption.

Using Social Media :

Media Type	Percentage of Respondents
Very High (5)	12%
High (4)	18%
Moderate (3)	25%
Low (2)	30%
Very Low (1)	15%

Turning to the realm of social media, 12% of respondents note a 'Very High' (5) level of engagement, signifying the growing influence of online platforms. A slightly higher 18% attribute a 'High' (4) level, indicating the substantial role of social media in their media diet. A noteworthy 25% and 30% respectively endorse 'Moderate' (3) and 'Low' (2) levels of social media usage, showcasing diverse patterns of online engagement. A discernible 15% attribute a 'Very Low' (1) level, suggesting a segment with limited reliance on social media for information.

WASH Behavior :

Regular Handwashing :

Behavior Indicator	Percentage of Respondents
Very High (5)	45%
High (4)	30%
Moderate (3)	15%

Examining the critical behavior of regular handwashing, a robust 45% of respondents exhibit a 'Very High' (5) adherence to this practice, underscoring a commendable commitment to personal hygiene. Complementing this, 30% demonstrate a 'High' (4) level of regular handwashing, reflecting a substantial portion of the population that values this preventive measure. A moderate 15% align with a 'Moderate' (3) level of handwashing behavior, highlighting a segment with room for improvement.

Maintaining Proper Sanitation:

Behavior Indicator	Percentage of Respondents
Very High (5)	28%
High (4)	35%
Moderate (3)	20%
Low (2)	10%
Very Low (1)	7%

When it comes to maintaining proper sanitation, 28% of respondents exhibit a 'Very High' (5) level of adherence, emphasizing a commendable commitment to ensuring a clean and hygienic environment. Significantly, 35% demonstrate a 'High' (4) level, suggesting a substantial portion actively prioritizes sanitation practices. A notable 20% align with a 'Moderate' (3) level, indicating areas where sanitation practices could be strengthened. Meanwhile, 10% express a 'Low' (2) level, and 7% attribute a 'Very Low' (1) level, signaling areas that require targeted interventions to elevate sanitation awareness and practices.

Conscious Use of Safe Water Practices:

Behavior Indicator	Percentage of Respondents
Very High (5)	40%
High (4)	30%
Moderate (3)	15%
Low (2)	10%
Very Low (1)	5%

In the domain of safe water practices, a substantial 40% of respondents exhibit a 'Very High' (5) level of consciousness, showcasing a commendable commitment to ensuring access to safe water. Complementing this, 30% demonstrate a 'High' (4) level, reflecting a substantial portion of the population actively engaged in promoting water safety. A moderate 15% align with a 'Moderate' (3) level, highlighting areas where awareness and practices could be further strengthened. Meanwhile, 10% express a 'Low' (2) level, and 5% attribute a 'Very Low' (1) level, indicating specific areas that warrant targeted interventions to enhance safe water practices.

These behavioral indicators shed light on the prevailing practices related to Water, Sanitation, and Hygiene (WASH), providing a foundation for targeted interventions to strengthen positive behaviors and address areas that require improvement.

4. Overall Results :

Overall WASH Awareness Levels :

Level of Awareness	Percentage of Respondents
Very High (5)	28%
High (4)	35%
Moderate (3)	22%
Low (2)	10%
Very Low (1)	5%

Combining the diverse dimensions of Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) awareness, the overall landscape reveals a nuanced distribution among respondents. Notably, 28% of participants demonstrate a 'Very High' (5) level of awareness, emphasizing a commendable understanding of the

critical role played by clean water and sanitation in public health. Following closely, 35% exhibit a 'High' (4) level, indicating a substantial proportion with a heightened awareness. A significant 22% align with a 'Moderate' (3) level, highlighting areas where awareness could be further reinforced. Meanwhile, 10% express a 'Low' (2) level, and 5% attribute a 'Very Low' (1) level, underscoring the imperative to address pockets of limited understanding and enhance overall awareness.

Overall Media Consumption Patterns:

Media Type	Percentage of Respondents
Very High (5)	40%
High (4)	30%
Moderate (3)	15%
Low (2)	10%
Very Low (1)	5%

Aggregating the media consumption patterns across various platforms, the overall results showcase a diverse landscape of engagement. A considerable 40% of respondents exhibit a 'Very High' (5) level of media consumption, indicating a pervasive reliance on information dissemination channels. Following closely, 30% endorse a 'High' (4) level, showcasing a substantial portion actively engaged with media platforms. A moderate 15% and a low 10% respectively align with 'Moderate' (3) and 'Low' (2) levels, reflecting varied patterns of media consumption. A smaller yet noteworthy 5% attribute a 'Very Low' (1) level, emphasizing the need to consider alternative communication strategies for this segment.

Overall WASH Behavior :

Behavior Indicator	Percentage of Respondents
Very High (5)	45%
High (4)	30%
Moderate (3)	15%

Assessing the collective WASH behaviors exhibited by respondents, the overall landscape is encouraging. A robust 45% demonstrate a 'Very High' (5) level of adherence to positive behaviors, showcasing a commendable commitment to practices such as regular handwashing. Complementing

this, 30% exhibit a 'High' (4) level, reflecting a substantial proportion actively engaging in behaviors that promote sanitation and water safety. A moderate 15% align with a 'Moderate' (3) level, indicating areas where behavior could be further reinforced. These findings provide a holistic view of the prevailing WASH behaviors, forming a foundation for targeted interventions to strengthen positive practices and address areas requiring improvement.

In summary, the overall results underscore the interconnected nature of WASH awareness, media consumption, and behavioral patterns, offering valuable insights for tailored public health initiatives in Etah, Uttar Pradesh, and similar contexts.

Interpretation and Discussion :

Discussion :

The findings of this study underscore the intricate interplay between WASH awareness, media consumption patterns, and behavioral tendencies in the context of Etah, Uttar Pradesh. The distribution of WASH awareness levels reveals a diverse landscape, with a notable percentage exhibiting a commendable understanding of the importance of clean water and sanitation. However, there exist pockets where awareness is comparatively low, necessitating targeted awareness campaigns to bridge these gaps.

Media consumption patterns shed light on the varied channels through which information is disseminated. Television emerges as a dominant platform, with a substantial percentage attributing a 'Very High' level of engagement. This highlights the importance of leveraging television as a key medium for WASH communication initiatives. The influence of radio and print media, although significant, underscores the need for a multifaceted approach to cater to the diverse preferences of the community. Interestingly, social media, while on the rise, requires careful consideration due to a notable percentage indicating low engagement.

The examination of WASH behaviors provides a promising picture, with a significant proportion exhibiting high levels of adherence to positive practices. Notably, regular handwashing stands out as a prevalent behavior, suggesting a strong awareness of personal hygiene. However, there are areas, particularly in maintaining proper sanitation, where concerted efforts are needed to elevate adherence levels.

Conclusion :-

In conclusion, this study offers a comprehensive insight into the dynamics of WASH awareness, media consumption, and behavioral patterns in Etah, Uttar Pradesh. The combination of these factors forms a complex tapestry that requires nuanced interventions for effective public health initiatives. The notable levels of WASH awareness, particularly among a significant portion of the population,

provide a solid foundation for educational campaigns. Leveraging television as a primary medium aligns with the prevalent media consumption patterns, while acknowledging the importance of radio and print media diversifies the communication strategy. Social media, although growing, demands careful consideration to ensure inclusive outreach.

The encouraging WASH behaviors observed among respondents indicate a positive inclination toward adopting hygienic practices. However, targeted interventions are crucial to address specific areas of concern, such as maintaining proper sanitation.

In essence, this study serves as a valuable resource for policymakers, public health practitioners, and community leaders to design and implement targeted interventions that address the unique dynamics of WASH in Etah, Uttar Pradesh. By tailoring initiatives to the nuanced interplay of awareness, media engagement, and behaviors, sustainable improvements in public health outcomes can be achieved in similar resource-constrained rural contexts.

References :-

1. United Nations. (n.d.-b). Water and sanitation - united nations sustainable development. United Nations. <https://www.un.org/sustainabledevelopment/water-and-sanitation/>
2. Das, B. (2023, August 4). Role of media in development communication. StudyMassCom.com. <https://studymasscom.com/development-communication/role-of-media-in-development-communication/>
3. Progressing the sustainable development goals through health in all ... (n.d.-a). <https://www.who.int/docs/default-source/inaugural-who-partners-forum/progressing-sdg-case-studies-2017.pdf>
4. The role of mass media interventions on promoting public health. (n.d.). <https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/21582440221082125>
5. Adams J, Bartram J, Chartier Y, Sims J (2009) Water, sanitation and hygiene standards for schools in low-cost settings. World Health Organization
6. Agol D, Harvey P, Maïllo J (2017) Sanitation and water supply in schools and girls' educational progression in Zambia. *Journal of Water, Sanitation Hygiene for Development* 8(1):53–61
7. Antwi-Agyei P, Mwakitalima A, Seleman A, Tenu F, Kwiwite T, Kiberiti S, Roma E (2017) Water, sanitation and hygiene (WASH) in schools: results from a process evaluation of the National Sanitation Campaign in Tanzania. *Journal of Water, Sanitation Hygiene for Development* 7(1):140–150
8. Freeman MC, Greene LE, Dreibelbis R, Saboori S, Muga R, Brumback B, Rheingans R (2012) Assessing the impact of a school-based water treatment, hygiene and sanitation programme on pupil absence in Nyanza Province, Kenya: a cluster-randomized trial. *Trop Med Int Health* 17(3):380–391
9. Garn JV, Trinies V, Toubkiss J, Freeman MC (2017) The role of adherence on the impact of a school-

- based water, sanitation, and hygiene intervention in Mali. *Am J Trop Med Hyg* 96(4):984–993
10. Karon AJ, Cronin AA, Cronk R, Hendrawan R (2017) Improving water, sanitation, and hygiene in schools in Indonesia: a cross-sectional assessment on sustaining infrastructural and behavioral interventions. *Int J Hyg Environ Health* 220(3):539–550
 11. WHO/UNICEF: New report on wash in households (2023) UN. Available at: <https://www.unwater.org/news/who/unicef-new-report-wash-households#:~:text=Water%3A%20In%202022%2C%202.2%20billion,million%20who%20practised%20open%20defecation.>
 12. Water, sanitation and hygiene (WASH)UNICEF. Available at: <https://www.unicef.org/wash>.
 13. World Health Organization. (n.d.). 2 in 5 schools around the world lacked basic handwashing facilities prior to covid-19 pandemic - UNICEF, who. World Health Organization. <https://www.who.int/news/item/13-08-2020-2-in-5-schools-around-the-world-lacked-basic-handwashing-facilities-prior-to-covid-19-pandemic-unicef-who>
 14. United Nations. (n.d.). Water and sanitation | department of economic and social affairs. United Nations. <https://sdgs.un.org/topics/water-and-sanitation>.
 15. United Nations. (n.d.-b). Water. United Nations. <https://www.un.org/en/global-issues/water>.



THE PERFORMANCE OF BOYS AND GIRLS FOOTBALL PLAYERS OF JAIPUR REGION

Ms. Monika Pundhir, Researcher

Dr. Surjeet Singh Kaswan, Supervisor

Tantia University, Sriganganagar, Rajasthan.

INTRODUCTION :-

Sports are no longer just sports and games. They are business all over the world. The boom in prize money and the practice of internationally renowned sportsman signing on the dotted line to endorse the products has made sports, big business. Sports lovers all over the world are happy that reputed sportsmen are no longer obliged to follow a regime of high thinking and low living.

Football played at a professional level all over the world. Millions of people regularly go to football stadium follow their favourite teams, while billion men watch the game on television, a very large number of people also play at an amateur. Football is a popular game of physical and mental challenges, At least 200 million licensed players participate in football games are arranged each year in the world football is a team game the object of which is advance an inflated round ball towards the opponents goal post by kicking, passing, dribbling and playing with any part of the body except arms.

Football is the most popular and most attended spectacular game in the world. It is not merely a game; it is a part of one's life. It is a vigorous, fast and skilled game for the well-conditioned sportsmen, who must possess strength, speed, agility, balance, flexibility, endurance, coordination and many other undefined qualities required for dribbling, kicking, passing and shooting at the goal. For playing better football, physical fitness is needed, but there is need for good height and weight that constitute good strength.

Performance :-

Performance in football is a requiring a myriad of skills and it is highly dependent upon subtle blend of players' anthropological, fitness, tactical, technical and socio-psychological abilities. The quest for success continuously leads researchers, sport scientists to explore different means to evaluate and improve related areas both singly and impactful in combination. Playing analysis provides

a factual record and events underpinning both individual and team performance. Evaluating the playing ability is the outcome and process through quantification of many characteristics. Information gleaned from analysis is used to determine the effectiveness of many factors. Translation of knowledge from analysis of football playing ability is usable and meaningful impact on performance and gained widespread acceptance among football practitioners. Understanding of athletic requirements specific to performance ability and factors potentially affecting competitive performance can ensure that objective and realistic decisions taking for structuring the ability of footballers.

Methodology :-

Researcher has used survey method to get the information of the present circumstances.

Sample :-

Samples will be collected from various colleges' football players of Jaipur region. Researcher collects data from various government and private colleges for raw score. Total sample are 400 in which 200 boys and 200 girls players from colleges education of government and private colleges respectively.

Data Collection :-

The current research work deals with the analysis of the Performance of boys and girls football Players. The present work deals with the various government & private colleges of Jaipur region of Rajasthan state.

Tool :-

The researchers have used self-developed Performance questionnaire was used to measure the performance of the players for this study.

Objective :-

To study the performance of boys and girls football players of Jaipur region.

Analysis of Data :-

Table showing the significant difference of the performance of boys and girls football players of Jaipur region -

Table - 1(Performance- Govt. College & Private College)

Source of Variation	N	Mean	S.D.	Df.	t-value	Level of significance
Boys Players	200	89.24	4.23	398	0.26	NS*
Girls Players	200	89.35	4.20			

*Significant at 0.01 & 0.05 level

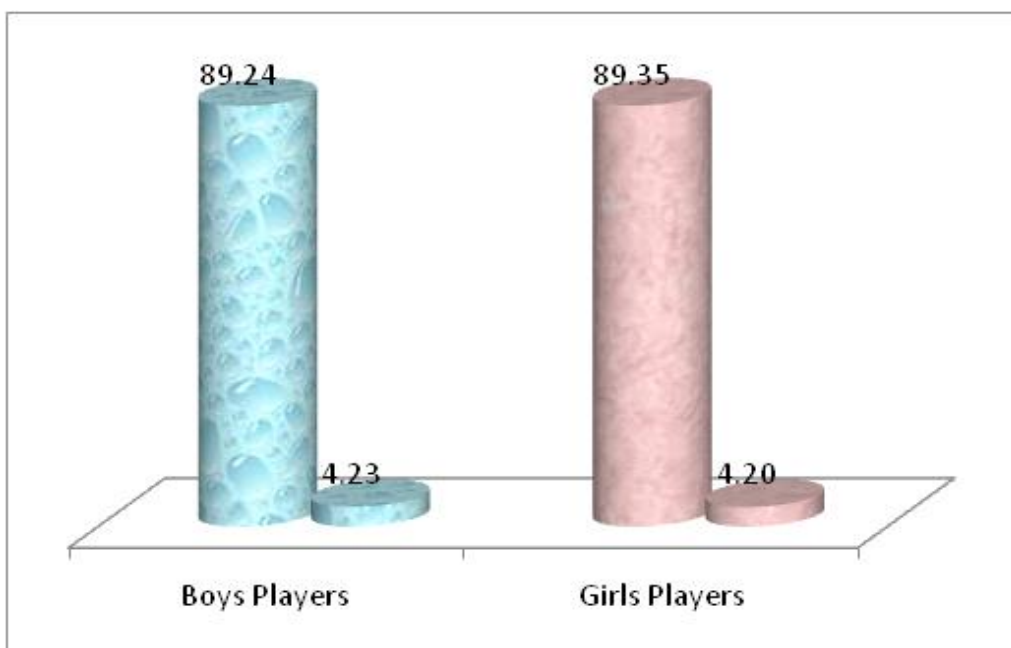


Table 1-difference of the performance of boys and girls football players of Jaipur region

Description :- The table 1 shows that Mean score of Government College's and Private College's Boys & Girls football players are 89.24 and 89.35 with a SD values of boys and girls football players are 4.23 and 4.20 respectively. T-value (0.26) is found to be not significant at (0.01 & 0.05) level. Hence the null hypothesis is not rejected which means that there is no significant difference of the performance of boys and girls football players of Jaipur region.

Result :-

There is no significant difference of the performance of boys and girls football players of Jaipur region. The Mean Score of both boys and girls players were almost same.

Conclusion :-

The current research work was undertaken into An Analytical Study of Football Players of Jaipur Region in Context to Performance of some hypothesis. Therefore it now becomes essential at this stage of the research work to see whether the hypothesis were rejected or accepted on the basis of data analysed.

REFERENCES :-

1. Ali, A. (2011). Measuring soccer skill performance: a review. Scandinavian journal of medicine & science in sports, 21(2), 170-183.
2. Ahmad, R.H. (2016). Impact of belligerence and behaviour on sports performance. International Journal of Applied Research, 2(1), 06-09.
3. Andrea Stracciolini, MD Rebecca Casciano, Hilary Levey Friedman, Cynthia J. Stein, (2014). Paediatric Sports Injuries A Comparison of Males Versus Females Am J Sports Med April 2014 vol. 42 no. 4 965-

972.

4. Amanda Carroll (2009). Injury Rates in High School Athletes master dissertation .The University of Toledo.
5. Babalola J.F. et al. (2011). Effects of 8-weeks circuit training programme on physiological and performance characteristics of university racket game players. *Journal of Asian Scientific Research*, 1(4), 143-149.
6. Balsom, P. (1994). Evaluation of physical performance. In: *Football (Soccer)*. Ed: Ekblom, B. London: Blackwell Scientific Pub. 102-123.
7. Bangsbo J, Iaia FM, Krstrup P. (2008). The Yo-Yo intermittent recovery test – A useful tool for evaluation of physical performance in intermittent sports. *Sports Med*: 38:37–51.
8. Barfield, W.R., Kirkendall, D. and Yu, B. (2002). Kinematic instep kicking differences between elite female and male soccer players. *Journal of Sports Science and Medicine* 3, 72-79.
9. Barker, J., Jones, M., & Green lees, I. (2010). Assessing the immediate and maintained effects of hypnosis on self-efficacy and soccer wall-volley performance. *Journal of Sport and Exercise Psychology*, 32(2), 243-252.
10. Bate, D. (1996). Soccer skills practice. *Science and soccer*. London: E & FN Spon, 227-241.
11. Behm, D. G., & Chaouachi, A. (2011). A review of the acute effects of static and dynamic stretching on performance. *European journal of applied physiology*, 111(11), 2633-2651.
12. Chelly SM and Denis C (2001). Leg power and hopping stiffness: relationship with sprint running performance. *Med Sci Sports Exerc* 33: 326-333. 488
13. Cromwell, F.J. Walsh Gromely (2000). “Injuries in elite Gaelic footballers” *BJSM*, 34:104-108.
14. Culver JE(Ed) (1992). *Injuries of the Hand and Wrist*. Clin Sports Med, 11(1).
15. Culver JE, Anderson TE (1992). Fractures of the hand and wrist in the athlete. *Clin Sports Med* 11(1): 101-128,
16. Curtis RJ, Corley FG. Fractures and dislocations of the forearm. *Clin Sports Med* 5(4).
17. De Villarreal, E. S., Suarez-Arrones, L., Requena, B., Haff, G. G., & Ferrete, C. (2015). Effects of polymeric and sprint training on physical and technical skill performance in adolescent soccer players. *The Journal of Strength & Conditioning Research*, 29(7), 1894-1903.
18. D•souza (1990). Track and field athletics injuries. *British Journal of Sports Medicine* Sept 1994: Vol 28 Issue 3. p. 197-202 6p
19. Diana Hopper, Bruce Elliottt and Jenny Lalor (1995). Five year study of netball injuries during match playing: *BJSM* 1995; 29: 223-228).
20. Dinesh Mohan and GeetamTiwari (2000). *Injury Prevention and Control*, Taylor and Fancies Publishers New Fetter Lane, LondonEC4 P4EE, UK.
21. Ebrahimi- Atri (2007). An Investigation on prevalence and causes for occurrence of athletic injuries in the state elite gymnast girl students. *Proceedings of the fifth state medical congress*.43.
22. Elyasi. Ghasem (1998). Survey the incidence localization sport injuries in football. Thesis of Msc Esfahan University.
23. Eric D Zemper Knee and Ankle (1990). Injuries in college football: An four session analysis: *American Journal of sports Medicine*; 23:147-152.
24. Feltz, Deborah I. (1988). Self-Confidence and Sports Performance, *Exercise and Sport Science Reviews*,

16, 423-457.

25. Finnoff, J.T., Newcomer, K. and Laskowski, E.R. (2002). A valid and reliable method for measuring the kicking accuracy of soccer players. *Journal of Science and Medicine in Sport* 5(4), 348-353.

JOURNALS :-

1. Abraham, George. "Analysis of Anthropometry, Body Composition and Performance Variables of Young Indian Athletes in Southern Region." *Indian Journal of Science and Technology*, (Dec 2010), Vol. 3(12): 1210-1213.
2. Ali, A. and Farraly, M. (1991). A computer video aided time motion analysis technique for match analysis. *Journal & Sports Medicine and Physical Fitness*, 31: 1991.
3. Ali, Zafar and Y.P Sharma, "A Comparative Study of Anthropometric Variables between Medalist and Non-medalist Football Players", *Journal of Health and Fitness* (2009), Vol.1 (1): 58-62.
4. Andrea Blair, Craig Hall and Glynn Leyshon, (1993). "Imagery effects on the performance of skilled and novice soccer players" *Journal of Sports Sciences*, 11(2) PP.95-101.
5. Arnason A.; Sigurdsson, S.B.; Gudmundsson, A.; Holme, I.; Engebretsen, L.; and Bahr, R. "Physical Fitness, Injuries, and Team Performance in Soccer", *Med. Sci. Sports Exerc.* (2004), Vol.36 (2): 278-285.
6. Chapman, J., Tunmer, W., & Prochnow, J. (2000). Early reading-related skills and performance, reading self-concept and the development of academic self-concept: A longitudinal study. *Journal of Educational Psychology*, 92(4), 703-8.
7. Chauhan, M.S. "Correlation between Selected Anthropometric Variables and Middle Distance Running Performance." *Journal of Sports and Sports Sciences* (2003), Vol.26 (3): 42-48.
8. Christian, V. (1985). The construction and evaluation of a soccer skill test, Abstract Research Paper. AAPHERD Convention, p. 167.
9. Claessens A.L. "The Contribution of Anthropometric Characteristics to Performance Scores in Elite Female Gymnasts." *J. Sports Sci.*, (1991), Vol.9 (1): 53-74.
10. Debnath S and Dey N. R. (1999, April). Relationship of Performance with Physiological Traits of National Archers, *SAI Scientific Journal*, Vol. 22(2), pp. 27 – 30.
11. Ercan (2007). "Effects of technical training on skill development in non-dominant legs of young soccer players", *Journal of Sports Science and Medicine*, Firat University, Gazi University and Ankara University, Suppl. 10, P-121.
12. Eugenio A. Peluso , Michael J. Ross, Jeffrey D. Gfeller and Donna J. Lavoie (2005). "A comparison of mental strategies during Athletic skills performance", *Journal of Sports Science and Medicine*, Department of Psychology, Saint Louis University, St. Louis, MO, USA. Suppl. 4, PP.543-549.



निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन

आरती भांभू, शोधकर्त्री

डॉ. सुमन कुमारी, शोध निर्देशक,

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इक्कीसवीं सदी में स्वर्णिम भारत के उदय का आधार शिक्षा ही है। शिक्षा को राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और जनआकांक्षाओं की पूर्ति करने के साथ-साथ मानवता के विकास की ओर उन्मुख करने वाली होनी चाहिये। सामाजिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक प्रणाली, उपलब्ध संसाधनों के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में नवीन अनुसंधान करने होंगे। इनके आधार पर शिक्षा राष्ट्रोपयोगी, सामाजिक सन्तुष्टि व विकासोन्मुखी बन पायेगी।

छात्र में कुछ इस प्रकार के व्यवहार होते हैं जिन्हें वह वंशानुक्रम द्वारा माता-पिता से प्राप्त करता है तथा कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जिन्हें वह परिवार, समाज, मित्र मण्डली तथा विद्यालयीय परिस्थितियों से क्रिया-प्रतिक्रिया व अंतःक्रिया द्वारा प्राप्त करता है। यह भी तथ्य है कि वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त विशेषतायें, यथा-बुद्धि, सृजनशीलता, अभिरूचि, आदि वे वंशानुक्रम से प्राप्त करता है जिनमें आयु संवर्द्धन के साथ-साथ परिवर्तन तो होता है परन्तु यह परिवर्तन की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती है जिसके परिणामस्वरूप उसके इन व्यवहारों में चरम परिवर्तन हो सके।

व्यक्तित्व :-

साधारण व्यक्ति व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के बाह्य आकर, डील-डौल, रंग-रूप तथा उसका दूसरे व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभाव से लगाते हैं। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से भी इसका यही अर्थ है। व्यक्तित्व शब्द का उद्गम लैटिन भाषा के पर्सनेयर (Personare) से हुआ है। जिसका सम्बन्ध रंग-मंच से था। परसोना (Persona) का अर्थ मुखौटा (Mask) से था जिसे पहन कर नाटक के पात्र रंग-मंच पर आते हैं। व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग अपनी बोल-चाल, वेश-भुषा, रंग-रूप, व्यवहार आदि में दूसरों को प्रभावित करने के अर्थ में किया जाने लगा।

व्यक्तित्व को अंग्रेजी भाषा में 'पर्सनैल्टी' कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द, लैटिन भाषा के 'पर्सोना' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ 'नकली चेहरा' है। परसोना का तात्पर्य व्यक्ति के बदलते हुए रूप से हैं।

अंग्रेजी के 'पर्सनॉलिटी' (Personality) शब्द से व्यक्तित्व शब्द का बना है। लैटिन भाषा के Persona शब्द से 'पर्सनॉलिटी' शब्द लिया गया है जिसका अर्थ वेष बदलने के लिये प्रयोग किये जाने वाले मुखौटा (डॉ)

से था जिसका प्रयोग कर ग्रीक रोमन कलाकार नाट्यमंच पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिनय का प्रदर्शन करते थे। ये मुखौटे सब अभिनेताओं को एक-दूसरे से अलग पहचाने के लिए प्रयोग किए जाते थे। इस प्रकार कह सकते हैं कि पर्सनॉलिटी या व्यक्तित्व शब्द से अभिप्राय आन्तरिक व्यक्ति के बाहरी मुखौटे से था। यह आन्तरिक तत्त्व जीव अथवा वास्तविक जीवन का व्यक्ति माना जाता है। इस प्रकार शुरुआत में व्यक्तित्व को मुखौटे के रूप में लिया गया था।

इस प्रकार व्यक्तित्व को सामाजिक प्रभावकता के रूप में माना जा सकता है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में वंश, परंपरा एवं संबंधित परिवेश इन सभी की महती भूमिका होती है।

समायोजन :-

समायोजन ही जीवन है। मनोविज्ञान का विशेष उद्देश्य है व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना। दैनिक जीवन में हम सभी प्रायः समायोजन करते हैं। यदि कार में पाँच व्यक्तियों के लिए स्थान हैं और आठ व्यक्ति सफर कर रहे हैं तो उन्हें कार में समायोजित होना पड़ता है। समायोजन की अवधारणा का जन्म जैविकीय है। संसार के समस्त प्राणियों के समान यह बौद्धिक प्राणी मनुष्य की दिन-रात क्रियाशील रहता है। इस प्रकार सभी परिस्थितियों के साथ उसे सामंजस्य करना पड़ता है।

‘समायोजन’ शब्द का अंग्रेजी पर्यायवाची ‘एडजेस्टमेंट’ है। इसकी व्युत्पत्ति जीवन विज्ञान के ‘एकप्लान’ शब्द से हुई है। नवजात शिशु जन्म लेने के पश्चात् यदि वातावरण के साथ समायोजिम हो जाता है तो वह जीवित रहता है अन्यथा नहीं। सफलता एवं असफलता केवल समायोजन के परिणाम हैं। जीवन की समस्याओं का समाधान समायोजन में निहित है। विशेषकर चिन्ताओं के युग में जितना सम्भव हो सके उतना ही सीधे और सरल मार्ग के लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता ही समायोजन का आधार है। आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना और लक्ष्य प्राप्त करना ही समायोजन की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है।

न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध कार्य के दत्त संकलन कार्य हेतु राजस्थान राज्य के हनुमानगढ़ जिले व श्रीगंगानगर जिले के निजी महाविद्यालयों के 300 शिक्षार्थियों का चयन किया गया है।

विधि :-

इस शोध अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

उपकरण :-

इस हेतु शोधकर्त्री द्वारा मानकीकृत उपकरणों के रूप में व्यक्तित्व मापन हेतु एस. जलोटा व एस. डी. कपूर द्वारा निर्मित मॉड्रसले की व्यक्तित्व परीक्षा तथा समायोजन मापन हेतु आर. के. ओझा द्वारा निर्मित बेल समायोजन अनुसूची का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी :-

शोध कार्य हेतु शोधकर्त्री द्वारा सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-टैस्ट का प्रयोग किया गया।

शोध के उद्देश्य :-

निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का

तुलनात्मक अध्ययन करना।

विश्लेषण-

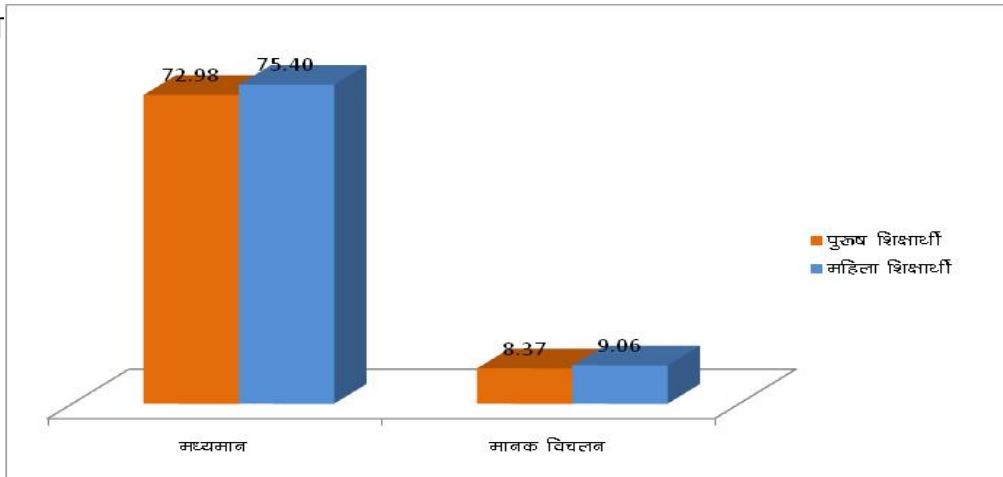
समूह (कला वर्ग)	संख्या	सारणी संख्या-1 (व्यक्तित्व) मध्यमान	प्रमाण विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्वकता स्तर
पुरुष शिक्षार्थी	50	72.98	8.37	98	1.39	असार्थक
महिला शिक्षार्थी	50	75.40	9.06			

0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या :-

सारणी संख्या¹ के अनुसार निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के पुरुष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमशः 72.98 तथा 75.40 है। इन दोनों समूहों का प्रमाण विचलन क्रमशः 8.37 व 9.06 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 1.39 है। ये मूल्य 98 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.98 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.62 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं है।

निजी महाविद्यालयों के कला वर्ग के पुरुष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व में दोनों स्तरों पर कोई अंतर प्रा

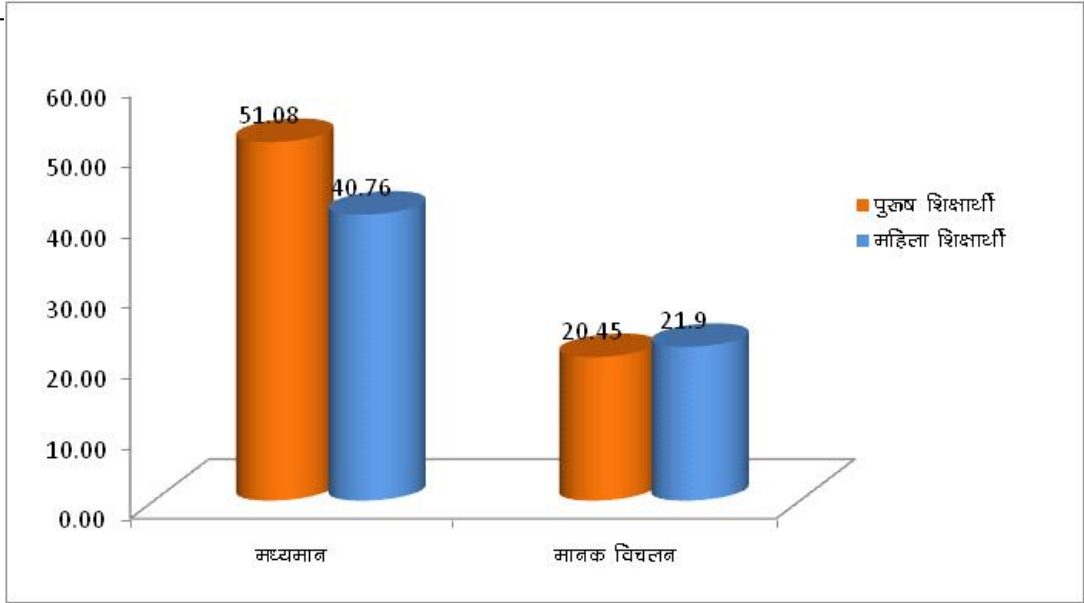


समूह (कला वर्ग)	संख्या	सारणी संख्या-2 (समायोजन) मध्यमान	प्रमाण विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्वकता स्तर
पुरुष शिक्षार्थी	50	51.08	20.45	98	2.44	असार्थक
महिला शिक्षार्थी	50	40.76	21.90			

परिणाम एवं व्याख्या :-

सारणी संख्या 2 के अनुसार निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के पुरुष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के समायोजन का मध्यमान क्रमशः 72.98 तथा 75.40 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 8.37 व 9.06 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 1.39 है। ये मूल्य 98 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.01 स्तर पर विश्वास मूल्य 2.62 से कम है। अतः 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है।

निजी महाविद्यालयों के कला वर्ग के पुरुष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के समायोजन में 0.01 सार्थकता स्तर

**सारांश :-**

अध्ययन के परिणाम से निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के कला वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन में तुलनात्मक अंतर पर प्रकाश डालने में मदद मिलेगी। यह शोध निजी महाविद्यालयों में अध्ययनरत कला वर्ग के पुरुष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन करने में भी मदद करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अरोड़ा डॉ. रीता, मारवाह डॉ. सुदेश (2004-05)- शिक्षण एवं अधिगम के मनो सामाजिक आधार, जयपुर: शिक्षा प्रकाशन।
2. एम.वी.आर.राजू और वी. ख्वाजा शहमुतुला (2007), 'विद्यालयी विद्यार्थियों में समायोजन समस्याएं' आंध्रा विश्वविद्यालय विखापट्टनम्, प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
3. एस्टेला एवं अन्य (1989), फिलीपीन्स जर्नल और साइक्लॉजी, वाल्यूम 22, पृष्ठ 37-45.
4. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007), बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या-459-460
5. श्रीविद्या वी. (2007), 'नवोदय, केन्द्रीय एवं राजकीय स्कूलों के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन

- समस्याएं' कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़, पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
6. क्लीपर, हुट्टीया (2008). "दक्षिण-पश्चिमी पैन्सीलुनीयाँ में अचानक आये शरणार्थियों के समायोजन अनुभव तथा शैक्षिक दृष्टि का वर्णात्मक अध्ययन" प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
 7. कपिल एच.के (2010), अनुसंधान, विधियाँ, आगरा।
 8. कपूर, अर्चना एवं श्रीवास्तव, निधि (2008), 'कार्यरत महिलाओं के वैवाहिक/सामाजिक समायोजन का बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व पर प्रभाव' शीर्षक पर प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
 9. कविता प्रकाश एवं राबर्ट जे. (2007), 'भारत में गैर सामाजिक मिलनसार बच्चों के विद्यालय समायोजन और सांवेगिक सामाजिक विशेषताएँ' एक प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
 10. काबरा, एल.(1991). अनुसूचित जाति एवं गैर अनुसूचित जाति बालिकाओं का उनकी पिछड़ेपन एवं व्यक्तित्व एवं वातावरण समायोजन के साथ लक्ष्य निर्धारण। पीएच. डी. थीसिस, एजुकेशन मोहनलाल सुखाडिया यूनिवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान।
 11. कौर, कमलप्रीत (2010). "विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों में संवेगात्मक परिपक्वता एवं समायोजन का अध्ययन" पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
 12. कुशवाह आरती (2003). "किशोर बालक-बालिकाओं पर किशोर एवं अभिभावक संबंधों का संवेगात्मक परिपक्वता एवं बौद्धिक विकास का समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन" प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
 13. कुशवाहा, ए.के. एवं हसन, बी.(2005). व्यक्तित्व आयाम एवं लिंग के संदर्भ में कैरियर निर्णय। जर्नल ऑफ द इंडियन एकेडमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी, 31(2), 77-82.
 14. गैरिट हैनरी ई.(1991). 'शिक्षा और मनोविज्ञान में साख्यिकी का प्रयोग' कल्याणी पब्लिशर्स लुधियाना।
 15. गुप्ता लिलेश (2002). "उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में भविष्य के प्रति जागरूकता व्यवसायिक रुचि एवं विद्यालय में समायोजन का अध्ययन" पीएच.डी. शोधकार्य।
 16. ढोढियाल, एस. पाठक (1990), शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र. जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ संख्या-51.
 17. नायक निवेदिता (2005). "शिक्षकों पर मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन का उनकी आत्म अवधारणा के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव पर अध्ययन" शोधकार्य।
 18. निफेडकर, सुशील, श्याम (2009). "संवेगों एवं नवआगन्तुकों से समायोजन" पर सम्मिलित शोधकार्य।
 19. पाठक, पी.डी. (2007), शिक्षा मनोविज्ञान. आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर. पृ.सं. 245, 552, 450.
 20. पाण्डे, के.सी. (1983). एज्यूकेशनल रिसर्च इन इन्ट्रोडक्शन. नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।
 21. पाण्डे राम शुक्ल (2003). 'शिक्षा मनोविज्ञान' सूर्या पब्लिकेशन मेरठ।
 22. प्रजापत, शंकरलाल (2009). "उत्तर भारत के विभिन्न खेल विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, समायोजनशीलता एवं क्रीड़ा निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।" पीएच.डी. शोधकार्य, हरियाणा।
 23. मित्तल, एम. एन. (2005), शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार. मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस. पृ. स.-293-296.
 24. मेहता, वी. आर.(2006), अध्ययन पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति : मूल्यपरक शिक्षा कोटा : कोटा खुला विश्वविद्यालय. पृष्ठ संख्या-70.
 25. राय, पी.एन.(1981), अनुसंधान परिचय. चतुर्थ संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर पृष्ठ संख्या-63.
 26. शर्मा, डॉ. आर. ए (2013)- शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
 27. सारस्वत, डॉ. मालती (1997), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा : आदत और शिक्षा, आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर. पृ. सं. 255.

28. सुखिया, एस.पी. (1973), शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. द्वितीय संस्करण, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या-487.
29. हकीम, एम.ए. और अस्थाना, विपिन (1994), मनोविज्ञान की शोध विधियाँ. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या-169.
30. त्रिवेदी, आर.एन. एवं शुक्ला, डी.पी. (2008), रिसर्च मॅथडोलॉजी, जयपुर : कॉलेज बुक डिपो. पृ.सं. 321.

Journals and Magazines :-

1. भारतीय शिक्षा शोध, पत्रिका रिव्यू अंक-22.
2. नई शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक संवाद की पत्रिका, वर्ष – 62 अंक – 5.
3. जर्नल ऑफ वैल्यू एजुकेशन, अंक-5, जनवरी व जुलाई, 2005.

Survey :-

1. Buch, M.B. (Ed.). First survey in Education.
2. Buch, M.B. (Ed.). Second survey in Education.
3. Buch, M.B. (Ed.). Third survey in Education.
4. Buch, M.B. (Ed.). Fourth survey in Education.
5. Buch, M.B. (Ed.). Fifth survey in Education

Webliography :-

1. www.ase.org.uk
2. www.shodhganga.inflibnet.ac.in
3. www.usq.edu.au/users/albino/papers/site99/1345.html
4. www.skills_nict.com.in
5. www.google.com
6. www.education.nic.in



‘आत्मा’ – एक संक्षिप्त परिचय

डॉ. सुनीता कुमारी

विभाग—संस्कृत, जमशेदपुर महिला विश्वविद्यालय, जमशेदपुर।

भारत में दर्शन की रूचि मनुष्य की आत्मा में है। जब दृष्टि बाहर की ओर होती है तो निरन्तर बदलती हुई, घटनाओं का प्रवाह ध्यान आकृष्ट कर लेता है। इसके विपरीत भारत में ‘आत्मानं—विद्धि’ अर्थात् अपनी आत्मा पहचानो इस एक सिद्धान्त में समस्त धार्मिक आदेश और युगपुरुषों की शिक्षाएँ समाविष्ट हैं। हर मनुष्य के अन्दर वह आत्मा है जो प्रत्येक वस्तु का केन्द्र है। भारतीय दर्शन मूल्यों का दर्शन है। आत्मा के स्वरूप का सभी भारतीय दर्शनों में सूक्ष्म एवं भव्य विवेचन किया गया है। प्रायः प्रत्येक दार्शनिक आत्मा की सत्ता में विश्वास करता है। आत्मा भारतीय दर्शन का मुख्य अंग रहा है।

‘आत्मा’ शब्द है—क्या?— यह ‘आत्मा’ अत् धातु से ‘मनिण्’ प्रत्यय करके निष्पन्न ‘आत्मन्’ शब्द का एक वचनान्त रूप है जो पुंल्लिंग में प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है— सातत्यगमन।¹ भारतीय कोशकारों ने भी ‘आत्मा’ शब्द की व्युत्पत्ति अत् से स्वीकार की है। शब्दकल्पद्रुम में ‘सतत् गमनशील’ का अर्थ—जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहता है, इस प्रकार से किया गया है।² यास्क³ ने इसकी व्युत्पत्ति दो धातुओं ‘अत् गमन करना’ अर्थ में, और ‘अप —व्याप्त होना’ अर्थ में दी है— उन्होंने ‘आत्मा’ शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—“आत्मा अततेर्वाआप्तेर्वाअपिवाप्तइवस्वाद यवाद्व्याप्ति भूत।” अर्थात् जो सतत् गमन करती है, वह आत्मा है या जो सर्वत्र व्याप्त है वह आत्मा है या जो व्याप्त सा प्रतीत होता है, वह आत्मा है।

आत्मा के विषय में पहला प्रश्न उपस्थित होता है कि उसे कैसे जाना जाए क्योंकि जो स्वयं ज्ञाता है वह ज्ञान का विषय किस प्रकार हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में ही उसका (आत्मा) स्वरूप भी अन्तर्निहित है।

कुछ प्राचीन दार्शनिक कहते हैं कि आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं हो सकती। उनके अनुसार आत्मा का ज्ञान या तो आप्त वचनों से होता है या उनके प्रत्यक्ष गुणों यथा बुद्धि, सुख, दुःख इच्छा, द्वेष एवं प्रयत्न से अनुमान के द्वारा होता है।⁴

‘आत्मा’ के स्वरूप का वर्णन करते हुये अथर्ववेद में कहा गया है कि इस जगत् का आत्मा निष्काम, आत्म—निर्भर, अमर, स्वयंसिद्ध, आनन्दमय, सदैव युवा और शाश्वत है।⁵ इसके ज्ञान से ही मृत्यु को जीता जा सकता है। वैदिक ऋषि विश्वास रखते थे कि आत्मा (मन) शरीर से अलग भी अपना अस्तित्व रखता है। ऋग्वेद के दसवें सूक्त के अठावनवें मंत्र में कहा⁶ गया है कि वह वृक्ष वनस्पति, अन्तरिक्ष सूर्य आदिकाल से हमारे पास चली आयी। वेद के ऋषि विश्वास करते थे कि इस लोक से परे भी दूसरा लोक है, जहाँ मरने के बाद सुकर्मा पुरुष जाता है और आनन्द भोगता है।

उत्तरकालीन आत्मा को एक स्थान पर विश्व की चेतन शक्ति के रूप में बताया गया है और जब हम इस कल्पना को ब्राह्मणों, और आरण्य को तक आकर देखते हैं तो प्रकट होता है कि वहाँ तक आते-आते आत्मा की धारणा विश्व और मनुष्य दोनों में व्याप्त महान् चेतन शक्ति के रूप में विकसित हो गयी। इस प्रकार उपनिषदों तथा उत्तरवर्ती दर्शनों में महान् आत्मा का जो सिद्धान्त मिलता है, उसका प्रारम्भिक स्वरूप वेदों में ही परिलक्षित हो जाता है।

उपनिषद, जो भारतीय वाङ्मय में दर्शन के प्रथम ग्रन्थ माने जाते हैं, में भी एक ही सत्ता के लिए सारी शंकाएं उत्पन्न कर उसका उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है जैसे—किससे सब उत्पन्न हुआ है? किसमें सबका विलय होगा? किसके जान लेने से मुक्ति मिल जायगी? वह सत्य कहा है? ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? आदि। यहाँ उस एक को ही ब्रह्म, आत्मा, सत् आदि कहा जाना एकेश्वरवाद की खोज का बोधक है। इसके उत्तर में यह बताना कि पहले केवल आत्मा ही थी,⁷ वही सब कुछ है⁸ आत्मा को जान लेने के बाद सब कुछ ज्ञात हो जाता है।⁹ आत्मा ही ब्रह्म है—अयम् आत्मा ब्रह्म¹⁰ और इसलिए मैं भी ब्रह्म हूँ—अहं ब्रह्मास्मि¹¹ मैत्रेयी उपनिषद में कहा गया है—आत्मा ही वह तत्त्व है, जिसका दर्शन करना चाहिए, श्रवण करना चाहिए, मनन करना चाहिए। शंकराचार्य कहते हैं कि आत्मज्ञान प्राप्त करने से महान और कोई सफलता नहीं है।¹²

कठोपनिषद में आत्म तत्त्व का वर्णन एक सुन्दर रूपक के द्वारा करते हुए कहा गया है कि— यह शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है इन्द्रियाँ थोड़े हैं, जो विषय—रूपी मार्ग पर चलते हैं तथा आत्मारथ का स्वामी है¹³। उपनिषदों में आत्मा के लिये अखण्ड, शुद्ध, नित्यानन्दै—करस, अन्तर्यामी आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है। आत्मा पाप रहित, मृत्युहीन, शोक रहित, सुधाररहित, सत्य काम व सत्य संकल्प है। यह आत्मा प्रकृति—विकृति के विकारों से रहित असत्—सत् को प्रकाशित करता हुआ बुद्धि के साक्षी है।

मैत्री उपनिषद में बतलाया गया है कि शरीर रथ है और आत्मा ही इसका संचालक है। आत्मा शुद्ध, शान्त, शाश्वत और पूर्णतः स्वतंत्र है।¹⁴

कौषीतकी उपनिषद् में बतलाया गया है कि आत्मा शरीर का स्वामी तथा इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। आत्मा शरीर में नख से शिखा तक व्याप्त है। सभी इन्द्रियाँ आत्मा की आज्ञा का पालन करती हैं।

कठोपनिषद में यम ने नचिकेता को इस आम तत्त्व का वर्णन करते हुए बताया है कि—‘यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है, न मरता है, यह न तो किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह स्वयं नष्ट नहीं होता है।¹⁵ पुनः यम नचिकेता को बताते हैं कि यह आत्मा विषयों को ग्रहण करने वाला, इन्द्रियों से, मन से, विवेचनात्मक बुद्धि से तथा प्राणों से परे व श्रेष्ठ है।¹⁶ आत्मा से सूक्ष्म व श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। यही मनुष्य की गति या अन्तिम गन्तव्य है।¹⁷

कौषीतकि उपनिषद में आत्मा को शरीर का स्वामी तथा इन्द्रियों का अधिष्ठाता बताया गया है। आत्मा द्वैत रहित अद्वैत है। ज्ञान कर्तृत्व उसकी सत्ता मात्र में ही है। आत्मा वह है जो पाप से मुक्त, वृद्धावस्था से एवं मृत्यु तथा शोक से रहित है। वह भूख—प्यास आदि से रहित है।

स्थिरता, तारतम्यता एवं नित्य क्रियाशीलता इसके विशेष लक्षण है।¹⁸ आत्मा अज्ञेय है। वह मनुष्यों के लिये श्रवण शक्ति से भी गम्य नहीं है, किन्तु बहुत से उसे सुन लेने के बाद भी उसे जानने में असमर्थ हैं। आत्मा महान सत्ता है, जो समस्त अज्ञेय विषयों को जानता है। जो स्वयं ज्ञाता है उसे कौन जान सकता है¹⁹। वह

अश्रव्य होते हुये भी सनातन श्रोता है। आत्मा स्वयं प्रकाश है, व जड़ नहीं है।

जैसा कि आत्मा के अस्तित्व के लिये वेद और शास्त्र के वचन प्रमाण है। उपनिषदों में कहा गया है—आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन निदिध्यासन से करना चाहिए।

वैशेषिक दर्शन में आत्मा उस सत्ता को कहा गया है जो चैतन्य का आधार है, आत्मा वह द्रव्य है जो ज्ञान का आधार है। वस्तुतः वैशेषिक ने दो प्रकार की आत्माओं को माना है।

1. जीवात्मा

2. परमात्मा

आत्मा इन्द्रियाँ नहीं है, बल्कि इन्द्रियों का नियंत्रण करने वाली है, तथा इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान का संश्लेषण करने वाली है।²⁰ यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।²¹ वैशेषिक ने भी आत्मा को नित्य और अविनाशी माना है। साथ ही उसने उसके दो रूप भी बतलाये हैं— क्षेत्रज्ञ और सर्वज्ञ। इन्हीं को अन्य सिद्धान्तवादी जीवात्मा और परमात्मा के नाम से पुकारते हैं। वैशेषिक ने आत्मतत्त्व को ही जगत् का अधिष्ठाता माना है। आत्मा एक स्वतंत्र द्रव्य है। ज्ञानाधिकरणा—मात्मा²² अर्थात् ज्ञान रूप गुण के आश्रय को आत्मा कहते हैं।

आत्मा एवं ब्रह्म में एकता का प्रतिपादन करते हुये उद्दालक अरुणि ने अपने पुत्र श्वेत केतु को बताया कि जिस प्रकार बरगद का बीज एवं बरगद का वृक्ष मूलतः एक ही है या जैसे नमक व पानी मिल जाने पर दोनों एकमेव हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार आत्मा एवं परमात्मा एक ही है। आत्मा सभी विषयों में व्याप्त है, क्योंकि सभी विषय आत्मा के द्वारा ही ज्ञात होते हैं। उपनिषदों में प्राप्त होने वाला "तत्त्वमसि" महावाक्य भी आत्मा और ब्रह्म के एकत्व को प्रतिपादित करता है। इस अंश पर विचार करते हुए भी सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय और श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त लिखते हैं—तत्त्वमसि वाक्य का अर्थ है। जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न है, अर्थात् दोनों में यथार्थतः अभेद संबंध है। यदि 'त्वम्' से शरीर की उपाधि से युक्त प्रत्यक्ष जीव—विशेष समझा जाये और 'तत्' से परोक्ष परम—तत्त्व या ब्रह्म का बोध हो, तो 'तत्' और 'त्वम्' में अभेद संबंध नहीं हो सकता। अतएव 'त्वम्' से जीव का अधिष्ठान रूप शुद्ध चैतन्य और "तत्" से परोक्ष तत्त्व अधिष्ठान शुद्ध चैतन्य समझना चाहिए। इन दोनों में पूर्ण अभेद है।⁽²³⁾ उपनिषदों भी आत्मा और ब्रह्म की इस एकता का समर्थन करती हैं, जैसे 'अहंब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ), 'अयमात्मा ब्रह्म' (यह आत्मा ब्रह्म है), 'तत्त्वमसि'। वह ब्रह्म तू (आत्मा) ही है। छान्दोग्य उपनिषद् में ऋषि कहता है, मैं यहां से मर कर इसी को प्राप्त होऊँगा।⁽²⁴⁾ बृहदारण्यक उपनिषद् में भी आत्मा को ब्रह्म कहा गया है।⁽²⁵⁾

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप :-

आत्मा ब्रह्म स्वरूप होने के कारण उसी के समान 'सच्चिदानन्द' स्वरूप भी है अर्थात् ब्रह्म के समान ही वह सत् स्वरूप है चित् स्वरूप है और आनन्द स्वरूप है। इसका अर्थ है आत्मा बोध में शंकर कहते हैं—जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का शीतलता और अग्नि का ऊष्णता और निर्मलता है।⁽²⁶⁾

आत्मा: सत् स्वरूप :-

इसका अर्थ है कि आत्मा अस्तित्ववान् है। आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता। 'मैं हूँ' यह बोध हर एक को होता है, कोई यह नहीं कहता कि 'मैं नहीं हूँ'। यह आत्मा नित्य तथा अविनाशी है।

आत्मा: चित् स्वरूप :-

शंकर कहते हैं— 'चेतना' आत्मा का स्वरूप है, कोई आगंतुक गुण नहीं। ब्रह्म के समान आत्मा विशुद्ध

चेतना है। आत्मा का यह चित् स्वरूप प्रत्येक अवस्था जैसे जागृत स्वप्न, सुशुप्ति में विद्यमान रहता है।

आत्मा: आनंद स्वरूप :-

आत्मा परब्रह्म के समान ही आनंद स्वरूप भी है। यदि यह आनंद की प्रकृति की नहीं होती तो कोई जीना नहीं चाहता, परंतु सब जीना चाहते हैं, इसका मतलब है कि आत्मा आनंद स्वरूप है, किंतु सांसारिक सुख आनंद नहीं है। वास्तविक आनंद स्थाई होता है, जबकि सांसारिक सुख क्षणिक होता है।

शंकर के अनुसार आत्मा ही जीव है। वह इन्द्रिय रूपी घोंसले अर्थात् शरीर का अध्यक्ष है और कर्म फल से संबंधित होता है। अतः आत्मा के स्वरूप पर विचार करके ही हम जीव की ओर बढ़ सकते हैं। ब्रह्म और आत्मा या जीव में एक ही अंतर है कि ब्रह्म पूर्ण है और आत्मा या चेतन उसका अंश। ब्रह्म जब माया मोहित होता है तो ईश्वर होता है और जब अविद्या मोहित होता है तो आत्मा होता है जो जीव कहलाता है। आत्मा और जीव दोनों चैतन्य हैं यद्यपि चैतन्य आत्मा का गुण न होकर शंकर ने उसका स्वभाव माना है। जीव नित्य है जीवात्मा को नित्य माना गया है।

उपनिषदों में आत्मा को 'पुरुष' भी कहा गया है। 'पुरुष' शब्द का प्रयोग उपनिषदों में कहीं-कहीं जीवात्मा के लिए किया गया है, तो कहीं-कहीं चैतन्य विश्वात्मा के लिए किया गया है। प्रश्नोंपनिषद् के चतुर्थ प्रश्न⁽²⁷⁾ में पुरुष शब्द जीवात्मा के अर्थ में आया है। वही पुरुष का परमात्मा के अर्थ में मुण्डक उपनिषद् में वर्णन प्राप्त होता है। जिस प्रकार सुप्रज्वलित अग्नि से चारों ओर चिनगारियाँ एक सी ही फैल जाती हैं। उसी प्रकार उस अक्षर से प्रपञ्च की उत्पत्ति बताकर उसे सृष्टि के बाहर-भीतर व्यापक रहने वाला कहा गया है। इसी को आगे चलकर सर्वभूतान्तरात्मा कहा गया है।⁽²⁸⁾ छान्दोग्य उपनिषद् में जब इन्द्र एवं विरोचन प्रजापति के पास आत्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिये आते हैं तब वे सबसे पहले जिस पुरुष⁽²⁹⁾ को आत्मा बताते हैं वह शरीर धारी जीव ही है।

'पुरुष' शब्द की व्युत्पत्ति 'पुरिषेते इतिपुरुष' से मानी जाती है जिसका शाब्दिक अर्थ 'पुर' अर्थात् नगर रूपी शरीर में निवास करने वाला 'पुरुष' शब्द से वाच्य है। यहाँ पर परमात्म-तत्त्व का वाचक हो जायेगा। इस प्रकार पुरुष शब्द को जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों रूप में विभिन्न दार्शनिकों ने लिया है। सांख्य-दर्शन में इसी पुरुष को 'ज्ञ' 'द्रष्टा' या 'आत्मा' इत्यादि नामों से उल्लिखित किया गया है। यहाँ प्रकृति व पुरुष इन दो पदार्थों के सहयोग कही अन्य 23 व्यक्त पदार्थ की उत्पत्ति होती है और इनके विशिष्ट ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है— व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् सांख्य का पुरुष निगुण है, पुरुष विवेकी है। यह निरवयव है, ज्ञाता है। पुरुष प्रत्येक शरीर से भिन्न है। पुरुष चेतन है अपरिणामी है, अपरिवर्तनशील है, वह न किसी का कारण है और न किसी कार्य। पुरुष निष्क्रिय है, कूटस्थ नित्य है। शुद्ध चैतन्य पुरुष का स्वरूप है। यह राग और द्वेष से मुक्त है।

सांख्य दर्शन के चरम तत्त्व 'पुरुष' के संबंध में गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि उसके तीन भेद हैं—चैतन्य स्वरूप "स्वतंत्र पुरुष" अहंकार वशत् स्वयं को कर्ता भोक्ता समझने वाला, "बद्धपुरुष" तथा तत्त्वज्ञान से मोक्ष प्राप्त किया हुआ। "मुक्त पुरुष"।

अतः हम देखते हैं कि जीव आत्मा ही है और आत्मा ब्रह्म है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म का सीधा सम्बन्ध है। सत्य है कि दोनों जीव और ब्रह्म एक हैं। भेद तो मात्र व्यवहारिक जगत् की बात है यहाँ हम कह सकते हैं कि जो ब्रह्म है वहीं जीव है, और जो जीव है वही ब्रह्म है। इसी को उपनिषदों में 'तत्पमसि' के द्वारा समझाया गया है।

संदर्भ सूची :-

1. अत्सातत्यगमने, पाणिनीय धातु पाठ, 1/37
2. आत्मा—“अतीतसन्ततभावेनजागृदादिसर्वास्वस्थासुअनुवर्तते।”
अत् सातत्यगमने + मनिनि, शब्दकल्पद्रुम, प्रथम खण्ड, पृ. 172
3. निरुक्त 3/15
4. न्यायभाष्य 1/1/10
5. तमेवविद्वान ने विभावमृत्योरात्मान धीरमजर युवानम्। अथर्ववेद 10/8/4
6. ऋग्वेद 10/58
7. वृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/1
8. छांदोग्य 7/25/2
9. वृ० उप० 4/5/6
10. वृ० उप० 2/5/19
11. वृ० उप० 1/4/10
12. भारतीय दर्शन शोभानिगम, पृ० 235
13. (क) आत्मान् रथिनंविद्धि शरीरंरथमेवतु।
बुद्धिंतुसारथिंविद्धि मनः प्रग्रहमेवच।। कठो० 1/3/3
(ख) इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयान् स्तेशगोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्मनीशिणः।।— कठो० 1/3/4
14. मैत्री उपनिषद् 11/3-4
15. न जायतेप्रियते वाविपिश्च—त्रायंकुतश्चित्र बभूवकश्चित्।
अजोनित्यः शश्वतो यं पुराणो न हन्यतेहन्यमाने शरीरे।। कठोपनिषद् 1/2/8
16. कठोपनिषद् 1/3/10
17. कठोपनिषद् 1/3/11
18. डॉ० राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2, पेज 138
19. विज्ञातारमरेकेनविजानीयात् वृहदारण्यक, उपनिषद् 2/4/14
20. न्यायभाष्य 3/1/11
21. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/20
22. तर्कसंग्रह, पृ० 9
23. भारतीय दर्शन, सतीश चन्द्र, चट्टोपाध्याय और धीरेन्द्र मोहन, पृ. 25
24. छा० उप० 3/14/14
25. वृहदारण्यक उपनिषद् 2/5/19
26. भारतीय दर्शन शोभानिगम— पृ० 236,
27. तेनतर्ह्येशपुरुषो न शृणोति न पश्चति न जिघ्रति—प्रश्नोपनिषद्।
28. दिव्योद्दामूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोद्दामूर्तः।
मुण्डक उपनिषद् 2/1 भारतीय दर्शन का इतिहास सिंह एवं शास्त्री पृष्ठ 43 से उद्धृत।
29. य एशो क्षिणी पुरुषो दृश्यते—छान्दोग्य उपनिषद्।
30. सांख्यकारिका संख्या – 2



स्त्री विमर्श की अवधारणा

के. एम. प्रतिभा, शोधार्थी,

डॉ० सत्येन्द्र कुमार, सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, झारखण्ड।

विगत दो दशकों से स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श, स्त्रीवाद, स्त्रीवादी विमर्श आदि रूपों में स्त्री विश्वभर के साहित्य में चर्चा और विवेचन का विषय रहा है। वास्तव में पूर्व की स्त्री, पश्चिम जगत की स्त्री, सशक्त स्त्री, अबला स्त्री, पुरातन स्त्री और आधुनिक स्त्री, अच्छी व बुरी स्त्री, नायिका और खलनायिका की छविवाली स्त्री, स्त्री के लिए पूर्व निर्धारित मापदण्ड और किसी खाँचे फ्रेम में फिट होने वाली स्त्री, अब वर्जना – टेबू, प्रतिबंध और हताशा–निराशा के सारे अंकुश विलगाकर वह अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता और स्वायत्त इच्छाओं के आयामों में जीना चाहती है।¹

आधुनिक काल में विश्व के इतिहास में स्त्री जागरण यूरोप में फ्रांस की क्रांति तथा अमरीकी आंदोलन के साथ आरंभ हुआ। एंगल्स की महत्वपूर्ण कृति 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में मार्क्सवाद के आधार पर स्त्रीवाद का गंभीर विश्लेषण हुआ है। फ्रांस की लेखिका, सीमोन द बोउवार ने 'द सेकेंड सेक्स' में स्त्रीवाद की आलोचना शुरू की। भारत के इतिहास में झांका जाए तो पुराण काल में स्त्री को हम विदुषी के रूप में देख सकते हैं। जहाँ वह पुरुषों के समान अधिकारों को धारण कर समाज में समानता रखती थी। कालांतर में इसमें बदलाव आता गया और स्त्री को समाज में दोगम दर्जा दिया जाने लगा। उसके सारे निर्णय के अधिकार छीन लिए गए। इसके परिणामस्वरूप वह पुरुष के सामने निर्बल बन गयी। उसका समाज में तरह–तरह से शोषण किया जाने लगा। इस तरह से अभिशप्त जीवन जीने के लिए वह बाध्य हो गयी। जीवन के रथ का एक पहिया कीचड़ में धँस गया, ऐसे में समाज का विकास कैसे संभव था? लेकिन समय बदलता रहता है। आधुनिक कालमें अनेक समाज सुधारकों ने यह जान लिया कि समाज की स्थिति में सुधार लाना है तो स्त्री की स्थिति में पहले सुधार लाना आवश्यक है, इसलिए स्त्री सुधार पर ध्यान केंद्रित किया गया।²

पाश्चात्य जगत में सीमोन द बोउआ द्वारा विरचित 'द सेकेंड सेक्स' (स्त्री उपेक्षिता) पुस्तक जहाँ स्त्री–विमर्श का अभूतपूर्व आख्यान मानी जाती है वही भारतीय जन–जीवन में सातवीं शताब्दी में विरचित 'कुंडनीमतम' और बीसवी शताब्दी के गुजराती लेखक रमणलाल देसाई की कृति 'अप्सरा' का विशिष्ट महत्व है जिसमें स्त्री–जीवन के स्वायत्त स्वरूप वर्जनाओं, स्त्री सुलभ प्रवृत्तियों और पितृ सत्तात्मक समाज के दुराग्रहों का लेखा–जोखा चित्रित हैं।³ पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम स्त्री–विमर्श को, स्त्री चेतना के उभरते प्रश्नों को केवल विगत दो दशकों की थाती मान ले। लगभग पचास वर्ष पूर्व स्त्री के अनुभव की प्रामाणिकता की बात

महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में कर चुकी हैं।

महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक विचार लेखन में स्वीकारा है कि स्त्री को घर परिवार, घर, संतानोत्पत्ति वण्यवस्तु बनाने के पीछे वेदकालीन परंपरा कम दोषी नहीं है। यथा—वेदकालीन समाज में पुरुष ने नवीन देश में फैलने के लिए संतान की आवश्यकता के कारण और अनाचार को रोकने के लिए विवाह को बहुत महत्व दिया और संतान की जन्मदात्री होने के कारण स्त्री भी अपूर्व गरिमामयी हो उठी। उसे यज्ञ जैसे धर्म कार्यों में पति का साथ देने के लिए सहधर्मिणीत्व और गृह की व्यवस्था के लिए गृहिणीत्व का श्लाघ्य पद भी प्राप्त हुआ, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत होने परभी आर्थिक दृष्टि से वह नितांत परतंत्र ही रही। गृह और संतान के लिए द्रव्य उपार्जन पुरुष का कर्तव्य था, अतः स्वभावतः उसी के अधिकार में रहा। गृहिणी गृहपति की आय के अनुसार व्यय कर गृह का प्रबंध और संतान—पालन आदि का कार्य करने की अधिकारिणी मात्र थी।⁴

स्त्री साक्षात् शक्ति है। सृष्टि के विकास क्रम में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। वह सौंदर्य, दया, ममता, भावना, संवेदना—करुणा, क्षमा, वात्सल्य, याग और समर्पण की मूर्ति है। इन्हीं गुणों के कारण उसे देवी कहा जाता है। मनुस्मृति में लिखा है —

“यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।”

अर्थात् जहाँ नारियों का मान—सम्मान होता है वहाँ देवताओं का वास होता है तथा जहाँ नारियों का अनादर होता है वहाँ समस्त कार्य विकल हो जाते हैं।⁵ स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण व अधूरा समझा गया है। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व मंच पर कहा था, “औरतों की स्थिति में सुधार लाए बिना कल्याण असंभव है, जैसे कि एक पंख से उड़ान भरना।”⁶

आधुनिक स्त्री बाह्य स्तर पर काफी आगे पहुँच चुकी है किंतु अभी भी जितना आगे पहुँचना चाहिए, वहाँ तक नहीं पहुँच सकी है। “हमारे भारतीय समाज में दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती देवी के रूपों में औरतों की पूजा की जाती है परंतु व्यावहारिक धरातल पर उसे मानवीय भी नहीं समझा जाता। वह पाषाण की मूर्ति की भाँति सब कुछ सहे, यही भारतीय समाज चाहता है।”⁷

स्त्री विमर्श को व्याख्यायित करते हुए लता शर्मा लिखती हैं, “स्त्री विमर्श स्त्री को स्वयं को देखने—जाँचने—परखने का पर्याय है। आज तक हम अपने बारे में, अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के बारे में जो कुछ भी जानते हैं किसी संत—महात्मा विचारक—मनीषी का लिखा पड़ा है। हम स्वयं को अपनी ही दृष्टि से तौलें, परखें—यह नवीन आयाम है।”⁸

मैत्रेयी पुष्पा अनुसार, “नारीवाद ही स्त्री विमर्श है, नारी की यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है।”⁹ अतः कहा जा सकता है कि स्त्री के बारे में हर समस्या पर पूरी तरह से विचार करना ही स्त्री विमर्श है।

स्त्री विमर्श के संबंध में डॉ० विनय कुमार पाठक के विचारों से पूर्णतः सहमत हुआ जा सकता है। उनके अनुसार “स्त्री—विमर्श आंदोलन किसी भी तरह से और किसी भी रूप में प्रतिशोध—पीड़ित नहीं है। इस आंदोलन से जुड़ी हुई स्त्रियाँ मानवियाँ हैं। इन्हें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भगिनी भाव चाहिए। ये स्त्रियाँ अच्छी तरह जानती हैं कि अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं, एक दमन, शोषण और उत्पीड़न का जवाब दूसरा दमन, शोषण

और उत्पीड़न नहीं। स्त्री-विमर्श की समर्थक स्त्रियाँ पुरुष नहीं बनना चाहतीं। ये स्त्रियाँ अपना विशिष्ट दैहिक, मानसिक और भाषिक संरचना पर गर्व करती हैं। इनके लिए जो प्राकृतिक विशिष्टताएँ हैं, वे शर्मनाक नहीं, शर्मनाक आरोपित सामाजिक मानदंड हैं जो दोहरे हैं और जिन पर पुनर्विचार होना ही चाहिए ताकि विकास के अवसर सबको समान मिल सकें।¹⁰

समग्रतः स्त्री विमर्श बहुआयामी है। स्त्री विमर्श की नयी भाषा, नयी अभिव्यक्ति, नये अनुभव, नये परिप्रेक्ष्य से सामने आने लगे हैं। स्त्रियों ने अपनी खामोशी को तोड़ा है। उन्होंने तीखी प्रश्नाकुलता के साथ अपनी खामोशी को वाणी दी है। उसमें स्त्रियों की व्यथा, दुख और संघर्ष की अभिव्यक्ति है। आधुनिक स्त्री विमर्श की कोई इकलौती परिभाषा संभव नहीं है। बावजूद इसके आवश्यकता है कि इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को देवी, दासी या वस्तु न मानकर व पुरुषों के समान ही एक मानवीय प्राणी ही समझा जाए जो उनके कंधे से कंधा मिलाबर विकास की भागीदारी गाड़ी का बराबरी का पहिया बने तभी स्त्री विमर्श के प्रयासों को सार्थक समझा जाएगा।

संदर्भ :-

1. पाटील, डॉ० रेखा, समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, विधा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2013, 2017 पृ० 17
2. दौलतकर, डॉ. नीता और डॉ. राजेन्द्र तोमर, नव विमर्शनव चिन्तन, शुभम पब्लिकेशन, संस्करण-2018, पृ० 51-52
3. रोहिताश्व, निजी वार्ता, 27 नवम्बर, 2009
4. वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2008, पृ० 93
5. चंद्रा, मुदिता और सुलक्षणा टोप्पो, आधुनिक एवं हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2008, पृ० 623
6. अहमद, डॉ० एम० फिरोज (सं), वाङ्मय, पृ० 3
7. चंद्रा, मुदिता और सुलक्षणा टोप्पो, आधुनिक एवं हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण -2008, पृ० 524
8. शर्मा, लता औरत अपने लिए, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ० 149
9. यादव, राजेन्द्र (सं), हंस, अक्टूबर 1996, पृ० 75
10. पाठक, डॉ. विनय कुमार, स्त्री-विमर्श (पुरुष-रचनाधर्मिता के विशेष सन्दर्भ में), भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2009, पृ० 22



विकलांगता केंद्रित उपन्यास 'इनबॉक्स' और हिंदी उपन्यासों में विकलांगों की सामाजिक मनोदशा

स्मृति कुमारी

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शोध सारांश :-

साहित्य को देखने के लिए भिन्न-भिन्न नजरिए होते हैं जो हमारी जीवन दृष्टि पर निर्भर करते हैं और साहित्य का भी यह दायित्व बनता है कि वह हमारे समाज के हर पहलू को बिना किसी पक्षपात के हमारे समक्ष लाए। इसलिए पिछले दो-तीन दशकों में एक साथ बहुत से विमर्शों ने साहित्य और संस्कृति के साथ-साथ संपूर्ण चिंतन जगत को प्रभावित किया है। जिसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श को प्रमुख रूप से देखा जाता है। लेकिन इन सब से परे एक विकलांगता विमर्श भी है जिसे आज भी समाज और साहित्य ने चाहे अनचाहे उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। हिंदी साहित्य में विकलांग विमर्श आधारित हिंदी उपन्यासों का सृजन बहुत प्रारम्भ से होता चला आया है। लेकिन मेरे इस शोध लेख का उद्देश्य हिंदी उपन्यास की परंपरा में विकलांगों की स्थिति और उनके मनोदशा का अध्ययन करना है और खासकर गीता पंडित के उपन्यास इनबॉक्स के माध्यम से विकलांग पात्रों की मजबूरी व परिस्थितियों को व्यक्त करना है। जो न सिर्फ विकलांग पात्रों की समस्या को उजागर करता है बल्कि उस समस्या को समाधान बनाकर पेश भी करता है।

बीज शब्द :- विकलांगता विमर्श, आर्थिक संघर्ष, शैक्षिक अवनति, आत्मविश्वास, बेरोजगारी, जिजीविषा।

शोध पत्र :-

समकालीन समय में जब हिंदी साहित्य में विकलांगों पर लिखे साहित्य को देख रही हूं तो पाती हूं कि विकलांगों के प्रति कभी भी हमारा समाज सकारात्मक दृष्टि संपन्न नहीं रहा है। विकलांगता को प्राचीन काल से ही समाज और मानव जाति के लिए कभी न समाप्त होने वाली समस्या के रूप में देखा गया है। हालांकि सम्यक ललित, जो एक विकलांगता अधिकार कार्यकर्ता, लेखक और तकनीक विशेषज्ञ है उन्होंने 2021 ई. से 'विकलांगता विमर्श' के साथ-साथ 'विकलांगता केंद्रित साहित्य' शब्दावली का प्रयोग आरंभ किया है। उनका मानना है कि 'विकलांगता केंद्रित साहित्य' विकलांगता विमर्श से अधिक व्यापक और सटीक शब्दावली है।

जब मैं गीता श्री का उपन्यास 'इनबॉक्स' पढ़ रही थी तो मेरे मन में एक साथ कई सारे सवाल उठ रहे थे कि क्या हमारा समाज वाकई विकलांगों के प्रति संवेदनशील है? आज भी हमारे हिंदी साहित्य में अन्य विमर्शों की तरह विकलांग विमर्श को क्यों उतना महत्व नहीं दिया गया? साहित्य तो दूर व्यावहारिक जीवन में भी इनकी

हिस्सेदारी क्यों उतनी नहीं है? क्या इन सबके लिए आर्थिक स्थिति जिम्मेदार है?

जिस समाज में हम सामान्य लोगों (शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से स्वस्थ) को जीवन-यापन करने के लिए दिन-रात एक करना पड़ता है। प्रतिस्पर्धा की दौर में हम हर रोज़ खुद को दांव पर लगाते रहते हैं तो फिर उनके लिए तो सच में मुश्किल हो जाता है आगे बढ़ना जो सामान्य माहौल के मोहताज होते हैं लेकिन वो कहते हैं न कि ईश्वर यदि किसी से कुछ छीनता है तो उसके बदले में कुछ 'और' प्रदान कर देता है। जो व्यक्ति इस 'और' की पहचान कर लेता है उसका जीवन सहज और सुगम हो जाता है। जिसका पुख्ता प्रमाण हमें गीता पंडित के उपन्यास इनबॉक्स के मुख्य पात्र 'नन्नु' में देखने को मिलता है।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए आपकी आत्मीयता पूरी तरह से इसके किरदार 'नन्नु' से जुड़ जाती है। उसको खुश देखकर आप खुद भी खुश हो जाते हैं तो उसके चेहरे की उदासी आपको भी अंदर तक झकझोर देती है। कुछ इस तरह से इस उपन्यास को लिखा गया है। हालांकि हिंदी उपन्यास की परंपरा में विकलांगता पर इसके पहले भी कई उपन्यास रचे गए हैं। जिसकी प्रथम अभिव्यक्ति प्रेमचंद रचित 'रंगभूमि' में हुई। पहली बार कथा साहित्य में सूरदास जैसे दृष्टिहीन पात्र को उपन्यास को नायक बनाया गया। सूरदास नामक किरदार जीवन संघर्ष से न तो हार मानता है और न ही विकलांगता को अपनी कमजोरी बनने देता है। इसके बावजूद इसका मूल उद्देश्य सिर्फ विकलांगता विमर्श नहीं था बल्कि यह उपन्यास और भी कई सारे आयाम को समान महत्व देती है। उसी तरह खंजन नयन उपन्यास का नायक सूरदास भी कृष्ण भजन गाकर जीविकोपार्जन करता है और आर्थिक तंगी से आजीवन जूझता रहता है। हम देखते हैं कि हमारे समाज में विकलांगता के प्रति सदियों से नकारात्मक दृष्टि, संकीर्ण मानसिकता, रूढ़िवादी विचारधारा तथा दया जैसे भाव विद्यमान रहे हैं। विकलांगता को हम पूर्व जन्म का पाप मान लेते हैं। इसी मानसिकता की उपज है की हम विकलांगता के आधार पर ही किसी व्यक्ति का नामकरण और रोजगार तय करते हैं। जिस पर व्यंग्य करते हुए प्रेमचंद अपने उपन्यास रंगभूमि में लिखे भी हैं – 'भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की ज़रूरत होती है न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीख मांगना बना बनाया काम है।'

लगभग सौ वर्ष के अंतराल के बाद जब गीता पंडित अपना उपन्यास इनबॉक्स लिखती है तो उसका कथा-विन्यास सारे रूढ़िवादी और नकारात्मक सोच को मात देती है तथा एक ऐसे पात्र को मुख्य पात्र बनाया जाता है जो पोलियों से ग्रस्त है और इस उपन्यास की पूरी कथा-वस्तु इसी पात्र के इर्द-गिर्द घूमती है। पत्रात्मक शैली में लिखी गई इस उपन्यास की भाषा शैली इतनी जीवंत है कि आप बिना बोझिल हुए एक-एक करके सारे भाव-भंगिमा में डूबकर एक ही बैठक में उपन्यास के अंतिम पृष्ठ पर पहुंच जाते हैं और मन में एक कसक रह जाती है कि काश! कोरोना न आया होता और नन्नु का अंत ऐसे त्रासदी की तरह न हुआ होता। इस उपन्यास की सबसे मुख्य बात यह है कि इसका विकलांग पात्र अपनी मजबूरी व परिस्थिति से संघर्ष करते हुए दृढ़ता के साथ उभरता है। अभी तक जिस रूढ़िवादी परंपरा के शिकार अच्छे से अच्छे लेखक हो गए और विकलांग पात्रों को भीख या जीविकोपार्जन के संघर्ष में ही डूबा दिखाए तो वही इस उपन्यास का नन्नु नामक पात्र अपनी काबिलियत के बल पर आगे बढ़ता नज़र आया और यहां तक कि विकलांग कोटे के नाम से दी जाने वाली आरक्षण को भी वह स्वीकार नहीं करना चाहता था।

लेखिका लिखती है – 'यूं तो गवर्नमेंट के विकलांग कोटे में आसानी से तुम्हें जॉब मिल सकता था लेकिन

तुम अपनी योग्यता के आधार पर और मुंबई में ही जॉब चाहते थे। इसका विशेष कारण यह था कि तुमने स्वयं को कभी विकलांग नहीं समझा। समझना भी नहीं चाहिए था क्योंकि तुम औरों से कहीं अधिक स्मार्ट और इंटेलिजेंट थे।'

हिंदी उपन्यास में विकलांग पात्रों की परंपरा में हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो पता चलता है आर्थिक समस्या हमेशा से इनके सामने विकराल मुख खोले खड़ी रहती है और आज भी विकलांगों का यथार्थ हमें ट्रेन पर चढ़ते-उतरते, बाजार में भीख मांगते, गली मोहल्ले धक्का खाते दिख ही जाते हैं। उदाहरण स्वरूप :- 'कठगुलाब' उपन्यास की नायिका स्मिता आर्थिक विषमता की इस कदर शिकार होती है कि वह मानसिक दृष्टि से ही कमजोर चरित्र बन जाती है तो वही 'बेघर' उपन्यास में विकलांग मां की देखभाल हेतु संजीवनी आजीवन आर्थिक संघर्ष करती है। पक्षाघात के रोगी होने के कारण नीलिमा के पिता 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में आर्थिक विषमता से जूझते हुए जीवनयापन करते हैं। 'यह पथ बंधु था' उपन्यास में विकलांगता के पश्चात भी कथानायक व्यापार करता है तथा अपनी आर्थिक स्थिति को संतुलित बनाता है। 'आवां' उपन्यास भी आर्थिक संघर्ष को व्यक्त करता है। इस उपन्यास की नायिका नमिता पिता के पक्षाघात होने के पश्चात आजीवन परिवार को आर्थिक मदद प्रदान करने व पिता की देखभाल के लिए समय व समाज के शोषण की शिकार हो कर भी आर्थिक संघर्ष करती है। 'उसके हिस्से की धूप' का विकलांग नवयुवक पोलियों में अपने दोनों हाथ खो चुकने के बाद भी शिक्षा प्राप्त कर नौकरी पाने की उम्मीद में संघर्ष करता है। 'विजन' उपन्यास की नायिका आंखों की डॉक्टर होती है परंतु आर्थिक लालच के लिए अपने ससुराल वाले की साजिश की शिकार होती है और अंततः विक्षिप्तावस्था में आ जाती है। 'ज्यों मेहंदी का रंग उपन्यास' विकलांग विमर्श पर आधारित ऐसा उपन्यास है जिसके सभी पात्र विकलांग हैं तथा ददा जी द्वारा चलाए जा रहे अस्पताल में सभी विकलांगों को योग्यता के अनुसार रोजगार दिया जाता है ताकि वे भीख न मांगें और आत्मसम्मान से भरा जीवन जी सकें। इसी तरह अलका सरावगी अपने उपन्यास 'कोई बात नहीं' में विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा की समस्या को चित्रित करते हुए कहती हैं - 'मौटेसरी स्कूल की प्रिंसिपल मिसेज शाह ने उसे भरती करने से यह कहकर इनकार कर दिया था कि दूसरे बच्चों के मां-बाप आपत्ति कर सकते हैं जैसे कि शशांक को कोई छूत की या फैलने वाली कोई बीमारी हो।

आज विकलांग व्यक्तियों के पास उच्च शिक्षा तो है लेकिन रोजगार का अवसर अभी भी कम है। 1977 ई. में श्री मोरार जी देसाई के शासनकाल में दृष्टिहीन व्यक्तियों द्वारा किया गया आंदोलन एक महत्वपूर्ण पहल था जिसने विकलांग व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान किए।

इनबॉक्स उपन्यास में आर्थिक समस्या कभी भी नन्नु को नहीं छू पाती है और यही वजह है कि समाज की उपेक्षा और हजारों तरह के परेशानियों के बावजूद भी वह अपनी मंजिल तक पहुंच पाता है। इस उपन्यास का एक और महत्वपूर्ण किरदार है 'टिया'। जिसके बिना यह उपन्यास इतना असरदायक नहीं हो सकता था। टिया और नन्नु का प्रेम किशोरावस्था का आकर्षण नहीं है बल्कि निःस्वार्थ प्रेम की वह चरम अवस्था है जहां हम अपनी खुशी को नजरंदाज कर अपने प्रेमी को ऊपर रखते हैं। टिया बचपन से ही नन्नु की मदद करती आई और जरूरत पड़ने पर अपने प्यार की खातिर एड़ी चोटी की जोर भी लगाई और अंततः शादी के बंधन में बिना किसी सोच विचार के बंध गई। पूरे उपन्यास में हम देखते हैं कि नन्नु की दो शक्ति उभर कर सामने आई है एक मां तो दूसरी बचपन की दोस्त टिया। यह उपन्यास इन दोनों नारी शक्ति के बिना अधूरा रहता। उपन्यास

में जब नन्नू मां से पूछता है –‘मां मैं और बच्चों की तरह क्यों नहीं हूँ तो मां कहती है तुम सबसे अलग हो इसलिए स्पेशल हो।’ मां इस पूरे उपन्यास में अपने नन्नू पर नकारात्मकता को हावी होने नहीं देती। हमेशा उसका संबल बढ़ाते रहती है। यह पूरा उपन्यास अपंगता के ऊपर एक मां का आत्मविश्वास ही तो है जो नन्नू को उसके मुकाम तक पहुंचाती है। साथ ही यह उपन्यास लेखिका के लिखने के नायाब तरीके को भी व्यक्त करती है जो एक दम पर पूरा उपन्यास पढ़ने को आपको विवश कर देगी और अगला अध्याय आपको उत्सुकता से बांधे रखती है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में विकलांगता का इतिहास संवेदना के इतिहास से प्रेरित और संरक्षित है। विकलांगता एक ऐसी शारीरिक और मानसिक अक्षमता होता है जिसके चलते कोई व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की तरह न तो किसी कार्य को करने में सक्षम होता है और न ही हमारा समाज उससे सामान्य व्यवहार रखता है। हालांकि इस पूरी क्रियाओं में पात्र की जिजीविषा, आत्मविश्वास, इच्छाशक्ति और अभ्यास का योगदान रहता है जो उसे हर रोज संघर्ष करने के लिए आत्मबल देता है।

हिंदी उपन्यास में विकलांग पात्रों की मनोदशा का अध्ययन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि विकलांगों में सशक्तता समर्थता का संचार या उन्मेष कभी प्यार से समझा-बुझाकर किया जाता है तो कभी उसके अंतर-स्थल पर मार्मिक प्रहार करके। इसलिए तो दिनकर जी लिखते हैं कि – ‘जब कभी अहं पर नियति चोट देती है तब उससे कोई बड़ी चीज जन्म लेती है’।

संदर्भ सूची :-

1. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1996
2. पंडित, गीता, इनबॉक्स उपन्यास, श्वेतवर्ण प्रकाशन, संस्करण 2022
3. सरावगी, अलका, कोई बात नहीं, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015
4. प्रेमचंद, रंगभूमि, हिंद पॉकेट बुक, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1986
5. सिन्हा, मृदुला, ज्यों मेहंदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, नोएडा संस्करण 2015
6. त्रिपाठी डा. रेणु, भारत में आर्थिक नियोजन, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली।
7. मिश्र, अनंत राम, बद्रीनारायण, साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
8. मिश्र, विनोद कुमार, विकलांगता समस्याएं और समाधान, प्रकाशक— जगत राम एंड संस।
9. मुद्गल चित्रा, आवां, सामयिक प्रकाशन।
10. अग्रवाल गीता, विकलांगता समस्या और समाधान।
11. पाठक, विनयकुमार, कथा साहित्य में विकलांग विमर्श।



प्रो. 'आदेश' कृत 'रघुवंश-शिरोमणि श्रीराम' में सीता का चरित्र

डॉ. राजल गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, वैश्य महाविद्यालय, रोहतक, हरियाणा-124001

भारतीय संस्कृति की प्रतिरूप माता सीता लक्ष्मी स्वरूपा, जग-जननी, भयहारिणी, मंगलकारिणी माता सीता की जन्म की मंगल बेला का प्रो. आदेश ने इस प्रकार वर्णन किया है –

जय जयति जग-जननी जनक,
दुहिता जगत-भयहारिणी,
मंजुल मयंकमुखी मनोहर महा मंगलकारिणी।
सौदामिनी सम द्युति
अनादि अनन्त तिमिर विदारिणी।
सीता पुनीता अवनि –
आँचल में उदित भव-तारिणी।।

'कन्या सुख कर्ता दुःख हर्ता होती है'। सीता के जन्म के साथ ही मिथिला के छाए संकट अकाल-सूखा आदि दूर हो गए, समस्त जन-मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। सीता के बाल्याकाल का वर्णन प्रो. आदेश ने कुछ इस प्रकार किया है –

पलक झपकते बड़ी हो गई।
सबकी ही सर चढ़ी हो गई।
प्यारी-प्यारी बातें करती।
सबका ही मन मोहित करती।।
सदा धूल में लिपटी रहती।
किंतु पिता से चिपटी रहती।।

बालिका सीता के युवावस्था में कदम रखते ही उनके रूप की आभा कुछ इस तरह थी कि दूर-दूर तक उसकी चर्चा होती थी –

नयन देख खंजन पाठीन भ्रमिता होते थे।
चंचरीक मुख पुण्डरीक प्रति नत होते थे।

कृष्ण वर्ण—थे केश कपोल रुचिर रतनारे,
दूर—दूर तक विस्तृत थी मुख—चंद्र—विभा रे !

जब सीता का श्रीराम से मिलन हुआ उसी समय से ही उनके मन मंदिर में श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम भावना बढ़ गई थी। वे हर पल माँ गौरी से, धरती माँ से राम जी के पति रूप में पाने की कामना करती थी। जब राम शिव—धनुष के समीप आते हैं, तब सीता की मनःस्थिति का प्रो. आदेश ने इस प्रकार वर्णन किया है—

जनक सुनयना हुए विमोहित,
सीता रह गई स्तब्ध ठगी।
गौरी माँ से करे प्रार्थना,
अविरल उसकी प्राण—खगी।।

विवाह उपरांत अयोध्या आकर माता सीता अपने हाथों से अपने परिवार के सभी सदस्यों की सेवा सुश्रुषा करती रही है। वह वही कार्य करती है, जो उनके स्वामी को अच्छा लगता है। जब अयोध्या पर विपत्ति का समय आता है, तब माता सीता भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पतिव्रता नारी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वह समस्त राजसी सुखों का त्याग करने में पल भर की भी देरी नहीं करती है। अपने तर्क में वे इतना ही कहती है कि स्त्री ही पति के भाग्य का अनुसरण करती है; स्त्री के लिए पति, तो देवताओं का भी देवता होता है। जब तीनों माताएँ उन्हें आज्ञा देती हैं कि तुम राम संग वन को न जाओ, तब बड़े ही विनम्र भावों में माता सीता करबद्ध प्रार्थना करती है, जिसका प्रो. आदेश ने बड़ा ही हृदयस्पर्शी शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है —

माता—त्रयी क्षमा कर देना मेरी आज धृष्टता।
यदि हो जाए शिथिल
मेरी माताओं ! रंच शिष्टता।।

- - - -
एतदर्थ कर क्षमा मुझे पति—संग विपिन जाने दें।
पातिव्रत्य वन मार्ग महान,
सास—त्रय ! अपनाने दें।
इतना कह, कर चरण—स्पर्श सबके,
पति के संग चल दी।।

जब भरत अपने भाई राम से मिलने त्रिकूट की तरफ आ रहे होते हैं तब लक्ष्मण को उन पर शंका हो जाती है, क्योंकि लक्ष्मण एक तो अपने भाई राम से अत्यधिक प्रेम करते हैं, दूसरे उन्हें दूर से ही अयोध्या की चतुरंगिणी सेना भी दिखाई देती है, तो उन्हें शंका हो जाती है कि भरत राम को जंगल में अकेला समझ कर उनका बध करने आ रहा है। लक्ष्मण अत्यंत क्रोध में भरत का वध करने के इरादे से जैसे ही जाने लगते हैं वैसे ही सीता अपनी सहजता से लक्ष्मण को रोकती है और कहती है —

मत कहो अन्याय अघ की मूर्ति है।
भरत भ्राता भक्ति की प्रतिमूर्ति है।
अमल संत स्वभाव श्लाघ्य सुशील है।

स्नेह शिष्टाचार संयम—शील है ॥
कर न सकता लोभ कलुषित कामना,
है न मन में स्वार्थ या दुर्भावना ।
प्रश्न करना आचरण पर व्यर्थ ही ।
भरत ही पुण्यात्मा हैं, सर्व समर्थ हैं ॥

सीता का चरित्र एक महान प्रतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित है, जो समस्त नारी जाति का गौरव बढ़ाती है। सीता समस्त सुख वैभव को छोड़कर अपने स्वामी के साथ वन में जाने का निर्णय लेने में एक पल की भी देरी नहीं करती। वह वनवास के कष्टपूर्ण जीवन में भी मुस्करा कर अपने स्वामी के जीवन में मुस्कराहट बिखेरती है। प्रो. 'आदेश' ने सीता के चरित्र को बहुत ही सुंदर शब्दों में इस प्रकार लिखा है —

सीता मंद—मंद मुस्काए ।
रघुवर के संग चित्रकूट में,
पल—पल सरस बनाए ।
+ + +
पत्नी धर्म निर्वहन करती,
पति—सेवा में रत हो ।
श्रांत शिथिल हो किंतु न मुख पर,
श्रांति भाव दर्शाए ॥

ऐसा ही मनोहारी दृश्य का प्रो. 'आदेश' ने कुछ इस प्रकार चित्र सा खींचते हुए लिखा है —
करें अनुसरण जानकी, आगे चलते राम ।
सीता के पीछे चलें, सतर्क लखन ललाम ॥

जब राम—लक्ष्मण सीता दण्डक वन में विचरण कर रहे होते हैं और राम महर्षि अगस्थ के समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं कि अब से पूरे दण्डकारण्य में सुख—शांति, अमन—चैन को बढ़ाना ही मरे जीवन का मुख्य लक्ष्य रहेगा। अपने स्वामी की बात का अनुमोदन करते हुए माता सीता समस्त जग में खुशियाँ बिखेरने की बात करती हैं और कहती हैं कि आओ हम सब मिलकर एक नई क्रांति और शांति—सुख का शासन प्रतिष्ठित करें। अब कोई भी अंधेरा खुशियों के प्रकाश को आहत नहीं करेगा —

आज फूँके शंख नूतन क्रांति का,
पुनि करें शासन प्रतिष्ठित शांति का ।
भाव जागे विमल जग—परिवार का ॥
+ + + +
अब न तम आलोक को आहत करे,
आपदा कोई न खंडित व्रत करे,
दें सजा जग, दीप—पारावार का ॥

माता—सीता के चरित्र में नारी—सुलभ—सहज नारी हठ त्रिया—हठ का भी 'आदेश' ने सुंदर चित्रण किया

कि किस तरह माता सीता स्वर्ण-हिरण के लिए अपने पति राम से हठ करती हैं। राम उन्हें बार-बार समझाते हैं कि सोने के हिरण नहीं होते, यह कोई असुरी माया लग रही है। लक्ष्मण भी अपनी आशंका जताते हैं, पर देवी स्वरूपा सीता, तो आज त्रिया हठ पर थीं –

समझाय कितना भी पर न जानकी मानीं,
प्रथम बार कर हठ जीवन में, बात न मानी।
यह हठ है न जानकी का, भवितव्य समझकर,
देव-कार्य करने की अविकल मन में ठानी।।

माता सीता के चरित्र में नारी-सुलभ चिंता करने का भाव भी दिखाई देता है जब उन्हें अपने स्वामी के ऊपर आई विपत्ति की आशंका होती है। जब स्वर्ण मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते राम ज्यादा दूर निकल जाते हैं तब मारीच (स्वर्ण मृग) राम की आवाज में सहायता के लिए पुकारता है। अपने स्वामी का कातर स्वर सुनते ही सीता का कोमल हृदय घबरा जाता है, घबराहट में वे यह भी भूल जाती है कि उनके स्वामी, तो समस्त कष्टों का निवारण करने वाले हैं, उन पर विपत्ति कैसे आ सकती है। अपने पति के प्रति अनन्य प्रेम ही था, जो वह सब कुछ भूल कर लक्ष्मण से विनम्र निवेदन भरे स्वर में स्वामी की रक्षा के लिए जाने को कहती है।

सुने! सुने! देवर जी! आर्य पुकार रहे हैं।
नाम तुम्हारा आकुल हो उच्चार रहे हैं।
होता है आभास कि उस पर संकट आया।
एतदर्थ तुमको हे भ्रात! निकट बुलाया।
जाओ! जाओ! शीघ्र, न रंच विलंब लगाओ।
विपदा में हैं प्राण बंधु! जा उन्हें बचाओ।।

माता सीता के गुणों की चर्चा स्वयं भगवान श्रीराम अपने भक्त हनुमान से उस समय करते हैं जब सीता की खोज का अभियान चलाया जा रहा होता है। जब हनुमान माता सीता की खोज के लिए निकलते हैं और पूछते हैं कि मैं माता सीता को कैसे पहचान पाऊँगा और हनुमान यह भी कहते हैं कि माता सीता मुझ पर विश्वास कर सकें कि मैं आपका ही दूत हूँ इसके लिए कुछ गोपनीय बात जो मैं उन्हें आपकी तरफ से बता सकूँ या कोई निशानी भी दे दीजिए। राम के शब्दों को 'आदेश' ने बड़े ही सुंदर ढंग से इस प्रकार लिखा है कि माता सीता के चरित्र की सभी विशेषताएँ सिमट आई हैं। गागर में सागर भरते हुए प्रो. आदेश ने 'सीता' के चरित्र को इस प्रकार लिखा है –

पर ममता की मूर्ति सदा परहित में रत जो,
दया, क्षमा, सहिष्णुता, करुणायुत नारी हैं।
मर्यादाओं की प्रतिमूर्ति, अधिष्ठात्री हैं।
नारी-सुलभ समस्त गुणों की फुलवारी हैं।।

सीता सच्ची पतिव्रता नारी है और संपूर्ण नारी जाति का गौरव है। वह सच्चे हृदय से पति की अनुरागिनी है, उसका मन वचन-कर्म अपने स्वामी श्रीराम के प्रति समर्पित है। त्रिलोक विजयी रावण; जो स्वर्ण-लंकाधिपति है, जिसके समक्ष समस्त देवता लोकपाल आदि हाथ बाँधे खड़े रहते हैं, जिसे स्वयं भगवान शिव से अलौकिक

शक्तियाँ प्राप्त हैं वह रावण जिस सीता के समक्ष प्रेम याचना करते हुए हाथ जोड़ कहता है कि एक बार प्रेम पूर्वक मेरी तरफ देख तो लो। उस रावण को सीता एक तिनके से भी तुच्छ मानती है और कहती है कि मेरी याचना के भी योग्य नहीं हो। मेरे स्वामी श्रीराम के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हो। सीता तो समस्त नगरीय सुखों का त्याग करके अशोक वृक्ष के नीचे सारे कष्ट सहन करते हुए भी हर पल अपने स्वामी के चरणों के ध्यान में मग्न रहती है। प्रो. 'आदेश' ने लिखा है –

हारी न कभी साहस रहती
रत, राम—ध्यान में व्यथित सिया।
चिंतन करती थी अगत—विगत,
का, अविरल पल—पल राम—प्रिया।।

रावण के घमंड पर तीखा प्रहार करते हुए माता सीता कहती हैं –

है सिंधु रहता सिंधु, बिंदु,
सदैव रहता नगण्य है।
तू बिन्दु है, वे सिंधु हैं, तू गरल,
वे अमृत तुल्य हैं।
खद्योत सम 'आदेश' तू,
वे प्रकाश—पुंज आदित्य हैं।
तू भूमि है, वे व्योम हैं,
तू सार है, वे हिरण्य हैं।।

सीता का हृदय उदार है, वे क्षमाशील हैं, रावण के वध के पश्चात् मंदोदरी को धैर्य बँधाते हुए वे अत्यंत मधुर वचन बोलती हैं –

जो भी किया, जिसने किया,
मुझको न रंच अमर्श है।
है भाग्य की छलना जटिल,
सब भाग्य का संघर्ष है।

सीता के महान चरित्र को गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकांड में राम—राज्य वर्णन के माध्यम से बड़े ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है कि किस प्रकार वे शोभा की खान हैं, और अपने स्वामी श्रीराम के हृदय को प्रसन्न करने के लिए हर प्रकार से प्रयासरत रहती हैं –

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील विनीता।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।
जद्यपि गृहं सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।
जेहि विधि कृपा सिंधु सुख मानई। सोई कर श्री सेवसा विधि जानइ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।।

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संत तमनिंदिता ।
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोई ।
राम पदार बिंद रति करति सुभावहि खोई ॥

संदर्भ सूत्र :-

1. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 198
2. वही, पृ. 202
3. वही, पृ. 207
4. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 217
5. वही, पृ. 279-80
6. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 352
7. वही, पृ. 370-71
8. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 398
9. वही, पृ. 412
10. वही, पृ. 452
11. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 452
12. वही, पृ. 503
13. प्रो. हरिशंकर 'आदेश', रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 505
14. वही, पृ. 545
15. वही, पृ. 686
16. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित, श्रीरामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं-2034, सत्ताईसवां संस्करण, पृ. 1049



आदिवासी समाज का स्वरूप

गुलशन कुमार, शोधार्थी,

डॉ. सत्येन्द्र कुमार, सहायक प्राध्यापक,

हिंदी विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, झारखण्ड।

भारतीय समाज और संस्कृति विश्व में अपनी विविधता के लिए जानी जाती है। भारतीय समाज की विविधता को जनजातियां एक निराली छवि प्रदान करती हैं। भारत में जनजातियों की संख्या 500 से अधिक है। इन जनजातियों को वन्यजाति आदिवासी, आदिम जाति, गिरिजन आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

'आदिवासी' शब्द का अभिप्राय आदिम तरीके से जीवनयापन करने वाले लोगों से है। अधिकतर जनजातियां ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती हैं जहां आधुनिक सभ्यता के चरण नहीं पहुंच पाए हैं। आज भी कई जनजातियां आदिम स्तर पर ही अपना जीवन गुजार रही हैं, जबकि दुनिया के अधिकांश देश प्रगति की चरम सीमा पर हैं। रमणिका गुप्ता आदिवासियों के जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं, "आदिवासियों की गति में नृत्य है, वाणी में गीत, जब चलता है तो थिरकता है और वह जब बोलता है तो गीत के स्वर फूटते हैं। वह अकेला नहीं समूह में रहता है, समूह में सोचता है, समूह में जीता है। इसकी समृद्ध संस्कृति का स्वामी सभ्यता की दौड़ में एक षड्यंत्र एवं साजिश के तहत दंभी विजेताओं के समूह द्वारा अलग-थलग कर दिया गया है। आज भी यह प्रक्रिया जारी है बल्कि अब तो उसे खत्म करने की मुहिम चलाई जा रही है, वहीं उनका प्रदर्शन करके उसे भरमाया जा रहा है तो कहीं उत्सव लगाकर उसे दिग्भ्रमित किया जा रहा है। दरअसल आदिवासी अपने श्रम के बल पर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी रहा है। अपने समूह और समाज से जुड़कर, प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी शैली और स्वभाव रहा है। वह प्रकृति से संवाद करता है, उसका सहयात्री है उसको गाय की तरह पोसता और दुहता है, उसे कब्जे में लाने का कभी भी उसका लक्ष्य नहीं रहा है। प्रकृति के प्रकोप को वह सहता है, सहता रहा है और रोकता भी रहा है। उसके मुकाबले खड़ा भी रहता है पर सदैव उसका मित्र बना रहता है। प्रतिशोध की भावना से भरकर वह प्रकृति को नष्ट नहीं करता। वह उसे रिझाता है, मनाता है और केवल जीने भर या जरूरत भर उससे लेता है पर उसे बदले में देता भी है; अपना प्यार, अपनी देखरेख और अपनी संवेदना।'

आदिवासी समाज की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

1. **निश्चित सामान्य भूभाग :-** प्रत्येक जनजाति समाज का एक सामान्य व निश्चित निवास स्थान रहता है जिसमें उनमें सामान्य बोली और सामूहिक भावना दिखाई देती है। हर एक जनजाति का अपना निश्चित ऐसा सामान्य भूभाग पर अस्तित्व होता है।

2. **एकता की भावना :-** प्रत्येक जनजाति समाज के सामान्य भौगोलिक स्थान के साथ उनमें एकता की भावना दिखाई देती है। इनके कुछ खास अवसरों पर यह लोग इकट्ठा होकर अपने कार्य को अंजाम देते हैं।
3. **सामान्य बोली :-** प्रत्येक जनजाति की अपनी अलग और विशिष्ट बोली होती है। इस बोली के कारण उनमें सामूहिक भावना निर्माण होती है। इसी बोली के कारण इनका भूभाग भी जाना जाता है।
4. **अंतर्गत विवाह :-** आदिवासी जातियों में अपने ही सजातीय में विवाह करने का नियम है। इन नियमों के आधार पर ही इन जातियों के अंतर्गत विवाह होते हैं।
5. **रक्त संबंधों के नियम :-** इन आदिवासी जातियों में रक्त संबंधों का बहुत महत्व होता है जो सामूहिक भावना और विकास में सहायक होते हैं।
6. **अपनी सुरक्षा की पहचान एवं आवश्यकता :-** यह जातियां दूसरों के आक्रमण से अपनी रक्षा हो, इस हेतु यह सामूहिक एकता को महत्व देते हैं। इसके लिए उनका एक नेता होता है और उसे सहायता करने के लिए सलाहकार भी रहते हैं। उनकी अनेक टोलियां होने के बाद भी एक टोली का एक नेता रहता है जो सभी की सुरक्षा के लिए कार्य करता है।
7. **राजनीतिक संगठन :-** प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन रहता है। इन राजनीतिक संगठन के आधार पर वे अपने समाज के नियमों का निर्माण करते हैं तथा समाज की सुरक्षा एवं विकास का नियोजन करते हैं।
8. **धर्म का महत्व :-** आदिवासी समाज में धर्म को असाधारण महत्व प्राप्त है। इस आदिवासी जनजातियों में धार्मिक नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। अगर समाज के किसी भी व्यक्ति ने इन नियमों का उल्लंघन किया तो उसे उचित दंड दिया जाता है।
9. **सामान्य संस्कृति :-** एकात्मता की भावना, सामान्य भाषा, सामान्य धर्म और राजनीतिक संगठन के कारण उनकी एक सामान्य संस्कृति निर्माण हुई है।
10. **गोत्र संगठन :-** अनेक गोत्र मिलकर एकत्र रहने के कारण इन गोत्रों में परस्पर संगठन और सहयोग होता है। लगभग आदिवासी जनजातियों में संगठन का महत्व है।
11. **निषेध व पाबंदियां :-** आदिवासी समाज की जनजातियों में प्रत्येक जाति के विवाह, व्यवसाय इत्यादि कारणों की पाबंदियां और निषेध का वे कठोरता से पालन करते हैं। इन आदिवासी जनजातियों की निषेध एवं पाबंदियों का सभी लोग कठोरता से पालन करते हैं।
12. **अशिक्षा और पिछड़ापन :-** आदिवासी समाज की लगभग सारी जातियां जंगलों में बसने के कारण शिक्षा के प्रवाह से दूर है और यही एक प्रमुख कारण है कि यह समाज आज भी पिछड़ा हुआ है। यह समाज अंधविश्वासी है और धार्मिक नियमों का कठोर पालन करने वाला भी। शायद इन्हीं कारणों की वजह से यह समाज आज भी अंधश्रद्धा और पिछड़ेपन के दलदल में फंसा हुआ है।²

आदिवासियों में गहनों और गोदनों के प्रति विशेष लगाव देखने को मिलता है। आदिवासी सोने के गहने नहीं पहनते हैं। आदिवासी अपनी भाषिक विशिष्टता, संस्कृति, प्रजाति एवं प्रकृति आधारित धर्म के कारण समाज की मुख्यधारा से अलग होता है। आदिवासी समाज अत्यंत गरीब, शोषित, पीड़ित, भोला जिसे आज तक सब ने लूटा, खासोटा और चूसा है। उनके बीच जमींदार, व्यापारी, ठेकेदार, महाजन, वकील और यहां तक कि धर्म का

नाम लेकर जो भी गया हर एक ने किसी-न-किसी प्रकार उनका शोषण ही किया है।

इस समय देश का शायद सबसे उपेक्षित तबका आदिवासी ही है। देश का आदिवासी समाज अस्मिता और अस्तित्व की दोहरी चुनौतियों से जूझ रहा है। नई आर्थिक नीतियों के बाद शुरू हुई विकास की अंधी दौड़ का सबसे ज्यादा नुकसान आदिवासियों को उठाना पड़ा है। आदिवासी समाज के स्वरूप को समझने के लिए उनके सांस्कृतिक पक्ष को ध्यान में रखना चाहिए जिसमें भाषा, धर्म, मिथक, जीवन शैली, आवास, प्रकृति से संपृक्तता, उनके पर्व, उत्सव, नृत्य, गीत, अंधविश्वासों को समझना होगा तभी आदिवासी समाज का समग्र ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

हरिराम मीणा के शब्दों में, "आदिवासी अस्मिता का सवाल निरुसंदेह समग्र सांस्कृतिक परंपरा की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। भौगोलिक भाषा, धर्म, जीवन शैली, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था, प्रजातीय पहचान आदि के आधार पर कई मानव समुदाय अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं और उस पहचान को सुरक्षित और बाहरी हस्तक्षेप से स्वतंत्र रखने के प्रयासों को ऐसे समुदायों की अस्मिता से जोड़ा है...। इस दृष्टिकोण से आदिवासी समुदाय अपनी प्रत्येक पहचान की सीमाओं को तोड़कर भौतिक विकास को अपनाता हुआ शेष समाज के साथ अंतःक्रिया करता हुआ राष्ट्रीय समाज का हिस्सा बनता है।³ निश्चित तौर पर भारतीय इतिहास में आदिवासी समाज की अपनी एक अलग संस्कृति एवं पहचान रही है लेकिन हमने उनका उपयोग केवल कला के रूप में ही अधिक किया है बल्कि पहचान के रूप में कम। इसलिए आज बाजारीकरण के दौर में भारतीय आदिवासियों के जीवन और अस्मिता को बचाना आवश्यक हो गया है। मूलतः आदिवासी जंगल के दावेदार होकर भी जंगलों से खदेड़े जा रहे हैं। विकास के नाम पर शासन एवं उद्योगपतियों द्वारा भूमि अधिग्रहण करके उनकी जमीनें एवं कोयला खदानों पर जबरदस्ती से अधिकार जमाया जा रहा है। आज 21वीं सदी में पहुंच कर भी हमारे देश का आदिवासी समाज अपने विकास से कोसों दूर है। इसीलिए आज आदिवासियों के सामने विस्थापन की भयंकर समस्या उत्पन्न हो रही है। सरकार की उदासीन नीतियों के कारण आदिवासियों की स्थिति विकट बनी हुई है। विकास के नाम पर आदिवासियों का पलायन और विस्थापन आदि समस्याओं पर विचार-विमर्श होना आवश्यक है।⁴

आज जब देश का आदिवासी समाज चौतरफा समस्याओं और चुनौतियों से घिरा हुआ है तो जरूरत है कि इस बारे में गंभीर विचार किया जाए और सही समझ का विकास किया जाए। ...अगर सरकार सकारात्मक पहल करे तो आदिवासियों को बचाया जा सकता है। आदिवासी भाषाओं के अस्तित्व पर भी संकट के बादल मंडरा रहे हैं। अगर हमारी सरकारें उन्हें संरक्षण दे और सही भाषा नीतियां बनाए तो उन्हें बचाया जा सकता है। आदिवासी भाषा-साहित्य में आदिवासियों का पारंपरिक ज्ञान और विश्व दृष्टि भरी हुई है जो खास तो है ही, एक वैकल्पिक ज्ञान परंपरा का जीवंत दस्तावेज भी है, इसीलिए उसे बचाया जाना बेहद जरूरी है।⁵

वस्तुतः आदिवासियों की सरलता और अज्ञानता उनके लिए अभिशाप बनी हुई है। इसी कारण शोषकों ने उनकी चल-अचल संपत्ति को हड़प लिया है। यदि आदिवासियों का विकास करना है तो कुछ मुद्दों को ध्यान में रखना होगा। उनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना होगा। यह कार्य प्रचार-प्रसार से नहीं आत्मीयता से करना होगा। उनको आर्थिक दृष्टि से सक्षम करना होगा। उनकी संस्कृति की रक्षा करनी होगी, उन्हें मुख्यधारा से संपृक्त करना है तो हम सभी को मिलकर यह पहल करनी होगी।

सन्दर्भ :-

1. वीरेन्द्र, कुमार (सं), आदिवासी विमर्श और हिन्दी साहित्य, पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 50-51
2. रघुवंशी, डॉ. महेन्द्र, हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2021, पृ. 19-20
3. चौधरी, डॉ. प्रमोद, आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यास, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2017, पृ. 15
4. सोनटक्के, डॉ. माधव व डॉ. संजय राठोड, भारतीय साहित्य और आदिवासी-विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2018, भूमिका से उद्धृत
5. मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2021, पृ. 29



योगीनां योगः कदादुःखहा

डॉ. सुरेशः कुमारः पन्डा

प्राध्यापकः संस्कृतः विभाग-पंचायत-उच्च-माध्यमिक-विद्यालयः

पलशागोरा, जिल्ला-बौद्धः, ओडिशा-पिनः 762030

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्यकर्मसु

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (गीता-६/१७)

युक्ताहारविहारस्यः- मानवः भगवतः ब्रह्मणः सृष्टिः जन्मानन्तरं सः यत् कर्मकरोति तदेव सर्वं भगवतः कृपादृष्टिं बलेन संभवति । अतः भो अर्जुनः त्वं यत् यत् कर्मसंपादनं करोषि तत्सर्वं मां समर्पणं कृत्वा ग्रहणं करोतु । अन्यथा यद् मानवः मां नसामर्प्यं ग्रहणं करोति तदेव आहारः केवलं स्वेनभक्षति सः पापं भक्षति । (गीता- ३/१३)^१ अतः मानवः युक्ताहारमर्थात् संयमाहारं नाति बहुः नातिस्वल्पं च भक्षणं करोति । (गीता-६/१६)^२ तदेव पुनः भोजनं सात्त्विकं तथा पवित्रतायुक्तं भूयात् । तदेव न्यायपूर्वकमुपाजितधनेन प्रस्तुतं स्यात् । केवलं स्वादु तथा पुष्टियुक्तं भक्षणं न कृत्वा प्रसादं भक्षणं कुर्यात् ।

चक्रपाणिमतेनः- साधनानुकूलं धर्मशास्त्रमायुर्वेदं मतानुसारेण भोजनं कुर्यात् । भागवते कथ्यते पथ्यं हितमितं अर्थात् खाद्यं शरीराय हितकारी एवं मितं भवेत् । मितं इत्युक्ते नस्वल्पं नाधिकम् । पुनः भोजनं हितं मितमनायासम् अर्थात् शीघ्रं प्रस्तुतं खाद्यं पथ्यमिव कार्यं भवेत् मनः पवित्रं कुर्यात् । अत्र यदाहारं कथ्यतेकति टीकाकाराः एतं खाद्येन सह अन्यं सर्वं प्रकाराणि इन्द्रियाणि सर्वप्रकाराणानिन्द्रिय भोग्यं विषये मितं बलम्बिनः भवेयुः ।

नियमितं विहारमर्थात् भ्रमणं यदमनासि सुस्थं तथा शरीरमपि साहाय्यं कुर्यात् । एकदिनेन बहु किःमिः पदब्रजं कृत्वा अन्यदिनं शय्यात् नावतीर्णं कृत्वा यदि तिष्ठति तत् नैव विधेयम् । देशः, कालः, पात्रं तथा परिस्थितिमनुसारं यत् कर्म कर्तुमस्ति तत् कर्म सम्यक् तया कुर्यात् ।

युक्तचेष्टस्य कर्मसुः- वर्णाश्रमानुसारं कर्मानुकूलं भवेत् । चतुर्वर्णाश्रम (यथा- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रः । ब्राह्मणस्यमुखमासीत् बाहुभ्यो राजन्यं कृतः वैश्य ऊरुतदस्य यद् पदभ्यां शूद्रो अजायत) (ऋ-१०/१०/१२)^३ शरीरं निर्वाहाय स्वस्य परिवारस्य परिपोषणाय यदावश्यकं संसारस्य मंगलाय यदावश्यकं तद्वत् चेष्टाकरणीया । देशः, कालः, पात्रः परिस्थितिश्च यदकर्म प्राप्यते तदा कर्तव्यं कर्म सूचारुरूपेण करणीयम् ।

युक्त स्वप्नावबोधस्य- स्वामी चिन्मयानन्दमतेन

स्वप्नावबोधस्य- स्वप्नश्चावबोधस्य सामान्यमर्थं भवति, निद्रावस्थाच जाग्रतावस्था । गूढार्थकः यथा- उपनिषदत्सु पारमार्थिक सत्यस्य अज्ञानवस्थां निद्रा कथ्यते । तथा असौअज्ञानकारणात् प्रतीतं च अनुभवेषु आगतावस्थां स्वप्नमुच्यते । यत्र- अस्माकं जाग्रतावस्थाञ्च स्वप्नावस्था उभयो मिलितः । अनेनदृष्ट्या अवबोधस्यार्थं ज्ञानं कथ्यते । अतः श्लोकेस्मिन् कथितं स्वप्नञ्च अवबोधस्यार्थं जाग्रतावस्था तथा ध्यानाभ्यास अवस्था । उभयत्र युक्तम् अर्थ साधकः संयमं भवेत् तथा ध्यानाभ्यासे मनः बलपूर्वकं शान्तं कृत्वा दीर्घकालं यावत् तस्मिन् स्थित्वा प्रयत्नं न कुर्यात् । अनेन ध्यानं न भवेत् । सर्वदुःखान् विनाशाय ध्यानयोगेन अस्ति । अतः प्रत्यहमभ्यासं कुर्यात् ।

युक्तं- शब्दस्य अर्थं भवति यत् आहार, निद्रा, विहारः, कर्म, आदीन् जागरणान् प्रति यत् शास्त्रं प्रतिकूलं न भविष्यति तथा साधकस्य प्रकृतिः, स्वास्थ्यं च रुचिअनुसारं यति उपयुक्तं तति भवेयुः । यथा- यदाविनियतं चित्तमात्मेवतिष्ठते । निष्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्तइत्युच्यते तदा । (गीता-६/१८) । अत्रयुक्तः इत्यर्थं भवति योगयुक्तः । सर्वेन्द्रियाणि परमात्मनि सायकं रूपेण युक्तो अवस्थानं करोति । तदा पुरुषः योगयुक्तः भवति ।

संदर्भ श्लोकः जयदयाल गौयन्दका तत्त्व विवेचनी टीका (ओडिशा), गीताप्रेस्, गोरखपुर, २७तम प्रकाशम्

संदर्भ श्लोकाः

१. सः पापं भक्षति । यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकाल्विविधैः । भुञ्जते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् । (गीता-३/१३)
२. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
नचाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुनः । (गीता-६/१६)
३. ब्राह्मणस्य मुखमासीत् बाहुभ्यो राजन्यं कृतः ।
वैश्य ऊरु तदस्य यद् व्यैश्यं पदभ्यां शूद्रो अजायत । (ऋ-पुरुष सूक्त-१०/१०/१२)

२. सर्वशास्त्रमयी गीता- मालतीदास

यः नियमानुसारमाहारं विहारं करोति यः कार्यं परिमितं परिमाणेन कर्तुं चेष्टितः सः योगी । योगसिद्धं भूत्वा संसारादुःखात् मुक्तिं लभते । अतः एकः परिमितं जीवनं युक्तचेष्टं ग्रहणीयम् । साधकः आहार विहार चेष्टाचजागरणं परिमितमुपायेन ग्रहणं करोति चेत् तस्य चित्तं शान्तं भवति । पवित्र मनसि रन्ध्रं भोजनं साधकाय युक्तं भवति । ध्यानाय सचेतनं व्यक्तिः यत्रतत्र भ्रमणं नैव कर्तव्यम् ।

युक्तचेष्टस्या बोधस्य- परिमितं निद्रा आवश्यकम् । दिवानिद्रा वर्जनीयम् । ब्राह्ममूहूर्तात् शय्यात्यागं कर्तुं विधेयम् । यदिच

केवलं ध्यानयोगिणे कथ्यते तथापि इदं प्रत्येकं मनुष्याय कल्याणकारी अस्ति । सीमितं परिमितं जीवनं गठने जीवनं सुखप्रदं भवति ।

३. स्वामी शिवानन्दः-

भगवान् योगसाधकाय खाद्यं, पेयं भगवान् बुद्ध्याय चरमपन्थां ग्रहणाय दुर्बलात्वात् आत्म साक्षात् कारे सफलं नाभूत् । आत्मसाक्षात्काराय अति कुच्छू साधनामावश्यकम् । गीतायां १८/५ च १८/६ श्लोकद्वये भगवान् अतिकाया क्लेशं निन्दति । यदा तद् भवति । (१६/५६)^४

कुच्छूसाधना, आत्मनिपीडकं मा भवेत् । कतिसाधकाः कठोरं सन्यासामेव जीवनानां ध्येयाः भवन्ति । मनुष्यस्य स्नायुमण्डलाः अत्यन्तसंवेदनशीलाः । सामान्यतमं परिवर्तनेन स्नायोः प्रतिक्रिया दृश्यते । तस्यमनः विचलितं करोति । अतः नियमितं शृंखलितं जीवनयापनं सुषमखाद्यं च शान्ति अपनोदनं व्यवस्था ग्रहणमेकान्तमावश्यकम् । परिमितमाहारं ग्रहणं यथा निर्दिष्टे समये शयनं तथा जागरणं करणीयम् । उदाहरणं त्वेन- रात्र १/१० घटिकायां शयनं कृत्वा प्रातः । ३/४ घटिकायां जाग्रतो भवतु । इत्थं जीवनयापनेन योगे सफलं भूत्वा जीवनस्य दुःखं यन्त्रणा दूरं करिष्यति ।

४. लोकमान्यं वालगंगाधरतिलकम्-

यस्य आहारविहार परिमितं कर्मचेष्टा निद्रा जागरण तस्यैव योग दुःख हारकः भवति । श्लोकेस्मिन् योग शब्दः पातंजल योगस्य अभ्यास अर्थेन व्यवहृतं भवति । गीतामतेन मनुष्य जीवनस्य चरम लक्ष्यं भवति कर्मयोगस्य सफलम् अभ्यासम् । कर्म योगस्य सफलं प्राप्तये पातंजल योगस्य सहाय अपरिहार्यमार्थात् कर्मयोग साधनायाः उपायम् । कर्मसु युक्तं चेष्टस्य कथने कर्म योगस्य साधना उपरिगुरुत्वं दीयते । पातंजल योगोपरि न अपिकथ्यते योगः कर्मसु कौशलम् । (गीता- २/५०)^५

५. स्वामी चिन्मयानन्दः-

असौ पुरुषाय योग दुःखनाशाय, यः परिमितं भोजनं भ्रमणादि करोति तथा परिमितं-निद्राच जागरणं करोति । श्लोकेस्मिन् वर्णितं नियमानां पालने कृते ध्यानाभ्यासं सहजं भवति । भोजनं भ्रमणादिषु संयमता पालनाय भगवान् विशेष गुरुत्वं ददाति । स्वस्य कार्यक्षेत्रं चयने विवेकस्य उपयोगं करणीयम् । कस्यापि श्रेष्ठं कर्म चयनादनन्तरं यदि वयं लिप्ता भवामः वासना क्षयस्थाने नूतनाः वासनाः क्षयस्थाने नववासनानि जन्म संभावना अधिकम् । तदा इत्थमपि भवेत् यत् कर्मणः क्लान्ति तथा विक्षेप्तं वयं पशुत्वं गमनं भवाम । स्वानावबोधस्य अर्थं क्रमशः निद्रावस्था जाग्रतावस्था च । परन्तु अत्र एकं गूढतत्त्वं निर्हितमस्ति ।

उपनिषदि पारमार्थिक सत्यस्याज्ञाना वस्थां च जाग्रतावस्था । परन्तु अन्यमेकं गूढार्थमपि निहितम् । अज्ञान कारणात् प्रतीतं च अनुभवं स्वप्नावस्थां कथ्यते । पत्र अस्माकं जाग्रतावस्थां स्वप्नावस्थामुभयं सम्मिलितम् । अनया दृष्ट्या वास्तविका वबोधस्य तत्त्व जीवस्य जाग्रतावस्था संयमितं भवेत् । तथा तदमुष्मिन् श्लोके स्वप्नं च अवबोधस्यार्थं जीवस्य जाग्रतावस्था तथा शयनावस्था । सर्वान् दुःखान् नाशाय सामर्थ्यं ध्यानयोगे स्थितायां प्रतिदिनमभ्यासं कुर्यात् ।

संदर्भ श्लोकाः

४. यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञोदान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् । (गीता-१८/५)
५. एतान्यपि तु कर्माणि संगंत्य कत्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मेपार्थं निश्चितं मतमुत्तमम् । (गीता-१८/६)

६. दयानन्द वर्मा-

श्लोकेऽस्मिन् आहार निद्रा उपरिपुनः कथ्यते । अत्र भगवान् श्रीकृष्णः जनेकस्य कर्म तथा तस्य गतिः उपरि समता रक्षाय निर्देशं ददाति । गतिविधेः अर्थं भवति सुखं विनोदभ्रमणं च मनोरंजनं नित्वा उपभोगमुपभोगाय किञ्चित् नवारणं क्रियते परम् अत्र समता प्रतिरोधं वा आत्मसंयमं च सम्यक् सीमावद्धतोपरि गुरुत्वं प्रदीयते । व्यवसाय वाणिज्य कर्म इत्यादि कर्ममार्गात् नैव वंचिताः । कर्म शृंखलितेन भावेन करणाय गुरुत्वारोपं क्रियते । श्रीकृष्णः नरस्य प्राकृतिक कर्माणि तस्मात् वञ्चितं करणाय इन्द्रियस्य व्यवहारं नियन्त्रणं करणाय सतर्कं करोति ।

७. शंकराचार्यः-

यत् भूज्यते- तदर्णवा आहारः । यः चलनं गमनं यत् पादयोः कर्मणि तद् विहारः । उभौ यस्य नियमितं परिमाणेन भवति च कर्मणिचस्य चेष्टा नियमितं परिमाणेन भवति एवं यस्य शयनं नियमितं समये यथायोग्य भवति । इत्थं यथायोग्य शयनं जागरणं कुर्वाणः योगिनः दुःखनाशकं योगः सिद्धे भवति ।

समस्तं दुःखं हरणानां नाम दुःखहा अस्ति इत्थं सर्वसंसार रूपस्य दुःखस्य नाशकारकः योगः सिद्धे भवति । तदैव अभिप्रायम् ।

८. मधुसूदन सरस्वती-

दुःखहा-दुःखस्यनाशकः योगः युक्तनियमित- यथा योग आहार एवं विहारः कुर्वाणः कर्मणि यथायोग्येष्टा कुर्वाणः तथा यथायोग्य शयनं च जागरणं कुर्वाणः पुरुषस्य हि सिध्यति ।

आहियत इत्याहायोध्याम्- यस्य आहरणं ग्रहणं क्रियते तद् आहारं तथा अन्नेमस्ति च विहरण अर्थात् पादक्रम पादविक्षेप विहार अस्ति । साधकस्य कुशलता हेतोः समाधि सिद्धं भवति अन्येन । इत्यमेव प्रयत्नेन संपादितस्य योगस्य फलं किम् ? दुःखहा । विहारे नियतता-योजनात्रपरं गच्छेत् एक योजनात् अधिकं पन्था न ब्रजा बोधव्यम् । निद्रा जागरणे नियतता अर्थात् यः रात्रिं त्रिणि विभज्य प्रथमः एवमन्तिम भागे जागरणं तथा मध्यभागे शयनम् । इत्थं योग शास्त्रोक्त अन्य नियमान् अपि बोधव्यम् ।

आहारं- पत्रंपुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः । (गीता-९/२६)^६

आहारं- तथा भूयात् यथा यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् यत्पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदार्पणम् । (गीता-६/२७)^७
किदृशमाहारं भवेत् प्रथम तथा भगवन्तं समर्थं यत् धर्मदानं यथा क्रियते तत्सर्वं मां समर्पणं कुरु तेन पत्रंपुष्पं फलंतोयं योभक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।^६ (गीता/९/२६)

पुनः यदपि योगी अश्नाति प्रथमं मां समर्पणं कृत्वा तदनन्तरं भक्षसि चैत् सः उपयुक्तमाहारं भवति । तद् योगी भक्षते चेत् सः युक्ताहार विहारः भवति ।

इत्थं योगी यदि आहारं विहारं दिकरोति तस्य योगिनः योगः दुःखहा भवति । अत्र संशयनास्ति ।

संदर्भ श्लोकाः

६. पत्रंपुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः । (गीता-९/२६)

७. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत् ।

यत्पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदार्पणम् । (गीता-९/२७)

संदर्भ ग्रन्थाः

१. श्रीमद्भागवत गीता मौलिक रूपेण कृष्णकृपा श्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए.सि. भक्तिवेदान्तस्वामी प्रभुपादः संस्थापक-आचार्य-अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (ISKCON) ओड़िशा अनुवादः- श्रीमद् गौर गोविन्द स्वामी
२. गीताभाष्य संकलनं संकलकः श्री प्रसन्न कुमार पंडा, प्रकाशकः श्री पठान् कुमार पंडा, सोनपुर, मुद्रण- वालाजी प्रिंटि एन्ड पेपर वर्कस्- धर्मशाला, सुवर्णपुर । मोः ९४३७२५३७१५, जि- सुवर्णपुर, ओड़िशा ।
३. श्रीमद्भागवद्गीता तत्त्वविवेचनी (ओड़िशा), टीकाकार- श्री जयदयाल गोयन्दका, प्रिंटिंग्- २०१७, गीता प्रेस्, गोरखपुर ।
४. श्रीमद्भागवद्गीता- साधक संजीवनी टीका (ओड़िशा), स्वामी रामसुखदासः (१९२९), गीताप्रेस, गोरखपुर ।

डा: सुरेशः कुमारः पन्डा

प्राध्यापकः संस्कृतः विभाग-पंचायत-उच्च-माध्यमिक-विद्यालयः

पलशागोरा, जिल्ला- बौद्धः, ओड़िशा । पिनः ७६२०३०

दूरभाषः ९४३७७०६३८९

email: pandask1988@gmail.com

इतिशाम्



सनातन धर्म और सामान्य धर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध : एक अध्ययन

निष्ठान, शोधार्थी

डॉ० नीलम रानी, सहायक प्रवक्ता

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक।

शोध-सार :-

‘सनातन’ का अर्थ है— शाश्वत या ‘सदा बना रहने वाला’, अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त। सनातन धर्म मूलतः भारतीय धर्म है, जो किसी समय पूरे बृहत्तर भारत (भारतीय उपमहाद्वीप) तक व्याप्त रहा है। विभिन्न कारणों से हुए भारी धर्मान्तरण के उपरांत भी विश्व के इस क्षेत्र की बहुसंख्यक जनसंख्या इसी धर्म में आस्था रखती है।

सनातन धर्म या सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म की अलग-अलग व्याख्या की प्रस्तुति से ऐसा समझ लेना कि ये दोनों धर्म एक-दूसरे से पृथक और सर्वदा भिन्न हैं, भ्रामक होगा। सामान्य धर्म या सनातन धर्म की साधना व्यक्तिगत और कामगत होती है। कहने का अर्थ यह है कि यदि सनातन धर्म निरपेक्ष है तो उसकी साधना सापेक्ष है। विशेष धर्मों के द्वारा ही सनातन धर्म की प्राप्ति होती है। इसलिए विशेष धर्म सनातन धर्म से अलग नहीं है। यदि सनातन धर्म मूल है तो विशेष धर्म उसकी शाखाएं और टहनियाँ हैं जिनके द्वारा सनातन धर्म की सार्वभौमता और व्यापकता परिलक्षित होती है। ये विशेष धर्म अपने-अपने ढंग से सनातन धर्म ही सिद्ध करते हैं। इस तरह सनातन धर्म और विशेष धर्म एक दूसरे के पूरक हैं। सनातन धर्म के अभाव में विशेष धर्म का भी रूप विकृत हो जायेगा। सनातन धर्म आधार है, भूमि है जिस पर विशेष धर्म की विभिन्न आधृतियाँ चित्रित हैं। इस संबंध में भारतीय मनोषी महर्षि अरविन्द का विचार अत्यन्त समीचीन है। कुल धर्म परम्परा से चले आ रहे परिवार के नियमों एवं आधारों क्रियान्वयन ही कुल धर्म कहा जाता है।

मुख्य शब्द :- सनातन धर्म, युग धर्म, आश्रम धर्म, बौद्ध धर्म।

सनातन मार्ग :-

विज्ञान जब प्रत्येक वस्तु, विचार और तत्व का मूल्यांकन करता है तो इस प्रक्रिया में धर्म के अनेक विश्वास और सिद्धांत धराशायी हो जाते हैं। विज्ञान भी सनातन सत्य को पकड़ने में अभी तक कामयाब नहीं हुआ है किंतु वेदांत में उल्लेखित जिस सनातन सत्य की महिमा का वर्णन किया गया है विज्ञान धीरे-धीरे उससे सहमत होता नजर आ रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ध्यान और मोक्ष की गहरी अवस्था में ब्रह्म, ब्रह्मांड और आत्मा के रहस्य को जानकर उसे स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया था। वेदों में ही सर्वप्रथम ब्रह्म और ब्रह्मांड के रहस्य

पर से पर्दा हटाकर 'मोक्ष' की धारणा को प्रतिपादित कर उसके महत्व को समझाया गया था। मोक्ष के बगैर आत्मा की कोई गति नहीं इसीलिए ऋषियों ने मोक्ष के मार्ग को ही सनातन मार्ग माना है।

मोक्ष का मार्ग :-

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में मोक्ष अंतिम लक्ष्य है। यम, नियम, अभ्यास और जागरण से ही मोक्ष मार्ग पुष्ट होता है। जन्म और मृत्यु मिथ्या है। जगत् भ्रमपूर्ण है। ब्रह्म और मोक्ष ही सत्य है। मोक्ष से ही ब्रह्म हुआ जा सकता है। इसके अलावा स्वयं के अस्तित्व को कायम करने का कोई उपाय नहीं। ब्रह्म के प्रति ही समर्पित रहने वाले को ब्राह्मण और ब्रह्म को जानने वाले को ब्रह्मर्षि और ब्रह्म को जानकर ब्रह्ममय हो जाने वाले को ही ब्रह्मलीन कहते हैं।

विरोधाभासी नहीं है सनातन धर्म :-

सनातन धर्म के सत्य को जन्म देने वाले अलग-अलग काल में अनेक ऋषि हुए हैं। उक्त ऋषियों को दृष्टा कहा जाता है। अर्थात् जिन्होंने सत्य को जैसा देखा, वैसा कहा। इसीलिए सभी ऋषियों की बातों में एकरूपता है। जो उक्त ऋषियों की बातों को नहीं समझ पाते वही उसमें भेद करते हैं। भेद भाषाओं में होता है, अनुवादकों में होता है, संस्कृतियों में होता है, परम्पराओं में होता है, सिद्धांतों में होता है, लेकिन सत्य में नहीं। वेद कहते हैं ईश्वर अजन्मा है। उसे जन्म लेने की आवश्यकता नहीं, उसने कभी जन्म नहीं लिया और वह कभी जन्म नहीं लेगा। ईश्वर तो एक ही है लेकिन देवी-देवता या भगवान अनेक हैं। उस एक को छोड़कर उक्त अनेक के आधार पर नियम, पूजा, तीर्थ आदि कर्मकांड को सनातन धर्म का अंग नहीं माना जाता। यही सनातन सत्य है।

युग धर्म :-

धर्मशास्त्रों की यह मान्यता है कि प्रत्येक युग के अपने धर्म एवं नैतिक आदर्श हैं। सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में योग, कलयुग में केवल दान या ईश्वर नाम कीर्तन ही श्रेष्ठ धर्म कहा गया है। राजधर्म राजा के लिए जो कर्त्तव्य है, चाहे वे प्रजा हो, देश के प्रति हो, वे सभी राजधर्म कहे जाते हैं। राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह धर्म और नीति का जानकार हो। सज्जनों की रक्षा एवं दुर्जनों को दण्ड देना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। राज्य में सुख-शान्ति एवं समृद्धि बनाए रखना उनका लक्ष्य है। आपद् धर्म सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्मों के अतिरिक्त हमारे धर्मशास्त्रों में आपद् धर्म की भी चर्चा है। देश काल एवं परिस्थिति के कारण हमारे जीवन में कुछ अवसर भी आते हैं जहाँ हमें अपना जीवन निर्वाह करना तथा कर्त्तव्य पालन करना असम्भव होने लगता है। ऐसी स्थिति में हमारे शास्त्रों में आपद् धर्म का विधान है। वर्ण धर्म वर्ण धर्म का तात्पर्य विभिन्न धर्मों के कर्त्तव्यों और नियमों से है। ब्राह्मण के लिए वेद पढना व्यापार करना एवं कृषिकर्म करना प्रमुख कर्त्तव्य हैं, शूद्रों के लिए उपर्युक्त तीन वर्णों की सेवा करना प्रमुख कर्त्तव्य है।

आश्रम धर्म :-

ब्रह्मचर्य आश्रम में इन्द्रियों का निग्रह और वेदाध्ययन प्रमुख कर्त्तव्य है। गृहस्थाश्रम दूसरा आश्रम है। यह सभी आश्रमों का प्राण है। मनुस्मृति में कहा गया कि जिस प्रकार प्राण वायु का आश्रय लेकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर सभी आश्रम चलते हैं। इसकी अवधि 25 साल से 50 साल की अवस्था है। धर्म के तहत धनोपार्जन, परिवार का भरण-पोषण, दान पुण्य तक अन्य सामाजिक कार्य इस

आश्रम के मुख्य कर्तव्य हैं।

धर्म और सम्प्रदाय :-

धर्म के स्वरूप की व्याख्या के क्रम में धर्म सम्प्रदाय के संबंध का संक्षिप्त उल्लेख करना प्रासंगिक और आवश्यक है। आज विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में जिन विभिन्न धर्मों का पठन-पाठन किया जा रहा है वे वास्तव में धर्म नहीं, सम्प्रदाय हैं। इन धर्मों के प्रवर्तक हैं और इनकी शुरुआत किसी खास काम-खण्ड में हुई है। विद्वानों की मान्यता है कि केवल हिन्दू-धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसकी शुरुआत किसी महापुरुष विशेष से नहीं है और न उसकी शुरुआत की अवधि ही निश्चित हैं। यही कारण है कि केवल हिन्दू-धर्म को यदा-कदा सनातन धर्म भी कहा जाता है। धर्म के स्वरूप की व्याख्या के क्रम में यह स्पष्ट रूप से बतलाया गया कि धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है— इनमें 'स्वभाव' प्रमुख है। मनुष्य का स्वभाव एक है। मनुष्य स्वभावतः भौतिक सुखों से तृप्त नहीं है। उसकी आत्मा शाश्वत सुख की खोज में है। शाश्वत सुख की प्राप्ति ही मानव का सच्चा और एकमात्र धर्म है। इस तरह धर्म मूलतः एक है, अनेक नहीं है। भारतीय संस्कृति में 'धर्म' का प्रयोग मुख्य रूप से किन-किन अर्थों में हुआ है, उसकी जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकरण में वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र या स्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत पुराणादि में वर्णित धर्म की अवधारणा का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है।

बौद्ध धर्म :-

दर्शन में 'बोधिसत्त्व' की प्राप्ति को जीवन का आदर्श-रूप माना गया है तथा इसके लिये 'त्रिरत्न'— शील, समाधि और प्रज्ञा—का विधान है जो आष्टांगिक मार्ग के अन्तर्गत आ जाता है। आष्टांगिक मार्ग का पथिक 'शील' द्वारा शारीरिक शोधन करता है, जिसके अन्तर्गत समस्त सात्विक कर्म समाहित है। शील का अभ्यास करते हुये साधक को अपने कार्य और वचन का पूरा संयम रखना होता है। उसे प्राणियों की हिंसा, चोरी करना, मिथ्याचार, असत्य भाषण और मादक द्रव्यों से विरत रहना होता है। बौद्ध धर्म में साधक को शील का किसी भी प्रकार से परित्याग करना निषिद्ध माना गया है। इस प्रकार सद्गुणों को धारण कर साधक 'बोधिसत्त्व' को प्राप्त करता है। बोधिसत्त्व का 'स्वार्थ' इतना विस्तृत होता है कि उसके 'स्व' की परिधि में जगत् के समस्त जीव समा जाते हैं। उसके प्रधान गुण होते हैं— महामैत्री तथा महाकरुणा। हिन्दू-धर्म में भी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति मानव जीवन का परम उद्देश्य है।

हिन्दू-धर्म वस्तुतः :-

अनुभूतिमूलक धर्म है और एकतत्त्वता के अभेदमूलक भाव का सृजन ही इसका चरमलक्ष्य है। यहाँ यह माना गया है कि ईर्ष्या से परे, कल्याण करने के भाव को प्रेरित करने से ही आध्यात्मिक ज्ञान का उदय सम्भव है और आध्यात्मिक ज्ञान के उदय से ही अभेदमूलक भाव समृद्ध हो सकता है। हिन्दू-धर्म में आध्यात्मिक पूर्णता का चाहे कोई भी मार्ग क्यों न हो, बिना आत्म-नियंत्रण की नैतिक-सम्पदा तथा आत्म-संतोष अथवा दुःख सहने की शक्ति जैसे सद्गुणों का धारण किये बिना कोई व्यक्ति इस आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार यहाँ आन्तरिक शुभत्व को ही वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का आधार माना गया है। हिन्दू-धर्म में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य जितना प्रखर है उतना शायद किसी अन्य धर्म में प्रखर नहीं है और वह है त्याग द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति— 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'। चाहे कोई भी धर्म-विधि क्यों न हो, उसके द्वारा चरम लक्ष्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक उसमें त्याग का भाव न हो। हिन्दू-धर्म में आध्यात्मिक अनुशासन के

रूप में निहित ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग तथा ध्यानयोग भी त्याग पर ही आधारित है। अतः त्याग द्वारा ही अमृतत्व की प्राप्ति वास्तविक अर्थ में सम्भव है। यही सनातन धर्म का मूलमंत्र है जिसे हिन्दू-धर्मावलम्बी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के क्रम में अनिवार्य रूप से धारण करते हैं। चूँकि यह नियम सनातन है इसीलिये हिन्दू धर्म-ग्रन्थों एवं दार्शनिक पद्धतियों में इसे सम्यक् रूप से समादृत देखे जाते हैं। भारतीय धर्म-ग्रन्थों में आध्यात्मिक मूल्य के रूप में स्थापित सद्गुण-विचार मानव के लिये आज भी उतने ही आवयक हैं जितने प्राचीन युग में थे। अति आधुनिकता के इस युग में मूल्यों का मूल्यान्तरण हो रहा है जिसके कारण सारे मूल्य टूट रहे हैं। मूल्यों के क्षरण के कारण ही सर्वत्र अशांति व्याप्त है। इन नैतिक मूल्यों का, जो सफल जीवन की कुंजी है तथा मानवता का आधार है, महत्त्व कम होने के कारण ही आज समाज एवं राष्ट्र में अस्तव्यस्तता एवं भ्रष्टाचार-दुराचार व्याप्त है। नैतिक मूल्यों से रहित होते जा रहे इस विश्व में कुंठारहित एवं शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिये मानव को अपने सांसारिक-जीवन एवं आध्यात्मिक-जीवन में समरूपता लाना चाहिए। सांसारिक सुखों की प्राप्ति के समय भी उन्हें अपने उच्चतम आदर्श के अनुरूप आचरण करना ही एकमात्र विकल्प है क्योंकि जब तक हम अपने जीवन में इन महानतम नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान नहीं देंगे तब तक मानव तो प्रगति करेगा, मानवता नहीं।

निष्कर्ष :-

धार्मिक क्रियाओं में निष्काम कर्मता का भाव जुटता गया और वैदिक काल में ही धर्म का अन्तिम प्रयोजन आत्म साक्षात्कार या आत्मा और परमात्मा का मिलन है। उपनिषदों में भी धर्म शब्द मुख्य रूप से इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय दर्शनों में खासकर मीमांसा और वैशेषिक दर्शन में धर्म शब्द का प्रयोग लौकिक यश और पारलौकिक मोक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में 'धर्म' शब्द अनेक अर्थों में आया है जिनमें मुख्य रूप से धर्म शब्द का प्रयोग वस्तुओं एवं प्राणियों के स्वभाव, परमात्मा-प्राप्ति के साधन, महाजनों के उपदेश के अर्थ में हुआ है। महाभारत में 'धर्म' शब्द का उत्कर्ष तो वहाँ तक बतलाया गया है कि जिस धर्म में दूसरे धर्म की निन्दा नहीं हो, वही सच्चा धर्म है। जिस धर्म में अन्य धर्मों को ओटा दिखलाया जाय, वह धर्म नहीं, कुधर्म है। यह भारतीय धर्म-अवधारणा की पराकाष्ठा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उपाध्याय, आचार्य बलदेव : 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा', वाराणसी, चौखम्भा, ओरियन्टलिया, 1976, पृष्ठ- 12.
2. उपाध्याय, आचार्य बलदेव : 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा', वाराणसी, चौखम्भा, ओरियन्टलिया, 1976, पृष्ठ-15।
3. आश्रेय, भीखनलाल : 'भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास', लखनऊ हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1964.
4. उपाध्याय, आचार्य बलदेव : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, वाराणसी, चौखम्भा, ओरियन्टलिया, 1976.
5. चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद : भारतीय दर्शन : सरल परिचय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965, पृष्ठ- 45.
6. चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद : भारतीय दर्शन : सरल परिचय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965, पृष्ठ-54
7. झा, पी० : पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्स, वाराणसी, हिन्दी यूनिवर्सिटी प्रेस, 1942.
8. महाभारत, 1.1.7.
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.17.
10. वैशेषिक सूत्र. न०-2



Mindfulness In Relation to Cognitive Distortion Among Adolescents

Prof. (Dr.) Aruna Anchal, Head,

Ms. Surinder Kaur, Research Scholar,

Dept of Education, Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak.

Abstract :-

Adolescence is a pivotal period marked by significant growth and challenges. Central to this phase is cognitive development, often influenced by both internal changes and external factors. Mindfulness offers a strategic approach to navigating the potential cognitive distortions that arise. Cultural norms, educational systems, and personal pursuits, including arts and nature, provide a foundational context for adolescent experiences. Athletics and spirituality offer frameworks for discipline and introspection, respectively. The dynamics between parents and adolescents, along with peer relationships, significantly affect cognitive perspectives. Modern challenges, like digital immersion, add layers to their experiences. Media's portrayal, financial literacy, and evolving relationship definitions further shape this phase. Activities outside the academic curriculum, nutrition, travel, music, and identity exploration become integral for holistic growth. The role of community engagement and volunteering also underlines the importance of societal connectivity.

Keywords :- Cognitive Distortion, educational systems, Mindfulness

Introduction :-

Mindfulness and cognitive distortions are two concepts that have taken centre stage in the realms of psychology, self-help, and even in academic curricula. Adolescence, marked by drastic physical, emotional, and psychological changes, serves as a crucial point to examine these themes. According to Su and Shum (2019) mindfulness moderates the relationship between critical thinking and cognitive distortions, suggesting that mindfulness can help reduce cognitive distortions.

Mindfulness, originally rooted in ancient Eastern philosophies, particularly from Buddhist traditions, primarily refers to the quality of being present, attentive, and non-judgmental to the unfolding of experience moment by moment (Amaro & Singh, 2020). By cultivating this presence of mind,

individuals can observe their thoughts and feelings without being overwhelmed or driven by them. As a result, one can differentiate between reality and the stories or narratives constructed by the mind. Cognitive distortions, on the other hand, are skewed perceptions or biased ways of thinking about oneself and the world. They can range from black-and-white thinking (where everything is either all good or all bad) to magnification (blowing things out of proportion) and emotional reasoning (believing that what one feels must be true). For adolescents, these distortions can heavily influence their self-perception, worldview, and decision-making processes. Cognitive distortions are also an essential factor in the development and maintenance of post-traumatic stress disorder (PTSD) (Nawal Ouhmad et al., 2023).

Adolescence is a transformative period where individuals are struggling with their identities, seeking autonomy, and understanding their place in the world. This transition can amplify the susceptibility to cognitive distortions due to the surging hormones, neural changes, and social pressures. The intensity of experiences during this phase often sets the stage for the establishment of long-term patterns of thinking, behaving, and relating to the world. Adolescence is a period of significant physiological and neuropsychological changes that affect personal growth and relationships with others (Parfanovych et al., 2022).

Introducing mindfulness in this volatile phase can have profound implications. As adolescents become more aware of their thoughts, they can begin to notice the patterns or trends in their thinking. Recognizing cognitive distortions becomes easier when one maintains a stance of an observer, noticing thoughts without becoming enmeshed in them. According to Kang et al. (2012) mindfulness can help prevent suppression or thought distortion, thus addressing cognitive distortions.

Mindfulness also fosters an environment of acceptance and compassion. Instead of getting frustrated or overwhelmed by distorted thoughts, adolescents learn to treat themselves with kindness, understanding that such thoughts are not reflections of their true selves but fleeting constructs of the mind.

While the benefits of mindfulness are plentiful, it's also crucial to acknowledge its limitations. Mindfulness is not a panacea. For some, the process of turning inward can be confronting, bringing up traumatic or painful memories. Hence, while it offers tools to manage cognitive distortions, it's not always suitable for every individual.

The relationship between mindfulness and cognitive distortions in adolescents offers a rich area for contemplation. By cultivating an environment where adolescents can introspect, recognize, and challenge their distorted beliefs with the tools of mindfulness, we potentially pave the way for a generation that is more self-aware, resilient, and grounded in reality. The implications of this not

only influence individual lives but can shape the very fabric of societies by promoting understanding, empathy, and authenticity.

Review of Literature :-

Incorporating mindfulness in schools and homes can offer a structured approach. Educators and parents, equipped with the right tools and understanding, can introduce adolescents to mindfulness practices in a manner that resonates with them. By integrating these practices into daily routines and fostering an environment of open conversations about feelings, thoughts, and perceptions, the young can be guided towards a healthier mental and emotional landscape (Plamen Miltenoff & Milne, 2020). The essence of mindfulness, though simple in theory, requires consistent practice. Incorporating mindfulness practices into daily routines, classrooms, or therapeutic settings can be a game-changer. Simple activities such as mindful breathing, body scans, or even mindful eating can serve as gateways to cultivating this awareness (Vanzhula, 2022).

According to Tasnim and Eishita (2022) modern technology, such as smartphones and augmented reality, can be used to measure cognitive distortions through serious gaming approaches like ARCoD. The advent of technology, especially smartphones and social media, has brought about a sea of changes in how adolescents perceive and engage with the world. The constant influx of information and the allure of virtual validation can exacerbate cognitive distortions, making it important to understand this dynamic.

Mindfulness training can be used as a therapeutic method for adolescents with ADHD, helping to improve their mental and physical condition (Blaszczak, 2022). While mindfulness is a universal concept, the way it's introduced and practised can be tailored to resonate with the unique challenges and sensibilities of adolescents. Exploring various techniques that are adolescent-friendly can ensure greater acceptance and adherence.

Comparing the psychological complexities of adolescence with adulthood provides a broader perspective. Understanding how cognitive distortions manifest differently across these phases can offer insights into their roots and possible mitigation strategies. Adolescence and early adulthood are periods of rapid biological and social change, during which stressors can have large, and long-lasting impacts on stress biology and developmental outcomes (Doane et al., 2023). The concept of mindfulness, originating from ancient traditions, might sometimes clash with the cultural or personal beliefs of some adolescents. It's essential to approach its introduction with sensitivity, ensuring that it aligns with the individual's values and beliefs. The limitations of measuring cognitive outcomes in mindfulness-based intervention research include the lack of specific tools to measure cognitive processes and the variability in the rigour of cognitive tasks (Vago et al., 2019).

According to Arcidiacono et al. (2015) culture and community play a significant role in shaping perceptions and influencing societal perspectives. Different cultures and societies have unique ways of perceiving and addressing cognitive distortions. By focusing on the societal perspective, we can gain insights into how community and culture play a role in either mitigating or exacerbating these distortions among adolescents. For instance, in societies that place a premium on academic achievements, adolescents might struggle with immense pressure to conform to set educational paths. Any deviation or perceived failure can lead to cognitive distortions like catastrophizing. Similarly, in cultures that have rigid gender roles, adolescents exploring their gender identity might confront feelings of confusion, guilt, or inadequacy. Recognizing these societal pressures is paramount in understanding the genesis of many cognitive distortions that adolescents grapple with.

The Digital Age has a significant impact on the mindset of adolescents, affecting their personal, social, emotional, and academic dimensions of life (Kumar Singh et al., 2021). The digital revolution, characterized by the explosion of smartphones, tablets, and other interconnected devices, has dramatically reshaped the way adolescents engage with the world. Social media platforms, video streaming services, and gaming networks have become integral to their daily lives. Such digital immersion offers them unprecedented opportunities for learning, entertainment, and social connection. However, it also presents unique challenges that can significantly impact their mental and emotional well-being. Exposure to incessantly curated content on platforms like Instagram, TikTok, and Snapchat can skew adolescents' perceptions of reality. The barrage of seemingly perfect lives, achievements, and experiences can foster feelings of inadequacy, jealousy, or fear of missing out (FOMO). Such distorted perceptions, often exacerbated by the digital lens, can lead to negative self-comparison, a prime cognitive distortion. The digital realm also amplifies the classic adolescent concern: peer validation. 'Likes', 'comments', and 'shares' become quantifiable measures of social acceptance, further heightening the pressure to conform and fit into desired molds.

According to Lahtinen and Salmivalli (2020) a digital mindfulness-based program results in a reduction in anxiety and depression and an increase in psychological quality of life for upper secondary education students. Given the omnipresence of digital devices and platforms, it's increasingly essential for adolescents to cultivate digital mindfulness. This involves being aware of one's emotions, reactions, and behaviours in the digital realm. Simple practices like checking in with oneself after a social media browsing session or being conscious of screen time can lead to profound realizations. Perhaps they'll notice patterns - certain accounts or types of content that consistently evoke feelings of inadequacy or anxiety. Armed with such insights, they can curate their digital experiences to align better with their well-being. Integrating traditional mindfulness practices into the digital routine can

also prove beneficial. For instance, taking deep breaths between tasks, indulging in screen-free periods, or using apps that promote meditation and mindfulness can help grind them amidst the digital cacophony.

Suryanto and Nugraha (2022) demonstrated the use of community education to promote mindfulness and improve stress resilience in high school students and guidance and counselling teachers. One of the potent tools to counterbalance societal pressures and digital overwhelm is the power of community. Traditionally, communities have acted as support systems, guiding young members through rites of passage and the challenges of growing up. In the modern context, communities can play a pivotal role in promoting mindfulness and mental well-being. Schools, being pivotal community hubs, can introduce programs that promote self-awareness, emotional intelligence, and mindfulness. Peer support groups, where adolescents share experiences and coping strategies, can also be instrumental. Furthermore, local organizations or clubs that focus on activities like yoga, meditation, or even nature walks can act as sanctuaries for adolescents seeking solace from the relentless pace of modern life. By fostering such supportive environments, communities can equip adolescents with tools to navigate their formative years with resilience, clarity, and empathy.

Gender role socialization plays a significant role in shaping adolescent experiences and can impact their health behaviours and outcomes (Rutledge & Abrams, 2023). Gender expectations and norms deeply influence adolescents' perceptions of themselves and their surroundings. In many societies, girls and boys are still channelled into predefined roles and expectations, which can lead to cognitive distortions. For instance, girls might be encouraged to prioritize aesthetics and nurturing roles, while boys might face pressures to suppress emotions and exude strength. These stereotypes can hinder the genuine self-expression and self-understanding of adolescents, necessitating the importance of challenging and redefining such norms.

Creative avenues like art, music, dance, or writing can be potent tools for adolescents to process their emotions, experiences, and aspirations. Such expressions provide a safe space for them to explore their identities, confront their fears, and celebrate their joys. When shared with others, these creative pieces can foster understanding and solidarity among peers, bridging the gaps of miscommunication or isolation. Art has the power to instil self-worth, confidence, and ownership of actions, helping individuals overcome disadvantages and transform their lives (Sandoval, 2015).

The connection with nature can be a grounding experience for adolescents overwhelmed by the fast-paced digital world. Nature, with its rhythmic patterns and inherent calm, can act as a refuge. Activities like hiking, gardening, or even simple walks in a park can offer moments of mindfulness, reflection, and connection, reminding teenagers of the larger tapestry of life beyond screens and societal pressures. It provides an escape from daily life and has positive psychological well-being

benefits (Puhakka & Hakoköngäs, 2023).

According to Yusuf et al. (2018) Spirituality is an influential dimension in adolescent development, shaping their perception, behavior, relationships, and overall character. For many adolescents, delving into spirituality, regardless of religious affiliations, can offer clarity and purpose. It provides them with a broader framework to understand their place in the universe, the transient nature of challenges, and the essence of human connections. Spirituality can act as an anchor, offering solace during tumultuous times and guiding them toward introspection and growth.

As adolescents seek greater autonomy and self-exploration, the dynamics with their primary caregivers, typically parents, undergo significant shifts. While they might push for independence, the need for guidance, validation, and support remains. It's crucial for parents to strike a balance between granting freedom and providing a safety net, ensuring open communication channels to discuss fears, aspirations, failures, and successes. Parent-adolescent conflict coincides with important developmental changes during adolescence and varies according to individual characteristics such as gender and culture (Tsai et al., 2022).

Historically, discussions around mental health have been shrouded in stigma and misunderstanding but in recent times, there's been a noticeable shift towards openness and acceptance. Encouraging adolescents to speak up about their mental well-being, ensuring they have access to resources, and normalizing the seeking of professional help can be pivotal in addressing and mitigating potential mental health challenges. Molin et al. (2023) showed that shifting from traditional counselling to health-promoting conversations could help improve lifestyles among people with severe mental ill-health in supported housing.

Massey-Stokes (2002) discussed the nutritional needs and recommendations for adolescents. Physical well-being is intrinsically linked to mental and emotional health. As adolescents undergo rapid growth, ensuring proper nutrition becomes paramount. However, with the rise of junk food, erratic eating patterns, and often misguided dietary fads, many adolescents find themselves nutritionally compromised. Promoting awareness about balanced diets, the dangers of extreme dietary restrictions, and the benefits of regular meals can pave the way for healthier adolescent lifestyles.

Mentoring plays a crucial role in guiding adolescents' spiritual formation and helping them discover their identity and purpose Chiroma (2015). Guidance from experienced individuals, whether in academic, professional, or personal arenas, can be instrumental for adolescents. Mentors offer insights, share their own experiences, and provide a sounding board for ideas and concerns. They act as anchors, providing stability and clarity in an otherwise tumultuous phase. Cultivating mentor-mentee relationships, whether through formal programs or organic connections, can have lasting positive

impacts on an adolescent's journey.

Conclusion :-

Adolescence, characterized by rapid growth and change, is influenced by a confluence of factors that together shape an individual's cognitive and emotional landscape. The potency of mindfulness in this maze is undeniable, offering clarity between chaos. Cultural imprints, educational systems, and personal pursuits provide the platform upon which adolescent experiences are built. Modern challenges, such as the digital realm's ever-present appeal, present unique hurdles, demanding adaptability and resilience. Yet, the multitude of opportunities available today, from extracurriculars to global exposure via travel, equip adolescents with tools to navigate these challenges effectively. Relationships, both familial and social, offer support, guidance, and sometimes, lessons in conflict resolution.

A crucial takeaway is the recognition that adolescence is not a standalone phase but a continuum leading to adulthood. The experiences, values, and skills acquired during this time lay the groundwork for future endeavours. Emphasizing community ties, personal growth avenues like music and arts, and the pursuit of altruistic endeavours such as volunteering, ensures a holistic development approach. The ultimate goal remains to guide adolescents into becoming well-rounded, empathetic, and informed adults, ready to contribute positively to the world.

References :-

1. Amaro, A., & Singh, N. N. (2020). Mindfulness. Routledge EBooks, 11–33.
2. Arcidiacono, C., Mannarini, T., Sonn, C., & Brodsky, A. E. (2015). Culture and community interactions: Essentials for understanding in a globalized world. DOAJ (DOAJ: Directory of Open Access Journals).
3. Blaszcak, A. (2022). Mindfulness as a therapeutic method intended for children and adolescents with ADHD and adults. *Problemy Opiekunczo-Wychowawcze*, 606(1), 18–28.
4. Chiroma, N. H. (2015). The Role of Mentoring in Adolescents' Spiritual Formation. *Journal of Youth and Theology*, 14(1), 72–90.
5. Doane, L. D., Hastings, P. D., Parra, L. A., & Lindsay Till Hoyt. (2023). Adolescence and Early Adulthood in Context. *Psychoneuroendocrinology*, 153, 106140–106140.
6. Kang, Y., Gruber, J., & Gray, J. R. (2012). Mindfulness and De-Automatization. *Emotion Review*, 5(2), 192–201.
7. Kumar Singh, N., Kumar, V., Kumari Ahirwar, N., & Narayan Rathore, L. (2021). Impact Of Digital Age On Children And Adolescents: A Psychosocial Perspective. *Paripex Indian Journal of Research*, 10(9), 41–44.
8. Lahtinen, O., & Salmivalli, C. (2020). An Effectiveness Study of a Digital Mindfulness-Based Program for Upper Secondary Education Students. *Mindfulness*, 11.
9. Massey-Stokes, M. (2002). Adolescent Nutrition: Needs and Recommendations for Practice. *The Clearing House: A Journal of Educational Strategies, Issues and Ideas*, 75(6), 286–291.

10. Molin, J., Jonsson, L. I., & Antonsson, H. (2023). From traditional counselling to health-promoting conversations? Registered nurses' experiences of providing health counselling to people living with severe mental ill-health in supported housing. *International Journal of Mental Health Nursing*, 32(3).
11. Nawal Ouhmad, Romain Deperrois, Wissam El Hage, & Combalbert, N. (2023). Cognitive distortions, anxiety, and depression in individuals suffering from PTSD. *International Journal of Mental Health*, 1–17. Taylor and Francis Online.
12. Parfanovych, I., Kyrychenko, V., Petrochko, Z., Necherda, V., Koropetska, O., & Lavrentieva, I. (2022). Peculiarities of Assertiveness Development and Ways of Socialization of Personality in Adolescence. *BRAIN. Broad Research in Artificial Intelligence and Neuroscience*, 13(4), 163–181.
13. Plamen Miltenoff, & Milne, K. (2020). Educators and Wellbeing. *Advances in Educational Marketing, Administration, and Leadership Book Series*.
14. Riikka Puhakka, & Eemeli Hakoköngäs. (2023). Adolescents' experiences in nature: Sources of everyday well-being. *Journal of Liesure Research*, 1–20.
15. Rutledge, J., & Abrams, J. (2023). Gender role socialization and adolescent health. 647–659.
16. Sandoval, S. (2015). The Transformative Power of Art. *Undergraduate Journal of Service Learning and Community-Based Research*, 4.
17. Su, M. R., & Shum, K. K. (2019). The Moderating Effect of Mindfulness on the Mediated Relation Between Critical Thinking and Psychological Distress via Cognitive Distortions Among Adolescents. *Frontiers in Psychology*, 10.
18. Suryanto, Y. I., & Nugraha, L. N. (2022). Mindfulness Community Education for High School Students and Guidance and Counseling Teachers. *Journal of Innovation and Community Engagement*, 3(4), 215–225.
19. Tasnim, R. A., & Eishita, F. Z. (2022). ARCoD: A Serious Gaming Approach to Measure Cognitive Distortions. *IEEE Xplore*, 1–8.
20. Tsai, K. M., Perez-Brena, N. J., Perez, V., & Camacho-Thompson, D. E. (2022). Parent-adolescent conflict. *Encyclopedia of Child and Adolescent Health*, 2, 620–634.
21. Vago, D. R., Gupta, R. S., & Lazar, S. W. (2019). Measuring cognitive outcomes in mindfulness-based intervention research: a reflection on confounding factors and methodological limitations. *Current Opinion in Psychology*, 28, 143–150.
22. Vanzhula, I. A. (2022). Manipulating mindful breathing versus mindful eating: examining the effect of specific mindfulness mechanisms on food intake and eating disorder symptoms. University of Louisville's Institutional Repository.
23. Yusuf, Ah., Tristiana, R. D., & Agustina, N. (2018). Gambaran Spiritualitas Remaja Yang Tinggal Di Sekitar Eks-lokalisasi. *Journal of Health Sciences*, 11(1).



मानव जीवन में मनोविज्ञान का महत्व

अंशुमान अंशु

स्नातकोत्तर, मनोविज्ञान विभाग, ए. एन. कॉलेज, पटना।

मनोविज्ञान मानव मन एवं व्यवहार को समझने और अध्ययन करने का विज्ञान है। मानव जीवन की शुरुआत के साथ ही मानव व्यवहार अनसुलझी पहली बन गई। मानव अन्य जीवों से किस प्रकार अलग है, यह जैसे-जैसे मानव शिक्षित होता गया, उसमें इसकी समझ विकसित होती गई। जैसे-जैसे मनोविज्ञान के द्वारा मानव व्यवहार का अध्ययन किया गया, देखा गया कि मानव की समस्याएं अन्य जीवों से जटिल हैं तथा उसके व्यवहार को समझना भी मुश्किल है। "मनोविज्ञान का अंग्रेजी रूपांतरण PSYCHOLOGY है, जो दो ग्रीक शब्दों अर्थात् 'Psyche' तथा 'Logos' के मिलने से बना है। 'Psyche' का अर्थ आत्मा से होता है तथा 'Logos' का अर्थ अध्ययन या विवेचना करने से होता है। शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए तब यह कहा जाता है कि मनोविज्ञान आत्मा के अध्ययन का विज्ञान है। परंतु आजकल इस अर्थ का विशेष महत्व नहीं रह गया है और अभी मनोविज्ञान की विषय-वस्तु आत्मा का अध्ययन करना नहीं बल्कि जीव के व्यवहार तथा अनुभूति का अध्ययन करना है।"

मनोविज्ञान पहले जब शिक्षा नहीं थी या जब औपचारिक रूप से मनोविज्ञान की खोज नहीं हुई थी, तब भी कहीं न कहीं मानव जीवन में इसका स्थान था। जैसे- बाबाओं द्वारा यह विश्वास दिलाना की, झाड़-फूंक कर देने से उनकी समस्या का निवारण हो जायेगा या कोई खास तरह के उपाय करने से उनकी समस्या दूर हो जायेगी। दरअसल वो एक अशिक्षित मनोवैज्ञानिक इलाज ही हुआ करता था, क्योंकि बाबाओं पर लोगों का भरोसा इतना होता था कि उन्हें वह अपना दुःख बताकर अपनी चिंताओं से निजात पा लेते थे या विश्वास कर लेते थे कि उनकी चिंता से वो मुक्त हो गए हैं तथा बाबाओं के यह कहने पर की अब ऐसा नहीं होगा धनात्मक विचारों से भर जाते थे। जिससे छोटी-मोटी मानसिक समस्याओं से निजात पा जाते थे।

प्राक्. वैज्ञानिक काल में मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की एक शाखा थी। जब विल्हेल्म वुण्ट ने 1879 में लिपजिंग विश्वविद्यालय (जर्मनी) में प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की, तब जाकर मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र से अलग एक स्वतंत्र विषय हुआ और मनोविज्ञान औपचारिक रूप से परिभाषित किया गया।

मनोविज्ञान के विकास के साथ ही इसकी मानव जीवन में महत्ता भी बढ़ती गई या यूं कहें कि मनोवैज्ञानिकों ने अपने खोजों/सिद्धांतों द्वारा इसकी महत्ता को सिद्ध किया। जिससे समाज भी अब इसकी महत्ता को समझने-जानने लगा है तथा क्षेत्र कोई भी हो उससे मनोविज्ञान को मानव जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है।

मनोविज्ञान मनुष्य के सामान्य जीवन के व्यवहार की व्याख्या करता है साथ ही साथ यह भी बतलाता

है कि समूह अथवा समाज में रहकर व्यक्ति का व्यवहार क्या है? असाधारण तथा असामान्य व्यवहार का अध्ययन, कारण, उपचारों का भी विश्लेषण मनोविज्ञान के द्वारा किया जाता है।

मनोविज्ञान के द्वारा किसी के व्यक्तित्व का मापन भी किया जाता है साथ ही साथ मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित बुद्धि परीक्षण द्वारा बुद्धि का मापन भी संभव है। मनोविज्ञान के द्वारा मनुष्य के नैदानिक समस्याओं का समाधान भी किया जाता है।

वर्तमान समय में अत्यधिक महत्वाकांक्षा एवं प्रतियोगितावादी जीवन शैली के कारण मानव जीवन में छोटी-मोटी मानसिक समस्या का होना आम हो गया है। मनोविज्ञान के द्वारा ही पता लगाया गया कि कुछ बड़ी बीमारियों का जड़ भी मनुष्य का चिंताग्रस्त रहना है या सही मानसिक जीवन नहीं व्यतीत करना है। अतः अगर मानव जीवन को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो बहुत से ऐसे रोग जो शारीरिक रोग बनते हैं इसकी जड़ असामान्य मानसिक स्थिति, अत्याधिक तनावग्रस्त जीवन जीना है, जो परिणाम स्वरूप कई शारीरिक रोग के रूप में बाद में परिलक्षित हो जाते हैं, आज के दौर में— शुगर (मधुमेह), ब्लडप्रेसर, हृदय रोग आदि का एक प्रमुख कारण मनोवैज्ञानिकों ने स्ट्रेस, एंजाइटी तथा सही लाइफ स्टाइल का नहीं होना सिद्ध किया है।

बच्चे के जन्म के साथ ही मानव जीवन में मनोविज्ञान प्रवेश कर जाता है। इसको प्रसिद्ध तंत्रिका विज्ञानी तथा मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्राइड (1856-1939) के मनोलैंगिक विकास के द्वारा समझा जा सकता कि— यह मानव व्यक्तित्व को किस तरह प्रभावित करता है। फ्राइड के अनुसार— “लैंगिक शक्ति जिसे उन्होंने लिबिडो कहा है, जन्म के समय से ही व्यक्ति में मौजूद होता है और उसके बाद कई मनोलैंगिक अवस्थाओं से होते हुए व्यक्ति के उम्र बीतने के साथ-साथ लैंगिक शक्ति का भी विकास होता है।”² अगर इस दौरान मनोलैंगिक विकास सही से न हुआ हो तो, यह व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है, फ्राइड के अनुसार— धूम्रपान, हिंसात्मक व्यक्तित्व विकृति आदि का एक कारण सही मनोलैंगिक विकास का नहीं हो पाना है।

लिंडजे, हॉल, थोम्पसन (1989) ने मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र की समीक्षा की और उनका मत था कि— “मनोवैज्ञानिकों को तो कई दृष्टिकोण से श्रेणीगत किया जाता है। उदाहरणस्वरूप उन्हें प्राप्त प्रशिक्षण (जैसे— डॉक्टरी उपाधि या एम ए की उपाधि आदि) के अनुसार जहां वे कार्य करते हैं, विश्वविद्यालय, अस्पताल, स्कूल, निजी सेवा के अनुसार तथा अपनी पेशा से प्राप्त आय के अनुसार उन्हें कई भागों में बाँटा जाता है, परंतु मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र को सही ढंग से समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी वह श्रेणी है, जिससे यह पता चलता है कि मनोविज्ञानी क्या करते हैं। किए गए कार्य के आधार पर मनोविज्ञानियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है— पहली श्रेणी में उन मनोविज्ञानियों को रखा जाता है जो शिक्षण कार्य में व्यस्त हैं, दूसरी श्रेणी में उन मनोविज्ञानियों को रखा जाता है, जो मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर शोध करते हैं तथा तीसरी श्रेणी में उन मनोविज्ञानियों को रखा जाता है, जो मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर कौशलों एवं तकनीक का उपयोग वास्तविक परिस्थिति में करते हैं।” इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविज्ञान के तीन प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं, जो निम्नांकित हैं :-

- शैक्षिक क्षेत्र।
- प्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र।
- मनोविज्ञान के नए उभरते क्षेत्र।

जहाँ शैक्षिक क्षेत्र शिक्षण तथा मनोविज्ञान का एक प्रमुख कार्य क्षेत्र है, जो मानव-जीवन को बहुत प्रभावित करता है, जिसे इस क्षेत्र में कार्य कर रहे मनोवैज्ञानियों ने 10 शाखाओं में विभक्त किया है-

- जीवन अवधि विकासात्मक मनोविज्ञान।
- मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान।
- पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान।
- दैहिक मनोविज्ञान।
- परिणात्मक मनोविज्ञान।
- व्यक्तित्व मनोविज्ञान।
- समाज मनोविज्ञान।
- शिक्षा मनोविज्ञान।
- संज्ञात्मक मनोविज्ञान।
- असामान्य मनोविज्ञान।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के विकास से लेकर मानव व्यवहार-दृष्टि, सीखना, श्रवण, चिंतन, मस्तिष्कीय कार्य, मानव व्यवहार से जुड़े गणितीय-संख्यकीय एवं परिमाणात्मक विधियों, व्यक्तित्व के शीलगुणों का अध्ययन, समूह का व्यक्ति पर और व्यक्ति का समूह पर पड़ने वाले प्रभाव, शैक्षिक प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का अध्ययन, मानव व्यवहार की सम्पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या, असामान्य व्यवहार के कारणों, लक्षणों, प्रकारों का अध्ययन इन सभी शाखाओं के द्वारा किया जाता है।

प्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक :-

व्यक्तियों तथा समूह के समस्याओं के समाधान के लिए अपने कौशल एवं शोध का उपयोग करते हैं। इसे निम्न शाखाओं में बाँटा गया है :-

- नैदानिक मनोविज्ञान।
- सामुदायिक मनोविज्ञान।
- परामर्श मनोविज्ञान।
- स्कूल मनोविज्ञान।
- औद्योगिक एवं संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।
- सैन्य मनोविज्ञान।

इस प्रकार इन शाखाओं के द्वारा नैदानिक समस्याओं का निदान, सामुदायिक पर्यावरण में होने वाले समस्याओं को दूर करना, व्यक्ति के सांवेगिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करना, शिक्षकों एवं छात्रों के व्यवहार का अध्ययन करना व उन्हें उचित परामर्श देना है। औद्योगिक क्षेत्र के मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन तथा उनका निवारण, मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धांतों का उपयोग सैन्य क्षेत्रों में किया जाता है।

वर्तमान समय में मनोविज्ञान में नए शाखाओं का प्रादुर्भाव हो रहा है, जिनमें प्रमुख हैं :-

- पर्यावरणीय मनोविज्ञान।
- स्वास्थ्य मनोविज्ञान।

- सुधारात्मक मनोविज्ञान ।
- वायुदिक मनोविज्ञान ।
- न्यायिक मनोविज्ञान ।
- क्रीड़ा मनोविज्ञान ।
- राजनीतिक मनोविज्ञान ।
- जेरोमनोविज्ञान ।
- आर्थिक मनोविज्ञान ।
- यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान ।

मनोविज्ञान के इन उभरते क्षेत्रों के द्वारा आज मनोविज्ञान हमारे जीवन के साथ-साथ हमारे आस-पास के परिवेश यथा – पर्यावरण एवं उसके विभिन्न पहलुओं के अंतर्गत स्कूल, घर, आवाज, प्रदूषण, मौसम, भीड़-भाड़ आदि का मानव के व्यवहार पर प्रभाव का अध्ययन, स्वास्थ्य मनोविज्ञान द्वारा मानव के चिंता, अवसाद, तनाव आदि का हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि की उत्पत्ति में भूमिका का अध्ययन, सुधारात्मक मनोविज्ञान में सामाजिक नियम तथा कानून का उल्लंघन से सम्बद्ध अपराधी तथा उनके व्यवहार को सुधारना आदि करना। न्यायिक मामलों में मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, पुनर्वास विशेषज्ञ आदि के रूप में कार्य, पुलिस को अपराधियों के जटिल एवं अभिप्रेरणात्मक व्यवहार को सही ढंग से समझने में मदद करना। क्रीड़ा मनोविज्ञान के द्वारा खिलाड़ियों तथा उनके कौशलों के शीर्ष निस्पादन एवं व्यक्तिगत वर्धन, प्रशिक्षण की प्रभावशीलता में अभिप्रेरणात्मक और अधिगम अनुभूतियों से सम्बद्ध अध्ययन, खेल-कूद के क्रिया में हार-जीत का धनात्मक एवं ऋणात्मक मनोवैज्ञानिक परिणामों का अध्ययन आदि। वर्तमान समय के डिजिटल राजनीतिक युग में राजनीतिक मनोवैज्ञानिकों का किरदार बहुत अहम हो गया है। वैसे तो मनोविज्ञान की ये उभरती शाखा को प्रसिद्ध राजनीतिक मनोवैज्ञानिक एच. डी. लासवेल जिन्हें राजनीतिक मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है। इनकी पुस्तक साइकोपैथोलॉजी एण्ड पॉलिटिक्स से राजनीतिक मनोविज्ञान आविर्भाव हुआ। इस मनोविज्ञान में जनमत में परिवर्तन देश के मूल्य तंत्रों एवं विश्वास में परिवर्तन, प्रेरणा, आत्मसम्मान तथा निर्णय प्रक्रिया से सम्बद्ध नेतृत्व एवं सहभागिता का गहन अध्ययन, सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार, प्रजातिवाद, राष्ट्रवाद, अलगाववाद, आतंकवाद तथा अल्पसंख्यकों एवं बहुसंख्यकों के बीच अंतःक्रियाओं का अध्ययन आदि। जेरोमनोविज्ञान के तहत वृद्ध लोगों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार आर्थिक मनोविज्ञान में व्यक्ति किस तरह से अर्थ-व्यवस्था से प्रभावित होता है, इसका अध्ययन किया जाता है। यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान में यातायात नियमों, ऑटो मोबाईल चालकों के मनोवैज्ञानिक आशय का अध्ययन किया जाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र मनोविज्ञान से अछूता नहीं है। वर्तमान समय में मनोविज्ञान से न केवल मानव जीवन का स्तर बढ़ा है, बल्कि समायोजन करने की क्षमता का विकास भी हो रहा है। मनोविज्ञान के महत्व को देखते हुए अब सरकारी, अर्ध सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठन सभी तरह के संस्थानों में मनोवैज्ञानिकों को रखा जाने लगा है। स्पोर्ट्स, व्यापार, राजनीति, शिक्षा यहाँ तक की स्वायत्त संस्थानों में भी मनोवैज्ञानिकों को उपयोगी माना जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविज्ञान मानव जीवन के व्यावहारिक व्यक्तित्व को सुधारने के साथ-साथ

कई शारीरिक रोगों, ऋणात्मक विचारों एवं हमारे जीवन शैली को सुलभ बनाने के अतिरिक्त सामाजिक समायोजन, समूह व्यवहार आदि को समझने में भी मदद करता है। अतः आज के दौर में मनोविज्ञान मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गया है और इसकी महत्ता बढ़ती ही जा रही है। पहले जहां मनोवैज्ञानिक सलाह लेने जाने वाला व्यक्ति खुद को बीमार या मानसिक रोगी के रूप में देखता था और वह इसको समाज तथा आस-पास के लोगों से छिपाता था, वहीं अब शहरी क्षेत्रों में कम से कम लोग इसके महत्व को समझते हैं और मनोवैज्ञानिक सलाह लेने को आम डॉक्टरी सलाह के जैसे देखते हैं, किन्तु अभी भी गाँव तथा अशिक्षित क्षेत्रों में इसे सही रूप में पहुंचना बाकी है।

ग्रंथ :-

1. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, अरुण कुमार सिंह पृष्ठ संख्या-13
2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अरुण कुमार सिंह, पृष्ठ संख्या- 156
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, अरुण कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह, पृष्ठ संख्या- 3

संदर्भ ग्रंथ :-

1. अरुण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
2. अरुण कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
3. अजीरमुरहमान, जावैद अशरफ, मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास।
4. अरुण कुमार सिंह, आशीष कुमार सिंह, प्रतियोगिता मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
5. एस. के. मंगल, शिक्षा मनोविज्ञान, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
6. अरुण कुमार सिंह, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास।
7. अरुण कुमार सिंह, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
8. अरुण कुमार सिंह, उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।



जयनंदन के कथा साहित्य में सांस्कृतिक परिदृश्य : वैश्वीकरण के संदर्भ में

Roshma B.S.

Research Scholar, University College, Thiruvananthapuram, Kerala.

Raymond Williams के अनुसार Culture is the whole way of life, material, intellectual and spiritual. अर्थात् संस्कृति ही भौतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन का समग्र पथ है। उसमें सामाजिक एवं मानवीय मूल्य विद्यमान हैं। जिन्दगी के संपूर्ण पक्षों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। उससे ही भाषा छवि बनती है। प्रत्येक भाषा और साहित्य उस भाषा-भाषी के मनन चिन्तन, अनुभूति, व्यवहार आदि को अभिव्यक्त करती हैं।

संस्कृति की विशिष्टता और उत्कृष्टता के दबाव ही भिन्न समाजों में संस्कृति के संचरण और लेन-देन के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। भाषा और साहित्य निरंतर संस्कृति की वाहिका है। भाषा मानव संबंधों को मिटाते भी है और बढ़ाते भी हैं। एक भाषा-भाषी अपनी भाषा के माध्यम से आपस में मिलते हैं तो विभिन्न भाषा-भाषी के दरमियान में भाषा के कारण एक फर्क अवश्य बनी रहती है।

भाषा संस्कृति का सृजन करती है और साहित्य संस्कृति को स्वरूप प्रदान करता है। समूह की आर्थिक संरचना के बाद सबसे अधिक महत्व सभी देश में उसकी संस्कृति का होता है। संस्कृति समूह में बसने का समूचा ढंग है। जिसके भीतर धर्म सामाजिक चाल-चलन, रहन-सहन, व्यवहार, आचार-विचार, वेशभूषा, कला, विज्ञान आदि सभी तथ्य आ जाते हैं। इस तरह संस्कृति आचार-विचार और व्यक्तित्व का परिमार्जन है संस्कृति का आशय समस्त सीखे हुए व्यवहारों से है। किसी भी देश के लिए उसकी संस्कृति ही उसका नींव होती है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समूह के सांस्कृतिक विचारधारा को रूपांतरित करने में बड़ा योगदान दिया है। इस परिवर्तन को हम दो रूपों में देख सकते हैं। पहला, जहाँ एक ओर वैश्वीकरण के माध्यम से भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृतियों को आपस में मिलने का मौका प्राप्त हुआ है जिसने विनिमय की गति को बढ़ाया है तो दूसरी ओर खुद वैश्वीकरण ने अपनी एक पृथक संस्कृति को जन्म दिया है। जिसे हम बाज़ार संस्कृति नामक सूचित किया है। उपभोक्ता संस्कृति सब चीज़ या व्यक्ति को यहाँ तक कि दर्शन शास्त्र, विज्ञान, इतिहास, धर्म, राजनीति, संस्कृति, कला, साहित्य आदि सभी को बाज़ार की एक जिंस बना देती है।

कथाकार जयनंदन का जन्म बिहार के मगध अंचल के गाँव मिलकी में हुआ है। प्रसिद्ध औद्योगिक नगरी जमशेदपुर के टिस्को कारखाने में एक प्रशिक्षित मजदूर के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। उनकी रचनाओं में गाँव और शहर, किसान और खेतिहर मजदूर, औद्योगिक श्रमजीवी और खुराट अफसर, राजनीतिक नेता और सत्ता के

दलाल मौलवी और पण्डित सभी शामिल हैं। नब्बे दशक के आरंभिक वर्ष में जयनंदन रचना कर्म से जुड़े। संपूर्ण विश्व में पूँजीवाद नया रूप धारण कर रहा था। उनकी रचनाओं में भूमण्डलीकरण का झलक है।

सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाये तो वैश्वीकरण का सबसे ज्यादा नकारात्मक पहलू इसके जरिए उत्पन्न हुई बाज़ार संस्कृति है। यह संस्कृति लेन-देन पर आधारित होती है। जिसका लक्ष्य केवल लाभ मात्र है। इस बाज़ारी संस्कृति में नैतिकता की सीमाएँ टूटने लगीं, इस कारण समूह में भ्रष्टाचार तथा व्याभिचार जैसी बीमारियों ने जन्म लेना आरंभ कर दिया। इन प्रवृत्तियों ने मानव का चारित्रिक पतन तो किया साथ ही समाज के नैतिक आदर्शों तथा मापदण्डों को भी नष्ट करने में बड़ा योगदान दिया।

जयनंदन की 'आईएस ओ 9000' उदाहरण है। कंपनी को पूरी दुनिया में माल बेचना है, इसके लिए विश्व स्तरीय गुणवत्ता का प्रमाण पत्र आई.एस.ओ. 9000 चाहिए और इसलिए कंपनी इस बात को दबा देना चाहती है कि संदीप नाम का एक कर्मचारी उस वेसेल में गिरकर मर गया, जिसमें 1600 डिग्री सेंटीग्रेड के तापमान पर मोल्टेन इस्पात था। संदीप का कोई अवशेष नहीं बचा लेकिन कंपनी को एक आदमी की मौत की नहीं बल्कि सिर्फ आईएसओ 9000 प्रमाण पत्र की चिन्ता है। कंपनी ने संदीप को उस दिन अनुपस्थित दिखा दिया। नौकरी बचाने के लिए सबने कुछ नहीं बोला। संदीप का प्रिय दोस्त तरुण भी मुँह नहीं खोलता। आर्थिक उदारीकरण के रास्ते पूँजी और बाज़ार ने आदमी काम नई एम.आई. के सिवाय कुछ सोच ही नहीं सकता है।

वैश्वीकरण में उपभोक्तावाद का दूसरा नकारात्मक पहलू स्त्रियों को उपभोग की वस्तु के रूप में दिखावा करना है। 'प्रोटोकॉल' कहानी में इस बात का चित्रण है। वह अपनी प्रोटोकॉल अधिकारी को इस कार्य के लिए विवश करने की कोशिश करती है कि इंटर नेशनल क्लाइंट को खुश करने के लिए वह उसके साथ सोने में भी न झिझके। उत्पादों के आकर्षक प्रचार और प्रसार के लिए नारी शरीर और सौन्दर्य का अनुचित प्रयोग स्त्री जाति के आदर के लिए भी घातक सिद्ध हो रहा है।

'चीयर अपको लाब्लूम 96' के माध्यम से जयनंदन ने एक शहर को महानगर में परिवर्तित होते हुए दिखाया है। साकेत नामक का एक लड़का एक साल का मीडिया कोर्स कर वापिस अपने शहर लौटने के बाद संवाहिका एंडडिला इटजींस प्रजेंट् सचीयर अपकोला ब्लूम 96 .. इंटर कॉलेज फैशन शो एंड कंटेस्ट कार्यक्रम करने की योजना बना डालता है। इस काम में उसके पिता और उसकी नाट्य मंडली के सदस्य साथ नहीं देना चाहते हैं। वह उन्हें कन्विस करने के तहत कहता है कि इस कार्यक्रम से संस्था के लिए एक बड़ी राशि जुटायी जा सकेगी। साकेत का यह कार्यक्रम सफल हो जाता है। इस अपसंस्कृति के बढ़ते प्रभाव से अब ऐसी चर्चा होने लगती है कि जमाना ऐसे ही शोर और अंग प्रदर्शन वाले कार्यक्रमों का हो गया है।

जयनंदन उपभोक्तावादी संस्कृति में शहरी महानगरीय जीवन के हलचल से गुजरते हुए समय के संक्रमण को पकड़ने की कोशिश करते हैं। उपर्युक्त कहानियों के माध्यम से कथाकार जयनंदन अपसंस्कृति के खिलाफ खड़े ही नहीं दिखते और संघर्षरत आम आदमी की चेतना को धार भी देते हैं।

वैश्वीकरण से उपजी इन परिस्थितियों का निदान निश्चित रूप से हम लोगों को ही करना होगा तभी हम सांस्कृतिक अवमूल्यन को रोक सकते हैं।



प्रिंट मिडिया के समक्ष डिजिटल माध्यमों से आती चुनौतियाँ

डॉ. मोनिका यादव

सहायक प्रवक्ता, अहीर कॉलेज, रेवाड़ी-123401

सारांश :-

वर्तमान युग सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग है। आज हम आर्थिक, सामाजिक आदि सभी आधारभूत आवश्यकताओं हेतु डिजिटल माध्यमों पर निर्भर हो गए हैं। ऐसे में प्रिंट मिडिया पर संकटों के बादल धीरे-धीरे मंडराते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वर्तमान में प्रत्येक समाचार पत्र अपने ई-पत्र में भी उपलब्ध हैं। ऐसे में प्रिंट मिडिया हेतु पैदा होती चुनौतियों पर दृष्टिपात करना अनिवार्य हो जाता है।

संकेत शब्द :- न्यू मिडिया, प्रिंट मिडिया, डिजिटल मिडिया, सोशल मिडिया, समाचार-पत्र, इंटरनेट।

प्रस्तावना :-

भारतीय बाजार प्रिंट मिडिया की प्रगति की खबरों से अटा हुआ है। आए वर्ष कुछ नए अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार में वृद्धि देखी जा सकती है। वहीं कुछ पुराने अखबारों के बंद होने की भी सूचना प्राप्त हुई है। आज भी समाचार प्राप्त करने का सर्वाधिक लोकप्रिय साधन समाचार पत्र ही है।

जनगणना 2011 के अनुसार, "भारत के लगभग 68 प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं, जहाँ प्रिंट माध्यम अभी तक सबसे ज्यादा पसन्द किया जाने वाला मिडिया उत्पाद है। इसी के समानांतर स्मार्टफोन जो अब तक भारत में इंटरनेट एक्सेस का सबसे व्यापक तरीका बन चुका है डिजिटल मिडिया विशेष रूप से मोबाइल और सोशल मिडिया तेजी से सबसे महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। (अनीज एव अन्य 2016)

भारत में सर्वप्रथम जेम्स अगस्टन हिक्की द्वारा 1780 में 'बंगाल गजट' निकाला गया। तत्पश्चात् 30 मई 1826 ई0 में 'उदंत मार्तंड' को जुगल किशोर जी ने कलकत्ता से निकाला। तत्पश्चात् सम्पूर्ण पराधीन भारत के साथ-साथ स्वाधीन भारत में भी महत्ती भूमिका निभाई है।

"गत सौ-डेढ़ सौ वर्षों के अंदर संसार में जो लड़ाइयाँ, जो महायुद्ध, जो संधियाँ, जो समझौते और जो सामाजिक, राजनैतिक एवं औद्योगिक हलचल हुई उनका महान् यश अधिकतर समाचार पत्रकारों और समाचार-पत्रों को ही देना पड़ेगा। (स्वाधीनता और समाजवाद-2)

डिजिटल मिडिया की चुनौतियाँ :-

इस बात में कोई संशय नहीं है कि इंटरनेट ने प्रिंट मिडिया के लिए अपार संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। इंटरनेट के बढ़ते यूजर ने प्रिंट मिडिया को अत्याधिक प्रभावित किया है। एक रिसर्च से अवगत हुआ कि समाचार-पत्रों को अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँचने में लगभग 100 साल का समय लगा। जबकि इंटरनेट को इसी

स्थिति में पहुँचने हेतु केवल 15 साल का समय लगा।

“2010 के आखिर में पहली बार पाया गया की लोगों ने समाचार प्राप्त करने के लिए समाचार-पत्रों से ज्यादा इंटरनेट का उपयोग किया।” —(रोर्जेस्टियल एवं मिशेल, 2011)

आज भारत में प्रकाशित होने वाले पत्र भी अपना स्वरूप बदल डिजिटल दौर से गुजर रहे हैं। “दुनिया भर में समाचार संगठन, दर्शकों और विज्ञापनदाताओं को प्रिंट और टेलिविजन जैसे पारम्परिक प्लेटफॉर्म से डिजिटल, मोबाइल और सोशल मिडिया का रुख करते हुए देख रहे हैं। डिजिटल न्यूज और सोशल मिडिया का उपयोग बढ़ रहा है और मोबाइल उपकरण अमेरिका में समाचार प्राप्त करने का सबसे सामान्य तरीका बन गए हैं। (न्यूमैन एवं अन्य, 2016)

भारत जैसा देश भी इंटरनेट के बढ़ते प्रभाव से अछूता नहीं है। सोशल मिडिया के बढ़ते प्रभाव ने प्रिंट मिडिया को चुनौती दे डाली है। जी-समूह के अंग्रेजी समाचार-पत्र ‘डेली न्यूज एंड एनॉलिसिस’ (डी एन ए) ने अपने मुद्रित संस्करण को बंद कर दिया गया है। इसके साथ आगरा से प्रकाशित होने वाला ‘डी एल ए’ एवं मुंबई से छपने वाला सांयकालीन अखबार टैब्लॉईड ए आफ्टरनून डिस्पैच आदि का प्रकाशन भी बंद हो चुका है। इस प्रकार इन समाचार पत्रों का प्रकाशन बंद होना प्रिंट मिडिया के लिए वास्तव में चौकाने वाला रहा।

अखबार के बंद होने के कारणों को उजागर करते हुए जी समूल ने ‘डी एन ए’ के संदर्भ में नोटिस निकाला— “हम नए और चैलेजिंग फेज में प्रवेश कर रहे हैं। ‘डी एन ए’ अब डिजिटल हो रहा है। पिछले कुछ महीनों के दौरान डिजिटल स्पेस में ‘डी एन ए’ काफी आगे बढ़ गया है। वर्तमान ट्रेंड को देखें तो पता चलता है कि हमारे रिडर्स, खासकर युवा वर्ग हमें प्रिंट की बजाय डिजिटल पर पढ़ना ज्यादा पसन्द करते हैं। न्यूज पोर्टल के अलावा जल्द ही ‘डी एन ए’ का मोबाइल एप भी लॉन्च किया जाएगा, जिसमें विडियो बेस्ड ऑरिजनल कंटेंट पर ज्यादा फोकस रहेगा। कृपया ध्यान दे सिर्फ मिडिया बदल रहा है हम नहीं, अब अखबार के रूप में आपके घर नहीं आएंगे बल्कि मोबाइल के रूप में हर जगह आपके साथ रहेंगे। (समाचार 4 मिडिया ब्यूरो, 2019 बी)

यह अकेला नोटिस प्रिंट मिडिया हेतु चुनौती भरे परिदृश्य को उकेरने हेतु काफी है। वहीं ‘डी एल ए’ अखबार के अन्तिम दिन वह नोटिस निकाला गया—“ परिवर्तन प्रकृति का नियम है और विकासक्रम की मात्रा का भी। सूचना विस्फोट के आज डिजिटल युग में कागज पर मुद्रित (प्रिंटेड) शब्द ही काफी नहीं। अब समय की जरूरत है कि सूचना-समाचार पलक झपकते ही लोगों तक पहुँचे। इस उद्देश्य से ‘डी एल ए’ प्रिंट एडिसन का प्रकाशन 1 अक्टूबर 2019 से स्थगित किया जा रहा है। (समाचार फॉर मिडिया ब्यूरो 2019 सी)

वर्ल्ड प्रैस ट्रेंड्स सर्वे ऑफ 2016 रिपोर्ट के अनुसार — “दुनिया भर के इंटरनेट यूजर में कम से कम 40 प्रतिशत यूजर ऑनलाइन अखबार पढ़ते हैं और ज्यादातर विकसित देशों में डिजिटल प्लेटफॉर्म पर पाठको की संख्या प्रिंट से अधिक हो चुकी है (वान-इनफ्रा, 2016) फिर भी हिन्दी समाचार पत्र ‘प्रभात खबर’ की 35 वीं सालगृह के उपलक्ष्य में रांची के ‘रेडिसन’ ब्लू-होटल में आयोजित प्रोग्राम में अखबार संपादक मण्डल ने कहा— “ बेहतर अखबार के लिए कंटेंट का मजबूत होना जरूरी है। ऐसा नहीं है कि टेक्नालॉजी बदलने अथवा टीवी और सोशल मिडिया के आने से अखबारों का भविष्य खतरे में है। ऐसा होता तो जापान में अखबार नहीं छपते, क्योंकि वहां की तकनीक भी हमसे बहुत आगे है और मोबाइल भी वहां बहुत ज्यादा है। अखबारों को उस

कंटेंट पर काम करना चाहिए, जो वैबसाइट या टीवी चैनल पर उपलब्ध नहीं है। प्रिंट मिडिया का भविष्य हमेशा रहा है और आगे भी रहेगा। (समाचार 4 मिडिया ब्यूरो, 2019 डी)

निष्कर्ष :-

इस प्रकार कहा जाता है कि मिडिया की रफ्तार की संभावनाओं को सहज ही महसूस किया जा सकता है। क्षेत्रिय समाचार पत्रों के संपादकों ने अपने समाचार पत्रों के ऑनलाइन संस्करण को प्रारम्भ कर दिया है। इसके अलावा सोशल मिडिया जैसे यू-ट्यूब, फेसबुक, व्लॉग आदि के बढ़ते उपयोग ने समाचार पत्रों को जबरदस्त चुनौती दी है। जिसके चलते रेडियो स्टेशनों को भी अपनी ऑनलाइन उपस्थिति दर्ज कराने हेतु बाध्य होना पड़ा है। ऐसी परिस्थितियों को देख महसूस किया जा सकता है कि प्रिंट माध्यमों का भविष्य खतरे में है। समयभाव के कारण भी लोग ई-कंटेंट को पढ़ना चाहते हैं। ज्ञान की भूख मनुष्य में सदा बनी रहेगी। माध्यम का बदलना कोई अहम् बात नहीं है। हमारे समाचार पत्र, अपनी प्राथमिकता एवं विश्वसनीयता के कारण ई-माध्यमों पर सरताज बने रहेंगे।

संदर्भ :-

1. अनीज, जैड, चट्टोपाध्याय, पार्थसारथी, वी. एवं नीलसन, आर.के. (2016) इंडियन न्यूजपेपर्स डिजिटल ट्रांजिशन : दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान टाइम्स और मलयाला मनोरमा, यूके : रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ द जर्नलिज्म ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी।
2. माखनलाल चतुर्वेदी, स्वाधीनता और समाजवाद-2, सम्पादन : शर्मा रामबिलास, स्वराज्य प्रकाशन, नई-दिल्ली।
3. रोजेंस्टियल, टी. एवं मिशेल, ए (2011) द स्टेट ऑफ द न्यूज मिडिया ओवरव्यू। <http://stateofthedia.org/2011/Overview.2/>से पुनः प्राप्त।
4. न्यूमैन, एन, फ्लेचर आर, लेवी, डी ए एल, निलसन आर.के. (2016) रायटर्स डिजिटल न्यूज रिपोर्ट 2016 यूके : रायटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज्म, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी।
5. समाचार 4 मिडिया ब्यूरो (2019 बी अक्टूबर 09) बडे मिडिया समूह में बंद किया अखबार का प्रकाशन <http://www.samacharmedia.com> से पुनः प्राप्त।
6. समाचार 4 मिडिया ब्यूरो (2019 से सितम्बर 30) डी एल ए के बारे में आई ये बुरी खबर। <http://www.sancharmedia.com> से पुनः प्राप्त।
7. वर्ल्ड प्रैस ट्रेड्स सर्वे (2016) वान इन्फ्रा <http://www.waninfra.org-articles/2016/06/12> से पुनः प्राप्त।
8. समाचार 4 मिडिया ब्यूरो (2019 डी अगस्त 13) प्रिंट मिडिया के भविष्य पर आलोक मैहता ने कही बड़ी बात जापान का उदाहरण देते हुए। <https://www.samachar4mesdia.com> से पुनः प्राप्त।



सूर्यनाथ सिंह के उपन्यास 'चलती चाकी' और 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में व्यक्त गाँव, समाज और राजनीति का अध्ययन

डॉ. राजेश राव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

बाल साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत सूर्यनाथ सिंह ने कथा-साहित्य की दुनिया में भी गंभीरता पूर्वक कार्य किया है। सूर्यनाथ सिंह के दो उपन्यास 'चलती चाकी' और 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' अपने कथात्मक कलेवर के कारण पाठकों का ध्यान खिंचने में सफल हुए हैं। इन दोनों उपन्यासों की कथा भूमि का क्षेत्र गाँव है। उपन्यास या कहानी दोनों कथात्मक रूप अपने चरित्रों के माध्यम से अपनी वस्तु का विकास करते हैं। और किसी भी चरित्र के विकास का महत्वपूर्ण हिस्सा उसके संवाद होते हैं। इन दोनों उपन्यासों के चरित्रों का अध्ययन करने पर पाते हैं कि 'चलती चाकी' का मुख्य कथा चरित्र श्वेतानंद या निशांत निरव युवा हैं और जिंदगी में कुछ कर गुजरने की इच्छा शक्ति उसमें विद्यमान है जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' के मांघाता बाबू अपनी तिहाई जिंदगी जी चुके हैं और अवकाश प्राप्ति के बाद अपने गाँव शेष जीवन गुजारने आते हैं। श्वेतानंद समाज और देश के प्रति अपने कर्तव्यों के द्वन्द्व में हैं और अपना कार्यक्षेत्र गाँव को चुनता है। उसके मन में बहुत कुछ बदलने की भावना बहुत प्रबल है जबकि मांघाता बाबू के पास ऐसा कुछ नहीं है। हां! यह जरूर है कि स्टेशन मास्टर रहते हुए भी उन्होंने ईमानदारी से जीवन जिया। चिंतन और कार्य दोनों में ईमानदार हैं।

'चलती चाकी' का श्वेतानंद विश्वविद्यालय और कॉलेज की दुनिया छोड़कर गाँव की ओर मुड़ता है और मांघाता बाबू भी। यह विचार करने की जरूरत इसलिए पड़ी कि सूर्यनाथ सिंह के कथा चरित्रों की चिंतन दिशा गाँव की ओर ही मुड़ती है। लेकिन 'गाँव की ओर' कथा के मुड़ने के बावजूद इनके मुख्य चरित्रों की सामाजिक स्थिति एकदम अलग-अलग है। 'चलती चाकी' के श्वेतानंद यानी निशांत निरव के आसपास पढ़े-लिखे विश्वविद्यालय के दुनिया के लोग मंडराते हैं जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' के मांघाता बाबू के साथ कुंदन मिस्त्री, जगदेव, भैरोनाथ आदि एकदम देहाती लोगों का जमावड़ा है।

'चलती चाकी' में गाँव और गाँव से जुड़े हुए सामाजिक जीवन के संघर्ष और गाँव की राजनीति का यथार्थ परक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के कथानायक निशांत निरव या श्वेतानंद हैं। निशांत के श्वेतानंद बनने के पीछे की कहानी सिद्धार्थ के गौतम बुद्ध बनने की कहानी नहीं है लेकिन यह जरूर है कि जब भी कोई व्यक्ति सामाजिक कल्याण की भावना से परिवार छोड़कर बाहर निकलता है तो वह एक तरह से बुद्ध के ही रास्ते पर

चल निकलता है। चाहे वह अपने मकसद में सफल हो या असफल। बड़ा मुद्दा यह है कि क्या उसकी मंशा अपनी चीजों को लेकर ईमानदार थी या नहीं? 'निशांत की कथा' में जहाँ एक ओर पत्नी के साथ कलह सामने आती है तो दूसरी तरफ यह भी कि छात्र जीवन से ही निशांत समाज में साकारात्मक बदलाव के हिमायती रहें हैं और देश दुनिया को बदलने की भावना के साथ वामपंथी छात्र संघटन से जुड़े। उथल-पुथल के किन्हीं क्षणों में निशांत अपनी अच्छी-खासी नौकरी छोड़कर सामाजिक बदलाव के लिए सुख-सुविधा वाले जीवन को छोड़कर घर से बाहर निकलते हैं और एक घटनाक्रम में दौलतपुर गाँव टिक जाते हैं। समाज को बदलने की भावना में ही अपनी सार्थकता देखते हैं— "समाज के कल्याण के लिए कोई मिसाल कायम करनी है तो परिवार का मोह छोड़ना ही पड़ेगा"⁽¹⁾। लोगों ने सवाल उठाया— "यह वैराग्य नहीं पलायन है। तुम अपनी जिम्मेदारियों से, अपने आप से भाग रहे हो श्वेतानंद"⁽²⁾। दौलतपुर गाँव, भारत के अन्य गाँवों की तरह ही है। जिसमें गहरे स्तर पर जाति-पाति की भावना व्याप्त है। लोगों में आधुनिक दृष्टि का अभाव है तो इसका कारण हैं गाँव में व्याप्त अशिक्षा। अशिक्षा के कारण गाँव में आधुनिक दृष्टि विकसित नहीं हो पाई है। जाति के सवाल पर श्वेतानंद लिखते हैं— "जाति का ऐसा मकड़जाल इस देश में फैल चुका है कि हर जाति का अपना नेता हो गया है। हरिजनों का अलग, यादवों का अलग, राजपूतों का अलग, ब्राह्मणों का अलग"⁽³⁾।

सूर्यनाथ सिंह का उपन्यास 'चलती चाकी' एक व्यक्ति का देखा हुआ स्वप्न है। छात्र जीवन में मार्क्सवादी विचारों से गहरे स्तर पर प्रभावित निशांत नीरव जब संन्यास की ओर प्रवृत्त होता है तो गाँधीवादी जीवन दृष्टि से समस्याओं का समाधान देखता है। वह गाँव में ड्रिप ऐरिगेशन की पद्धति द्वारा सिंचाई की व्यवस्था को प्रोत्साहित करता है। धर्म और जाति के मसले को मिल-जुलकर हल करने के बारे में सलाह देता है। गाँव में व्याप्त अंधविश्वास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हल करने की कोशिश ही कामयाब होती है। गाँव की सामाजिक स्थिति ही नहीं बल्कि राजनीतिक स्थिति में भी गहरे स्तर पर जाति और धर्म का बोलबाला है। इस आधार पर देखने से रेणु के 'मैला आंचल' की याद आना स्वाभाविक है। मैला आंचल में संघर्ष बहुत गहरा है जबकि 'चलती चाकी' में समाज सुधार की अहिंसावादी दृष्टि व्याप्त है। एक जमाने में गाँव में दूध के लिए गाय-भैसों को लोगों पालते थे। लेकिन आज गाँवों की स्थिति इसके भिन्न हो गई है। अब जबकि रोजी-रोजगार के लिए लोग शहर की ओर चले गए तो सवाल उठता है कि ऐसी स्थिति में पशुओं की सेवा कौन करेगा?

उपन्यास में श्वेतानंद के गिरफ्तार होने और बिना किसी प्रतिरोध के अपने मामा, ससुर और निरंजन के साथ वापस लौटने की स्थिति, कई सवाल खड़ा करती है। मसलन, क्या सचमुच में श्वेतानंद, समाज में बदलाव के लिए कोशिश कर रहा था या वह स्वयं में एक दिगभ्रमित व्यक्तित्व का स्वामी है। अकारण नहीं है कि एक जगह निरंजन गुप्ता ने श्वेतानंद से कहा— "समाज और स्थितियों के बारे में आपकी समझ इतनी किताबी है, मुझे नहीं पता था"⁽⁴⁾। इस पूरे उपन्यास में राजनीति को लेकर बातचीत तो है लेकिन चलताऊं तरीके से। मसलन कपिलदेव बाबू बीजेपी के नेता हैं, विधायक का चुनाव लड़ते लेकिन दूसरी पार्टियों के नेताओं का कोई गंभीरता पूर्वक जिक्र नहीं है। हाँ! बहुजन समाज पार्टी के सरकार बनने की सूचना जरूर उपन्यास में दर्ज है। गांव-चौपाल और चाय की दुकानों पर सामान्य लोगों की गपशप के अलावा और कोई गंभीर राजनीतिक चर्चा उपन्यास में नहीं है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि कम संघर्ष में एक बेहतर समाज देखने का स्वप्न इस पूरे उपन्यास में दर्ज है जिसकी वैचारिक परिणति गाँधीवाद में होती है।

‘नींद क्यों रात भर नहीं आती’ में भी गाँव का परिवेश हैं। कथा के केन्द्र में हैं— मांधाता बाबू। मांधाता बाबू वाराणसी शहर में स्टेशन मास्टर थे। उन्होंने पूरा जीवन ईमानदारी से गुजारा है। शहर में रहते हुए भी गाँव के पुराने मूल्यों को उन्होंने कभी छोड़ा नहीं था। संयुक्त परिवार की समझ और नैतिक भावना उनके अन्दर विराजमान है। भाई के बच्चे भी उनके अपने ही बच्चे हैं। शहर में रहते हुए भी गाँव से उनका रिश्ता कभी कम नहीं हुआ। जब कभी वह गाँव आते उनसे मिलने—जुलने वाले लोग जरूर आते और मौका पड़ने पर पर वह भी जाते। मांधाता बाबू का मानना था कि समाज में रहते हुए हर छोटी—छोटी बात पर सम्बन्ध खराब नहीं करना चाहिए। उनका मानना है कि— “आपस में लड़—झगड़ कर भी एक—दूसरे की फिक्र करना भारतीय समाज के रिश्तों की बुनियाद को मजबूती देता है”⁽⁶⁾। शहर की जिंदगी में किसी मेहमान के आने पर कई बार देखा गया है कि लोग आसमान को सर पर उठा लेते हैं। जबकि बहुत सारी चीजों के बदलाव के बावजूद गाँव का परिवेश आज भी एक हद तक निश्चितता और अपनत्व का भाव देता है। इसका कुछ कारण तो लोग परवेश और वातावरण को मानते हैं। अकारण नहीं है कि भैरो के आगमन पर मांधाता बाबू का भाव इसी तरह का है। भैरो के आगमन पर मांधाता बाबू कहते हैं— “अरे परमोद बाबू, भैरो आए हैं। इन्हें चाय तो पिलवाइए और अगर घर में भोजन बनना शुरू न हुआ हो तो आज क्यों न बाहर ही बने भंडारा”⁽⁶⁾।

गाँव के परिवेश में रचे—बसे इस उपन्यास में राजनीतिक और सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग प्रासंगिक तरह से किया गया है। दरअसल प्रतीक की अभिव्यक्ति से रचनाकार का काम आसान हो जाता है। एक तो शब्द कम खर्च करने पड़ते हैं दूसरे अर्थ और भाव की गहराई पाठक तक सम्प्रेषित होने में आसानी होती है। इस उपन्यास में गाँव के ही परिवेश से प्रतीकों को लिया गया है। बनिया यानी पूँजीपति, जब सरकारों को अपने अनुकूल नहीं पाते हैं तो बाबा यानी धर्म का सहारा लेकर एक, छोटे राजा यानी विपक्ष के साथ मिलकर समाज के तमाम तरह के पतन को जनता के सामने रखने की कोशिश करते हैं। पूँजीपति, राजनीतिक पार्टी के आकाओं से अपने हितों के पोषण का वायदा कर लेते हैं। दिखाया जाता है कि वर्तमान सरकार का सभी दृष्टियों से नैतिक पतन हो गया है और नारा दिया जाता है, विचारों के प्रदूषण का। बाबा यानी धर्म के प्रचारक ने मोर्चा खोल दिया— “मन के बढ़ते प्रदूषण के खिलाफ और सामाजिक समरसता के पक्ष में प्रवचन करने लगे”⁽⁷⁾ अब देश भक्ति को धंधे के साथ जोड़ दिया गया। अब जो बाबा विचारों के प्रदूषण का विरोध कर रहे थे। और विरोध करते—करते देश के आध्यात्मिक नेता बन गये थे, वह अपनी लोकप्रियता का फायदा उठा के और देशभक्ति के नाम पर अपना सामान भी बेचने लगे। इस कार्य के लिए बनिया यानी पूँजीपतियों ने उनको सलाह दी कि अपनी लोकप्रियता को सामान बेचने में लगाईये, हम लोग मदद करेंगे। जंच गयी बात बाबा को— “बनियों ने लगाई पूँजी और बाबा बन गये बनिया। बेचने लगे आदमी की हर जरूरत, सेहत और समाज को सुधारने के नाम पर”⁽⁸⁾।

इस पूरे वाक्ये का निष्कर्ष यह है कि आज के समय में पूँजीपति और राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता पर कायम होने के लिए धर्म को आवरण की तरह प्रयोग करती हैं। राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता तक पहुँचने के बाद सत्ता को बनाये और बचाये रखने के लिए देशभक्ति का नारा जोर—शोर से देती हैं। वह देशभक्ति को देश से जोड़कर कर नहीं बल्कि सत्ताधारी दल से जोड़कर देखती हैं। वह इस तरह से प्रचार का हथकंडा अपनाते हैं मानों किसी पार्टी की नीतियों का विरोध करने का मतलब देश का विरोध माना जाये। इस उपन्यास में ‘मुलुक माई’ का प्रतीक इसी संदर्भ में सामने आया है। शासन के शीर्ष पर बैठा व्यक्ति कहता है— “अगर सत्ता का अपमान होता है तो

देश का अपमान होता है, मुलुक माई का अपमान होता है। आप सब सुरक्षा प्रहरियों का अपमान होता है⁽⁹⁾। राजनीतिक पार्टियाँ अक्सर सत्ता प्राप्त करने के लिए भ्रष्टाचार खत्म करने का वायदा करके जनता में लोकप्रियता हासिल करती हैं। अक्सर देखा गया है कि त्वरित रूप से जनता में इस तरह की घोषणा करने वाली सरकार के प्रति लोग ज्यादा आकर्षित होते हैं और समर्थन भी देते हैं। इसलिए 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' का मातंग राव सत्ता में आते ही घोषणा करता है— "भ्रष्टाचार देश की तरक्की में सबसे बड़ी बाधा है। इसे किसी भी हालत में समाप्त करना हमारा संकल्प है"⁽¹⁰⁾ भ्रष्टाचार को खत्म करने का वायदा करने वाले शासक मातंग राव स्वयं भ्रष्टाचारियों के सहयोग से ही सत्ता में आये थे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि उपन्यास 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में कथा के केन्द्र में वस्तुगत रूप से भले ही मांधाता बाबू हो लेकिन उपन्यास की चिंता अपने देश, समाज और राजनीतिक में होने वाला परिवर्तन की प्रासंगिक है। उपन्यास के पात्र उन चिंताओं को बड़े कारगर तरीके से व्यक्त करते हैं। यह वही चिंता और मसले हैं जिससे किसी मुल्क की दशा और दिशा तय होती है।

कह सकते हैं कि सूर्यनाथ सिंह के दोनों उपन्यास 'चलती चाकी' और 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में गाँव अपने अलग-अलग रूप में सामने आता है। 'चलती चाकी' में जहाँ गाँव की सामाजिक समस्या और जाति-पाति को उभारा गया है वहीं दूसरी तरफ 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में जाति-पाति को ज्यादा न उभारकर सामाजिक सौहार्द और मेल-मिलाप की भावना का उद्घाटन किया गया है। राजनीतिक भावना को 'चलती चाकी' में कुछ व्यक्तियों और घटनाओं के द्वारा व्यक्त करने की कोशिश की गई है। इसमें राजनीतिक क्रियाकलाप का जो चित्रण है भी वह गाँव की राजनीति के ही आसपास है। जिसमें जाति-पाति का परिलक्षण ज्यादा है। जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में राजनीति अपने वृहत् स्तर पर मौजूद है। पूरे देश और समाज को संचालित करने वाली राजनीति का वैश्विक रूप यहाँ मौजूद है। यहाँ प्रतीकों में बात करते हुए लेखक ने धर्म, पूँजी और सत्ता के गठजोड़ को सामने रखा है। इसमें दिखाने की कोशिश की गई है कि पूँजीपति अपने फायदे के लिए किस तरह धर्म और सत्ता का प्रयोग करते हैं जबकि दूसरी तरफ कुछ राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता के लिए पूँजी और धर्म के इस्तेमाल से कोई गुरेज नहीं करतीं।

कथा में चित्रित हुए तमाम बहसों के बाद यह विचार करने की जरूरत है कि आखिर सूर्यनाथ सिंह के दोनों उपन्यासों के मुख्य पात्र गाँव से ही क्यों है? कोई कह सकता है कि यह इत्तेफाक हो सकता है। लेकिन सूक्ष्मता से विचार करने पर प्रथम दृष्टया यह बात समझ में आ सकती है कि लेखक को लगता है कि 'गाँव अब भी संभावना की जगह है'। जहाँ संभावना होती है वहीं पर किसी लेखक की कलम चलती है। बावजूद, दोनों उपन्यासों की चिंतन दिशा भले ही गाँव में मिलती है लेकिन इनके कथा शिल्प में पर्याप्त अंतर है। 'चलती चाकी' में फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग किया गया है और कथा एकरेखिय चलती है जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' एक कथा-कोलाज है। इसमें मुख्य कहानी के इर्द-गिर्द अनेक कहानियाँ हैं जो मुख्य कहानी के साथ आकर मिल जाती हैं। कथा का रंग आधुनिक होने के साथ ठेठ किस्सागोई शैली का प्रयोग किया गया है। 'चलती चाकी' का कथा तत्व सीधा सरल लग सकता है और ऐसा कथा तत्व वालो उपन्यास आपने हिंदी में अक्सर पढ़े होंगे। इस मामले में प्रचलित उपन्यासों का शिल्प है। जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' के शिल्प में ताजगी है। इस तरह के कथा-समुच्चय का इस्तेमाल खतरे से खाली नहीं होता।

उपन्यास के बिखरने का खतरा बना रहता है लेकिन शुक्र है कि उपन्याकार ने इसको बांधने में सफलता प्राप्त की है। 'चलती चाकी' में गाँव, देश और समाज की अपनी बहसें हैं। श्वेतानंद का चरित्र अपने आपमें समाज की एक स्थिति को दिखाता है। जबकि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में इन वैचारिक स्थितियों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'मुलुक माई' और ऐसे बहुत सारे प्रतीकों के बारे में सहृदय जन जानते और समझते भी हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यह दोनों उपन्यास वस्तु और शिल्प के दोहरे मानकों पर प्रभावित ही नहीं करते बल्कि गाँव, समाज और राजनीति के अध्ययन को नए तर्क और चिंतन से सोचने के लिए आकर्षित करते हैं।

संदर्भ :-

1. चलती चाकी (उपन्यास), सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, ISBN – 978-81-7138-223-1, पृष्ठ –47
2. वही, पृष्ठ –70
3. वही, पृष्ठ –29
4. वही, पृष्ठ –254
5. नींद क्यों रात भर नहीं आती (उपन्यास), सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण –2017, ISBN : 978–81–7138–375–7, पृष्ठ–23
6. वही, पृष्ठ –26
7. वही, पृष्ठ –37
8. वही, पृष्ठ –39
9. वही, पृष्ठ–94
10. वही, पृष्ठ –97



कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना

धर्मेन्द्र कुमार गौड़

असिस्टेंट प्रो. हिंदी विभाग, डोनी पोलो महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश।

शोध सारांश :-

संत कबीर निर्गुण भक्तिधारा के श्रेष्ठ कवि एवं समाज सुधारक थे। भक्त कवियों की सामाजिक चेतना भी समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित हैं। कबीर सामाजिक प्रेरणा से ही समाज सुधारक बने समाज के उद्धार के लिए कटिबद्ध होकर आये। भक्ति काल में निर्गुण संतों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भारत भूमि अनेक रत्नों की खान रही है। उन्हीं रत्नों में एक रत्न थे संत कबीर। कबीर का अरबी भाषा में अर्थ होता है – महान्। वे भक्त और कवि बाद में थे पहले समाज सुधारक थे संत कबीर भारतीय जीवन के एक महान पोषक एवं चितेरे कवि है।

कुंजी शब्द :- कबीर, भक्ति, समाज, शोषण, अंधविश्वास।

प्रस्तावना :-

कबीर बहुत बड़े मानववादी व्यक्ति थे। उन्होंने जाति-पाति, ऊँच-नीच, इत्यादि से ऊँचा मनुष्य को माना और मनुष्यता को बचाने की बात कही। कबीर संतमत के प्रवर्तक और संत काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके जैसा सशक्त और क्रांतिकारी कोई अन्य कवि हिंदी साहित्य में दिखलाई नहीं देता है। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी इसमें कोई संदेह नहीं है।"

कबीर का जन्म जेठ सुदी पूर्णिमा, सोमवार विक्रम संवत् 1455 माना जाता है। किवदंती के अनुसार महात्मा कबीर ने किसी विधवा ब्राह्मणी की कोख से जन्म लिया था जो लोकलाज के भय से इन्हें लहरतारा तालाब में फेंक गई, वहाँ नीरू नामक जुलाहा दंपती इन्हें उठा लाए और इनका पालन पोषण किया कबीर के जन्म के संबंध में एक दोहा काफी प्रचलित है :-

"चौदह सौ पचपन साल गये, चंद्रवार एक ठाठ ठए
जेठ सुदी बरसात को, पूर्णमासी तिथि प्रगट भरे।"

कबीर के माता-पिता ने इनका नामकरण 'कबीर' किया जिसका अर्थ होता है- 'महान्'। कबीर ने अपने महान कार्यों से अपने नाम को सार्थक किया। कबीर का विवाह 'लोई' नामक युवती से हुआ था। जिससे इन्हें कमाल और कमली नामक पुत्र तथा पुत्री हुई। कबीर ने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की थी उनके पदों और साखियों का संग्रह बाद में किया गया वे पढ़े-लिखे नहीं थे इनके शिष्य ने इनकी रचनाओं का संग्रह "कबीर बीजक" के नाम से प्रस्तुत किया स यह कबीर के देहांत के बहुत पीछे तैयार किया गया सिखों के धर्मग्रंथ "गुरु

ग्रन्थ साहब” में भी कबीर की रचनाओं को शामिल किया गया है। कबीर की वाणी का संग्रह बीजक कहलाता है, इसके तीन भाग हैं :- साखी, शब्द और रमैनी स कबीर का काव्य गहरे जीवनानुभवों का काव्य है।

मध्य युग में राजनीतिक परिस्थितियों के साथ साथ सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता रहा। समाज में शोषण उत्पीड़न का बोलबाला था अधिकांश जनता निर्धन तथा जीवन से उदासीन थी तथा पाखंडों से घिरी हुई थी। इसके साथ ही समाज में अंधविश्वास पूर्ण रूप से विद्यमान था। उस समय कबीर ने व्यंग्य के साथ समाज पर प्रहार किया। कबीर के दोहों में व्यंग्य कूट-कूट कर भरा है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है “कबीर के समय में समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक दोनों बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही असत्य एवं मिथ्या तत्व के पुजारी होते जा रहे थे सभी क्षेत्रों में काली लकीरे दिखाई देने लगी थीं इसी के फलस्वरूप जाति तथा देश में सर्वत्र अस्त-व्यस्तता विश्रृंखलता फैली हुई थी।”

कबीर ऐसे युग में पैदा हुए थे, जब ऊँच-नीच व भेद-भाव पर आधारित कर्मकांड, अंधविश्वास, भाग्यवाद, कर्मफल आदि बुराईयां भारतीय जनता को मानव के बुनियादी हकों और हर तरह की प्रगति से वंचित रखकर उसे घोर अमानवीय स्थितियों में रहने के लिए मजबूर कर रही थी धर्म के दावेदार महाधीश बनकर अनाचार की लीलायें कर रहे थे। सामाजिक विषमताओं से तंग आकर लोग जाति परिवर्तन को उतारू हो गये थे और आर्थिक विषमताओं से सामान्य जनता की रीढ़ टूट गयी थी। कबीर कालीन समाज का धर्म के आधार पर भक्तों और योगियों में विभाजन हो गया था दोनों में परस्पर विरोध भी कायम था कबीरदास ने योग मार्ग का ऐसा सरल रूप प्रस्तुत किया जिसमें योग साधना दैनिक जीवन का कार्य करते हुए भी संभव है। कबीर तन के योग की अपेक्षा मन के योग को सफलता की प्राप्ति के लिए अधिक उपयोगी समझते थे, उनके अनुसार सच्चा योगी वहीं है जो मन में ही उपासना करता है। उनके साधना के मूल में भक्ति ही हैं उनकी भक्ति निष्काम भक्ति थी। उनके अनुसार ब्रह्मा सबके हृदय में विद्यमान है। अतः उन्होंने ऐसी भक्ति का प्रचार किया तीर्थ, मस्जिद, मूर्ति-पूजा आदि का कोई स्थान नहीं।

कबीर सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे, कबीर ने जाति-पाति की भेद-भाव पूर्ण व्यवस्था पर चोट की। पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना उनका लक्ष्य था। धार्मिक पाखंड का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं भगवान को पाने के लिए हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है वह तो घट-घट का वासी है। उसे पाने के लिए हमारी आत्मा शुद्ध होनी चाहिए स भगवान न तो मंदिर में है न मस्जिद में है वह तो हर मनुष्य में है-

“माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर
कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर”

पाखंड और रूढ़ियों का विरोध :-

कबीर ने मूर्ति पूजा की भी कड़े शब्दों में निंदा की है कबीर कहते हैं अगर पत्थर पूजने से भगवान् मिलता है तो मैं तो पूरे पहाड़ को ही पूजने लग जाऊंगा -

“पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।

तासे या चाकी भली, जा पीसा खाए संसार।।”

कबीर के अनुसार, जिसमे प्रेम दया व करुणा की भावना है वहीं सबसे बड़ा ज्ञानी है। बड़े-बड़े ज्ञानी

भी प्रेम भावना के बिना मूर्ख के समान हैं—

“पोथी पढ़ी—पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोय ।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय” ॥

कबीर निरक्षर होने के बावजूद बी बड़े—बड़े विद्वानों और दार्शनिकों को तार्किकता के क्षेत्र में पीछे छोड़ देते हैं भक्ति की धारा में भी कबीर सबसे आगे दिखाई देते हैं। कबीर मानव धर्म की एकता प्रतिपादित करना चाहते थे, उन्होंने जाति—पाति और वर्ग भेद का तीव्र विरोध किया। इस विरोध का मुख्य कारण आपसी सौहार्द और एकता स्थापित करना था उनका मानना था कि साधुओं की जाति पूछने से कुछ लाभ नहीं है यदि हमें उनसे कुछ ग्रहण करना चाहिए तो वह है उनका अमूल्य ज्ञान साधु संतों की संगति और उनका ज्ञान जातिवाद से सर्वदा सर्वोपरि है :-

जाति पाति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई ॥

हिंसा का विरोध :-

कबीर ने धर्म के नाम पर होने वाले पाखंड पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि मुसलमान परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए दिनभर भूखा रहता है, रोजा रखते हैं किंतु रात होते ही गाय की हत्या कर देते हैं ईश्वर की प्राप्ति के लिए हिंसा का रास्ता अपनाना सर्वथा अनुचित है —

दिनभर रोजा रखता है राती हनत है गाय ।

यह तो खून वह बंदगी कैसी खुसी खुदाई ॥

कबीर ने बकरी की हत्या का भी विरोध करते हुए कबीर कहते हैं कि इस तरह जीव हत्या करने से ईश्वर भी हमसे अपना मुख मोड़ लेते हैं। कबीर बाहरी स्वच्छंदता की बजाय मन की आंतरिक शुद्धता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि व्यक्ति बाहरी सौंदर्य में वृद्धि के लिए सुंदर वस्त्र पहनता है मुख को सुशोभित करने के लिए पांच सुपारी पदार्थों का सेवन करता है किंतु यह सभी कार्य जतन तब तक व्यर्थ है जब तक हम अपने मन से विकारों में शुद्ध न करें आम आंतरिक शुद्धि तो केवल हरि के स्मरण से ही हो सकती है—

अजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाहि ॥

एक हरी की नाव बिन, बांधे जमपुरी जाहि ॥

तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक पाखंडों पर प्रहार किया।”

नैतिक आदर्शों की स्थापना :-

कबीर ने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और पाखंडों का विरोध करने के साथ—साथ नैतिक आदर्शों जीवन मूल्यों को भी प्रतिपादित किया है, उनके अनुसार जो झूठ बोलता है वह पापी है और पापी व्यक्ति से ईश्वर भी अपना मुख मोड़ लेते हैं। कबीर प्रेम दया दान हिंसा पतिव्रता परोपकार क्षमा आदि नैतिक मूल्यों के पक्षधर रहे हैं—

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।

जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप ॥

जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन :-

इस कबीर ने लोगों को समझाते हुए कहा है कि चाहे कोई राजा हो, या फकीर सभी को यह संसार

छोड़कर जाना होगा। अतः सांसारिक विषयवस्तुओं में लिप्त ना रह कर अपना समय प्रभु भक्ति में लगाना चाहिए।

एक दिन ऐसा होगा, सब सूं पड़े बिछोई।

राजा राणा छत्रपति सावधान किन होई।।

मोह माया का विरोध :-

कबीर ने माया को ठगनी बताते हुए कहा है कि वह जीवन को सांसारिक विषय वासनाओं में फंसाकर उसी में लिप्त रख दी है और प्रभु भक्ति से विमुक्त कर देती है। कबीर की दृष्टि से माया पापिनी, मन को बहकाने वाली और ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधक है।

माया महा ठगनी हम जानी।

अहंकार का त्याग :-

कबीर कहते हैं कि जब तक व्यक्ति में अहम कि भावना व्याप्त है तब तक उसे ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अहंकार की भावना के वशीभूत होकर मनुष्य की आँखों पर अज्ञानता का पर्दा बढ़ जाता है। अतः अपने भीतर के अहम को त्याग कर ही इस अज्ञानता के अंधकार को दूर किया जा सकता है :-

जब मैं था तब हरि नाहि, अब हरि है तब मैं नाहि।

सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख या माहि।।

कबीर ने व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस तरह से कबीर भक्त योगी व दार्शनिक होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। कबीर ने समाज सुधार के लिए प्रबल प्रयत्न कर तत्कालीन समाज को अंधकार से निकलने का भरसक प्रयास किया।

लोकमंगल की भावना :-

कबीर दासजी संत थे और लोक कल्याण ही संतों का परम उद्देश्य होता है। कबीर कभी स्वयं के लिए नहीं जिए समस्त विश्व का कल्याण परस्पर प्रेम है। भाईचारा ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। वह दिन रात विश्व कल्याण में लगे रहते थे-

सुखिया सब संसार है खाएं अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।।

“कबीर एक एसी भक्ति-धारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्ण के व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें।”³

निष्कर्ष :-

कबीर की वैचारिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए हम ये कह सकते हैं कि वे एक ऐसे युग पुरुष थे जिन्होंने तत्कालीन समाज की सामाजिक एवं धार्मिक क्षमताओं को दूर करके समाज में संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने एक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए तत्कालीन समाज में विद्यमान आडंबरों अंधविश्वास और पाखंडों का बड़ी ही निर्भीकता से विरोध किया। समाज का कोई भी पक्ष कबीर की वाणी में। अनछुआ नहीं रहा उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की वैचारिक भेदभाव की खाई को पाटने का भी प्रयास किया और हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीर की रचनाओं में भावात्मक और साधनात्मक दोनों ही प्रकार के

रहस्यवाद को स्थान प्राप्त हुआ है। संत कबीर का संपूर्ण साहित्य समाज को एक सही मार्ग दिखा कर उस पर चलने की प्रेरणा देता है। इस तरह से कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। उनकी वाणियों में सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याण का मार्ग झलकता था जो आज भी समाज के दर्पण का काम करता है। कबीरदास का जीवन मानवीय जीवन से ओतपोत था वे सभी जीवों को एक जैसा देखते थे किसी व्यक्ति विशेष की न तो कभी निंदा करते थे और न ही स्तुति, वे उस व्यक्ति की व समाज की खुलकर निंदा करते थे जिनमें उनको आडम्बर, पाखंड व ढोंग नजर आता था।

सन्दर्भ :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ सं. 54
2. कबीर की विचारधारा, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, पृष्ठ सं. 72
3. हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ सं. 86



प्राचीन भारत और विज्ञान

नीहारिका देशमुख

जे. एस. एस. पी. कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय, गोवेली, कल्याण।

अग्रंज विद्वान फ्रांसिस बेकन के साहित्यिक क्षितिज पर प्रकट होने के फलस्वरूप यूरोप का बौद्धिक विवेक जागृत हुआ और उसी के प्रयत्नों ने भौतिक शास्त्र के विद्वानों के परम वास्तविक स्वरूप से हमें अवगत कराया। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति विज्ञान का पहला महानतम उपहार था। विज्ञान के क्षेत्र में प्रकाश की प्रथम किरण पश्चिम के आकाश में ही फूटी थी और इस कारण समूचे विश्व में विकास चक्र गतिमान हुआ, यह हमारी धारणा है। इस धारणा के कारण मात्र पश्चिम का अनुकरण करने की वृत्ति हमारे देश में दिखाई देती हैं। परिणाम स्वरूप हमारी कोई भूमिका हो सकती है, इस विश्वास का अभाव आज चारों ओर दिखाई देता है। सत्य यह है कि ज्ञान के आदि स्रोत वेद है। वेदों में वर्णित ज्ञान का मंथन करके हमारे ऋषियों ने शिक्षा, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि की रचना की हैं। विशेषकर भारत में अध्ययन एवं अनुसंधान की परम्परा अति प्राचीन है। भृगु, वशिष्ठ, भारद्वाज, अत्रि, शौनक, शुक्र, नारद, कश्यप, अगस्त्य, परशुराम, द्रोण, आदि ऋषियों ने विमान विद्या, नक्षत्र विज्ञान, रसायन, अस्त्र-शस्त्र विज्ञान, तथा जलयान विज्ञान जैसे जीवन के अनेक क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध किया है।

‘भृगु-संहिता’ के प्रारंभ में ही ऐसे दस शास्त्रों का उल्लेख है—कृषि शास्त्र, जल शास्त्र, खनिज शास्त्र, नौका शास्त्र रथ शास्त्र, अग्नियान शास्त्र, प्रकार शास्त्र, नगर रचना तथा यंत्र शास्त्र। परन्तु २०वीं सदी के प्रारम्भ में जगदीश चंद्र बसु, राव साहेब, आचार्य प्रफुल्लराय, ब्रजेन्द्र नाथ आदि विद्वानों ने अपने अध्ययन के द्वारा सिद्ध किया कि भारत मात्र धर्म, दर्शन के क्षेत्र में ही नहीं अपितु विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी अग्रणी था। इतना ही नहीं हमारे पूर्वजों ने विज्ञान और अध्यात्म का समन्वयन किया था। ‘कृन्वन्तो विश्वमार्यम्’ अर्थात् संपूर्ण विश्व को श्रेष्ठ बनायेंगे और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ संपूर्ण व सुधा एक कुटुम्ब है की उदात्त भावना ले संपूर्ण विश्व में संचार किया तथा विश्व की सुख, समृद्धि हेतु कला, कौशल तथा दर्शन का अवदान दिया। इसी कारण भारत प्राचीन काल से जगद्गुरु कहलाता रहा।

इतिहास में भारत मात्र धर्म, दर्शन, तत्वज्ञान एवं श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के साथ ही व्यापार, व्यवसाय, कला, कौशल में भी अग्रणी था। एक प्रसिद्ध स्विस लेखक बजोरन लेंडस्ट्राम ने अपनी पुस्तक ‘भारत की खोज’ में लिखा है — “मार्ग में साधन कई थे, परन्तु उद्देश्य सदा एक ही रहा, प्रसिद्ध भारत भूमि पर पहुँचने का जो देश सोना,

चाँदी, कीमती मणियों और रत्नों, मोहक खाद्यों, मसालों, कपड़ों से लबालब भरा पड़ा था।" इससे मिलते-जुलते अनुभव अनेक चिंतकों, शोधकों आदि के हैं। इसी कारण सदियों से भारत सोने की चिड़िया भी कहा जाता रहा है।

भारत में कई वर्षों तक हुए बर्बर आक्रमणों, लूट, मजहबी आक्रमणों, सामाजिक दोषों, अंग्रेजों के शासन आदि से देश का इतना शोषण हुआ कि सोने की चिड़िया कंगाल हो गयी। हमारे देश में एक धारणा बनी हुई कि पश्चिम का व्यक्ति बुद्धिवादी, तर्कशील तथा प्रयोगशील होता है और भारत का व्यक्ति ग्रंथ को ही प्रमाण मानने वाला, अंधश्रद्धालु तथा प्रयोग से दूर भागने वाला होता है। परन्तु वास्तविक स्थिति क्या है ? आइये हम थोड़ा भारत के धातु विज्ञान के इतिहास पर एक नजर डालें।

धातु विज्ञान का भारत में प्राचीन काल से व्यावहारिक जीवन में उपयोग होता रहा है। यजुर्वेद के एक मंत्र में निम्न उल्लेख आया है— 'अश्मा च में मृत्तिका च में गिरियश्च में पर्वताश्च में सिकताश्च में वनस्पतयश्च में हिरण्यं च मेयश्च में श्यामं च में लोहं च में सीस च में त्रपु च में यज्ञेन कल्पन्ताम' (कृ. यजु. ४-७-५) अर्थात् — मेरे पत्थर, मिट्टी, पर्वत, गिरि, बालू, वनस्पति, सुवर्ण, लोहा, लाल, लोहा, ताम्र, सीसा, और टिन यज्ञ से बढ़े। रामायण, महाभारत, पुराणों, श्रुति ग्रंथों में भी सोना (सुवर्ण, हिरन्य), लोहा (श्याम), टिन (त्रपु), चाँदी (रजत), सीसा, तांबा (ताम्र), कांसा आदि का उल्लेख आता है। चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, ने सुवर्ण, रजत, ताम्र, लोह, अभ्रक, पारा, आदि से औषधियाँ बनाने की विधि का विस्तार से वर्णन अपने ग्रंथों में है। केवल प्राचीन ग्रंथों में ही विकसित धातु विज्ञान का उल्लेख नहीं मिलता, अपितु उसके अनेक प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं। उनमें कुछ उदा. निम्नानुसार हैं— धातु विज्ञान के क्षेत्र में जस्ते की खोज एक आश्चर्य है। 'आसवन प्रक्रिया' के द्वारा कच्चे जस्ते से शुद्ध जस्ता निकलने की प्रक्रिया निश्चित ही भारतीयों के लिए गर्व का विषय है। राजस्थान के 'जवर' क्षेत्र में खुदाई में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में इसके निर्माण की प्रक्रिया के अवशेष मिले हैं। मात्र दस फीसदी जस्ते से पीतल सोने की तरह चमकने लगता है। इतिहास में भारतीय इस्पात की श्रेष्ठता के अनेक उल्लेख मिलते हैं। अरब और फारस में लोग भारतीय इस्पात की तलवार के लिए लालायित रहते थे। अंग्रेजों ने सर्वाधिक कार्बन युक्त इस्पात को बुट्ज नाम दिया। मेजर जेम्स फ्रेंकलिन सागरमिंट के कप्तान प्रेसग्रेव का हवाला देते हुए कहते हैं कि — भारत का सरिया (लोहा) श्रेष्ठ स्तर का है। स्वीडन के लोहे को भी वह मात देता है जिसका लोहा यूरोप में उस समय श्रेष्ठ माना जाता था।

रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, रघुवंश, कुमार संभव आदि ग्रंथों में सोने व चाँदी का उल्लेख मिलता है। स्वर्ण की भस्म बनाकर उसके औषधीय उपयोग की परम्परा शताब्दियों से भारत में प्रचलित रही है। 'रसरत्न समुच्चय' ग्रंथ में अनेक धातुओं को भस्म में बदलने की विधि तथा उनका रोगों के निदान में उपयोग विस्तार के साथ लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि धातु विज्ञान भारत में प्राचीन काल से विकसित रहा है और इसका मानव कल्याण के लिए उपयोग करने के लिए विविध विधियाँ भारत में विकसित की गयी।

चिकित्सा विज्ञान के विकास का इतिहास भारत में काफी पुराना है। इसमें शरीर शास्त्र, औषधि निर्माण,

औषधियों के प्रकार, गुण आदि का गहरा विचार किया गया। उस समय कितना सूक्ष्म विश्लेषण हमारे यहाँ किया गया था। चरक संहिता में स्वस्थ मनुष्य की दी गयी परिभाषा आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से अधिक व्यापक तथा उपयुक्त है।

समदोषः स्माग्निश्च समधातुमलक्रियः ।

प्रसन्नात्मैन्द्रियमनाः स्वस्थो इत्यमिधीयते ।

—चरक संहिता

अर्थात्— जिसका त्रिदोष (वात, कफ, पित्त), सप्त धातु, मल प्रवृत्ति आदि क्रियायें संतुलित अवस्था में हो, साथ ही आत्मा, इंद्रिय एवं मन प्रसन्न स्थिति में हो, वही स्वस्थ मनुष्य कहलाता है।

इसी प्रकार 'सुश्रुत संहिता' में ३८५ वनस्पति जन्य, ५७ प्राणीजन्य, तथा ६४ खनिज द्रव्यों से औषधीय प्रयोग व विधियों का वर्णन है। इनसे चूर्ण, आसव, काढ़ा, अवलेह आदि अनेक रूपों में औषधियाँ तैयार होती थी।

इंग्लैंड के शल्य चिकित्सकों के विश्व प्रसिद्ध संगठन ने एक कैलेण्डर निकाला था, उसमें विश्व के अब तक के श्रेष्ठ शल्यचिकित्सकों के चित्र दिए गए थे। उसमें पहला चित्र आचार्य 'सुश्रुत' का था तथा उन्हें विश्व का पहला शल्य चिकित्सक बताया गया था। प्राचीन काल में हमारे देश के चिकित्सकों ने अच्छी प्रगति की थी, और अनेक ग्रंथ रचे गए थे। 'सुश्रुत संहिता' में शस्त्र क्रियाओं के लिए आवश्यक यंत्रों तथा उपकरणों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। शल्य चिकित्सा के पहले संज्ञा—शून्य (एनेस्थेशिया) की विधि व इसकी आवश्यकता भी बताई गयी है। 'सुश्रुत संहिता' में मनुष्य की आँतों में कर्कट रोग (कैंसर) के कारण उत्पन्न हानिकारक तंतुओं को शस्त्र क्रिया द्वारा हटा देने का विवरण है, इसके साथ ही शस्त्र क्रिया द्वारा शिशु जन्म की विधियों का वर्णन किया गया है। 'न्यूरो—सर्जरी' अर्थात् नाड़ियों पर शल्य—क्रिया का उल्लेख है तथा आधुनिक काल की सर्वाधिक पेचीदा क्रिया 'प्लास्टिक सर्जरी' का सविस्तार वर्णन सुश्रुत के ग्रंथ में है, साथ ही आधुनिक विधियों का उल्लेख भी इसमें है। कई विधियाँ तो ऐसी भी हैं जिनके बारे में आज का चिकित्सा शास्त्र भी जानता नहीं।

इसी प्रकार जल संरक्षण व जल के महत्व को हमारे पूर्वजों ने पहले ही जान लिया था। 'कौटिल्य' ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपने 'अर्थशास्त्र' में कहा है कि— 'राजा जिस पवित्र भाव से मंदिर का निर्माण करता है उसी भाव से उसे जल रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।' आज पानी का संकट हमारे सामने बड़ी समस्या बना हुआ है। कौटिल्य जल रोकने हेतु बांध बनाने का भी उल्लेख करते हैं तथा इसका भी वर्णन करते हैं कि बांध कहा बनाना चाहिए और कहा नहीं। दो राज्यों की सीमाएँ मिलती हैं वहाँ बाँध नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से वह झगड़े का कारण बनेगा। आज कावेरी, नर्मदा नदी के विवादों को देखकर समझ सकते हैं कि वे कितने दूरद्रष्टा थे।

निष्कर्ष :- पश्चिम का अधानुकरण करने के लिए जितना श्रम व धन का हम व्यय कर रहे हैं। उतना श्रम अगर हम अपनी प्राचीन संपदा के अध्ययन, विश्लेषण तथा प्रयोग में लगाये, जो हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्षों पूर्व अपनी अथक साधना से जो ज्ञान अर्जित किया था, और आज यहाँ—वहाँ बिखरा पड़ा है उसे ज्ञात कर नयी

खोज कर सकते हैं। एक ओर जहाँ हमने स्वयं अपनी अपार ज्ञान संपदा का समुचित उपयोग और आदर नहीं किया, वही दूसरी ओर पश्चिमी राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने उस ज्ञान के महत्व को माना और संस्कृत विद्वानों की सहायता से उसका उपयोग करके नयी तकनीकों का अविष्कार किया और विज्ञान जगत में सम्मान प्राप्त किया तथा यह सिलसिला निरंतर जारी है। हम अपनी प्रतिभा से नए अविष्कार कर अपने देश को विकसित देशों की कतार में खड़ा कर सकते हैं।

सन्दर्भ :-

१. सोनी सुरेश, (२००८) 'भारत में विज्ञान की उज्वल परम्परा,' भोपाल, अर्चना प्रकाशन।
२. शोध संचयन, ISSN 2249-9180 (Online) ISSN 0975-1254 (Print) RNI No.: DELBIL/2010/31292
वैज्ञानिक शोध की प्राचीन परम्परा – प्रो. कृष्ण बिहारी पांडेय।
३. http://www.shodh.net/index.php?option=com_content&view=article&id.38&Itemid/2
४. <http://www.essaysinhindi.com/science>



भारत की ज्ञान परंपरा

राखी

शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पृथ्वी पर मानव का इतिहास उसके सामाजीकरण, सांस्कृतिक उत्थान, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक समायोजन की क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम है। इस क्रम में मानव खानाबदोश और कबायली जीवन से प्रगति करता हुआ वर्तमान तकनीकी मानव तक पहुंचा है। मानव विकास की प्रक्रिया दीर्घकालिक है जिसने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में एक लाख से अधिक वर्षों का समय व्यतीत किया है। समय की गतिशीलता तथा मानव विकास के मध्य सतत् रूप से अंतराल विद्यमान रहा है किन्तु इस अंतराल को भरने के लिए लगातार एक तत्व का सृजन किया है वह तत्व 'ज्ञान' है। ज्ञान का सृजन तथा मानव विकास समानुपातिक रूप से संपूर्ण मानव जाति के इतिहास में वृद्धिशील रहे हैं और इस संदर्भ में पृथ्वी के भूक्षेत्र पर सूर्य की उपमा यदि किसी देश को प्रदान की जा सकती है तो वह देश भारत है।

भारत ने अपने 5000 वर्षों के इतिहास में विश्व को शिक्षा, विज्ञान, अध्यात्म, कला, तकनीकी, चिकित्सा, खगोल, गायन और वादन जैसे क्षेत्रों में, लिखित प्रामाणिक ज्ञान प्रदान किया है। लेखन कला के विकास के पूर्व से ही भारत ने अपनी श्रुति परंपरा द्वारा, संचित ज्ञान का पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रसार किया है। विश्व में जब अधिकांश सभ्यताएं कबीलायी जीवन व्यतीत कर रही थी, भारत में उस समय सिंधु घाटी की सभ्यता उन्नति के शिखर पर थी जहां सुनियोजित नगरीकरण गणितीय मानकों पर आधारित स्थापत्य कला का विकास, व्यापार के सिद्धांतों, कला, विज्ञान एवं तकनीकी का जन्म ही नहीं बल्कि तत्कालीन समय का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होता है।

विश्व के सबसे प्राचीनतम लिखित ग्रंथ-वेद भारत की देन है। वेदों के लेखन के पूर्व ज्ञान की परंपरा श्रुति के माध्यम से अविरल विस्तारित होती रही है जिसका समायोजन वर्तमान की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार 'गुरु-शिष्य परंपरा' में निहित रहा है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली में शिष्य गुरु के समीप रहकर, उनसे तर्क-वितर्क करके ज्ञानार्जन करते थे। इसके दृष्टांत भारतीय इतिहास में असंख्य हैं। उदाहरण के लिए-उपनिषदों की शिक्षा का प्रसार इसी माध्यम से हुआ है। उपनिषद् का अर्थ ही है 'गुरु के समीप बैठना' तथा उनसे तर्क द्वारा शिक्षा ग्रहण करना, फिर चाहे वह यम-नचिकेता का संवाद हो जिसमें नचिकेता यमराज से तर्क करते हैं या फिर अन्य उपनिषद्। भारतीय आश्रम व्यवस्था के प्रथम 25 वर्षगुरु को

ही समर्पित माने जाते हैं जिसमें मानव का समाज में प्रवेश से पूर्व विधिवत प्रशिक्षण किया जाता था जिससे वह एक उन्नतशील, कर्तव्य परायण, ज्ञानी तथा सद्पुरुष बन सके।

ज्ञानार्जन की इस प्रक्रिया में भारत ने कभी संकुचित दृष्टिकोण नहीं अपनाया। उन्होंने उन सभी स्रोतों का उत्तम उपयोग किया है जहां से उन्हें ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह उस कालखंड में भी ज्ञान अर्जन के लिए सक्रिय रहा है जब विश्व 'अयंनिजःपरोवेति' के सिद्धांत को अपना रहा था और भारत में उसी दौर में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा को जन्म दिया। अपने समग्र अतीत में हमने विश्व को ज्ञान प्रदान किया है और विश्व से सहर्ष ज्ञान प्राप्त भी किया है। उदाहरण के लिए पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में लिखा है कि 'यद्यपि यवन (यूनानी) म्लेच्छ हैं। किंतु वे ऋषियों की तरह पूज्य हैं क्योंकि वे ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता हैं।' यह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि भारत ने अपने ज्ञान के भंडार को समृद्ध करने के लिए, सभी द्वार 'आनोभद्राक्रतवोयंतुविश्वतः' की तर्ज पर खोल दिए हैं कि समस्त संभावित मार्गों से ज्ञान का संचय हो सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य मानव का नैतिक परिष्कार, आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक विकास तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उच्चतम बिंदु को प्राप्त करना रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में, गुरुकुल व्यवस्था के अंतर्गत शिष्य को गुरु के सानिध्य में रहकर, कठोर अनुशासन का पालन करते हुए ज्ञानार्जन करते थे। ब्रह्मचर्य का पालन, गुरुकुल के कार्यों में सहयोग, गुरु की सेवा शिष्य का परम धर्म था। इस प्रक्रिया में उनका नैतिक परिष्कार होता था जिसका व्यवहारिक स्वरूप उनकी शिक्षा की समाप्ति पर, समाज में उनके क्रियाकलापों में परिलक्षित होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यालयों ने गुरुकुल की भूमिका प्राप्त कर ली है किंतु उद्देश्य में परिवर्तन नहीं हुआ है। छात्रों को उचित अनुशासन, समानता व बंधुत्व का भाव, नैतिक दृष्टिकोण का विकास विद्यालयी शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

मानव का आध्यात्मिक विकास, मानव की स्वयं की शांति, सामाजिक समरसता, सौहार्दपूर्ण संबंध तथा विश्व कल्याण का मूल है। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग, यज्ञ क्रिया, आध्यात्मिक साहित्य के पठन-पाठन तथा गुरु के उपदेशों को अंगीकृत करने मानव का आध्यात्मिक विकास होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में खेल प्रतियोगिताएं, रचनात्मक कार्यों की प्रदर्शनी, शिक्षणोत्तर प्रायोगिक कार्यों का समावेश आदि मानव के आध्यात्मिक विकास का मूल तत्व है। गुरु का सम्मान करना, बड़ों का आदर तथा चोटों से से प्रेम की भावना का विकास आध्यात्मिक उन्नति को प्रदर्शित करता है। आध्यात्मिक उन्नति से व्यक्ति की सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होती है, सामाजिक संबंधों में प्रगाढ़ता का समावेश होता है तथा यह देश की सीमाओं से परे विश्व में अपनी छाप छोड़ती है। उदाहरण के लिए भारत की आध्यात्मिक शिक्षा विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया तथा हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म भारत की सीमाओं से निकलकर अनेक देशों में फैल गया। इस प्रकार योग तथा भारतीय आयुर्वेद अपनी छाप पूरे विश्व पर छोड़ रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा व्यक्ति के सामाजिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत की सांस्कृतिक व विजातीय विविधता, सामाजिक स्तरीकरण, भेदभाव या लैंगिक भेदभाव से परे, संपूर्ण समाज के उत्थान पर बल

देती है। यद्यपि प्राचीन भारत में शिक्षा तथा ज्ञानार्जन को कुछ वर्गों तक सीमित कर दिया गया था किंतु कालांतर में यह सर्व सुलभ हो गई तथा वर्तमान में यह भेदभाव से परे सभी को उपलब्ध है। इसके लिए सरकार ने शिक्षा नीतियों के माध्यम से अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान कर अपनी ज्ञान परंपरा को जन-जन तक प्रसारित करने तथा देश के समग्र विकास में सभी लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए, सभी आयु वर्ग के लोगों की शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित की है। इसके माध्यम से समाज की विविधता की रक्षा, समरसता, ज्ञान आधारित विकास तथा सामाजिक बंधुता के विकास के साथ-साथ सहिष्णुता, अंतर्संबद्धता का विकास होगा जो एक श्रेष्ठ भारत के निर्माण में सहायक है।

ज्ञान का एक उद्देश्य व्यक्ति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास भी है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने इस दिशा में प्राचीन काल से ही कार्य प्रारंभ किया तथा सतत् वैज्ञानिक ज्ञान का परिष्कार किया। प्राचीन भारत में विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत रहा है। भारत ने विश्व को खगोल शास्त्र के सिद्धांत, गणित शून्य का आविष्कार, रेखा गणित, त्रिकोण मिति, मापन प्रणाली, दशमलव पद्धति, चिकित्सा के क्षेत्र में चरक संहिता, सहित अनेक ग्रंथों में शल्य क्रिया, आयुर्वेद, प्राकृतिक निदान प्रणाली आदि का लिखित प्रामाणिक ज्ञान दिया है। स्थापत्य विज्ञान के अवशेष, हड़प्पा संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए विश्व को प्रथम नगरों के दर्शन करवाने तथा विश्व को सभ्यता के साथ रहना सिखाने में महत्वपूर्ण रहे हैं। इसी ज्ञान परंपरा के अगले चरण में, वर्तमान आधुनिक भारत में ज्ञान-विज्ञान की महत्ता के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। भारत ने विश्व को कृषि की तकनीकी, व्यापार के सिद्धांत दिए जिसने विश्व में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का उदय हुआ और इसी व्यापार के बल पर भारत सोने की चिड़िया बना। यह सब भारतीय ज्ञान परंपरा की देन है।

अर्थव्यवस्था क्षेत्र में भारत ने विश्व को उत्पादन प्रणाली, बाजार प्रणाली, विपणन संबंधी ज्ञान तथा माप-तोल की प्रक्रिया का ज्ञान प्रदान किया है। हड़प्पा सभ्यता से पूर्व नव पाषाण काल से ही भारत कृषि उत्पादन प्रणाली का विकास कर चुका था। कोल्डी हवा तथा लुहरा देव जैसे स्थलों से प्राप्त अनाज के साक्ष्य इसकी प्रामाणिकता को पुष्ट करते हैं। इसका समग्र विकसित रूप हड़प्पा संस्कृति में कृषिगत उत्पादनों में दिखाई देता है जहां कपास जैसी वाणिज्यिक फसलों के साथ-साथ खाद्यान्न वस्तुओं का भरपूर मात्रा में उत्पादन ही नहीं बल्कि व्यापार भी किया जा ता था। व्यापार के साक्ष्य आंतरिक व अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर प्राप्त होते हैं जिसमें सुमेरियन सभ्यता के साथ मुख्यतः व्यापार होता था। आगे चलकर भारत विश्व के व्यापार का नियंता बन गया। रेशम मार्ग पर अधिकार तथा विश्व को मसालों के निर्यात ने भारत को व्यापारिक देश बना दिया जिसकी अग्र परिणिति यूरोप, अमेरिका जैसे महाद्वीपों तक भारतीय वस्तुओं के प्रसार के रूप में हुई। आधुनिक युग में ब्रिटिश कंपनियों, के साथ अन्य यूरोपीय कंपनियों ने भारत से व्यापार के लिए सदैव लालसा प्रकट की है। वर्तमान समय में भी यह परंपरा बनी है और भारत विश्व के लिए व्यापार का एक बड़ा स्रोत है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य कभी भी संकुचित नहीं रहा। ना ही भारत ने अपने ज्ञान को छुपाया। अरबों ने भारत से शिक्षा व ज्ञान प्राप्त किया, तथा यूरोपीयों ने अरबों से ज्ञान प्राप्त कर भारतीय ज्ञान को अंगीकृत

किया। इसी क्रम में स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, रविनाथ टैगोर आदि ने भारतीय ज्ञान को विश्वपटल पर रखा तथा भारतीयता की पहचान समस्त विश्व को कराई। शिकागो की वह सभा तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठी जब स्वामी विवेकानंद ने अपना भाषण प्रस्तुत किया। अफ्रीका के नस्लभेद पर रंगभेद को समाप्त करने में महात्मा गांधी के विचारों ने अफ्रीकी राष्ट्रवादियों का मार्गदर्शन किया।

भारतीय ज्ञान परंपरा का दृष्टिकोण केवल मानव तक सीमित नहीं रहा है। इसने अपने विषय क्षेत्र में प्रकृति प्रदत्त समस्त तत्वों का समावेश किया है। भारतीय श्रुति परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ—वेदों में प्रकृति पूजा, जीव—जंतुओं के साथ उदार व्यवहार, तथा संसाधनों के उचित उपयोग की प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन है। जिस समय विश्व उपभोक्तावादी दृष्टिकोण पर आधारित ज्ञान का विकास कर रहा था, भारत में महात्मा बुद्ध ने अपरिग्रह व अगस्त्य जैसे विचार दिए जो संरक्षणवादी दृष्टिकोण पर आधारित थे। उन्होंने जीवों पर दया करने तथा आवश्यकता अनुसार संसाधनों के उपयोग पर बल दिया। इसी विचार को आधुनिक भारत में महात्मा गांधी ने आगे बढ़ाया तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर बल दिया उनके अनुसार 'पृथ्वी पर मानव उपयोग के लिए समस्त पदार्थ हैं किंतु किसी व्यक्ति के लालच को पूरा करने के लिए यह अक्षम है।' विश्व की उपभोक्तावादी प्रकृति ने आज मानव जाति के समक्ष अनेक चुनौतियाँ जैसे— भूमंडलीय उस्मान, जलवायु परिवर्तन आदि उत्पन्न की हैं जो मानव सहित अन्य प्रतिनिधि जीव—जंतुओं के विलोपन का कारण बन रही हैं। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा की संरक्षणवादी संस्कृति ने विश्व को आकर्षित किया है। इसका उदाहरण इस तथ्य पर आधारित है कि जहां विश्व में बाघों की आबादी घट रही है वहीं भारत में विश्व के एक—तिहाई बाघ घने वनों में स्वच्छता पूर्वक वितरण कर रहे हैं। भारतीय महाद्वीप में जैव विविधता की समृद्धतम उपस्थिति इसी भारतीय ज्ञान परंपरा की देन है जिसमें हम अपने साधनों का इष्टतम उपयोग करते हैं तथा त्यौहारों व रीति—रिवाजों में केवल मनुष्य की नहीं बल्कि जीव—जंतुओं, जैसे नाग पूजा, वनस्पतियों जैसे बरगद व पीपल की पूजा को भी समाविष्ट करते हैं।

विश्व आज विभिन्न तनाव के दौर से गुजर रहा है, जहां एक देश दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता कर आगे निकलने की होड़ कर रहा है जिसमें युद्ध, आतंकवाद, चरम पंथ जैसी मानवता विरोधी गतिविधियां न केवल समाज को बल्कि विश्व व्यवस्था की शांति को समाप्त कर रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा ने सदियों पहले विश्व शांति व विश्व कल्याण का समावेश किया था तथा संपूर्ण पृथ्वी को एक परिवार माना। महात्मा बुद्ध के अहिंसा के विचार, आधुनिक युग के महात्मा गांधी के विचारों में परिलक्षित होते हैं जिन पर आज विश्व के सभी प्रतिनिधि विद्यालयों शोध हो रहा है। अहिंसा, भातृत्व व समरसता, सहिष्णुता की भावना भारतीय ज्ञान परंपरा का मुख्य उद्देश्य रहा है तथा इन्हीं आदर्शों पर चलकर एक शांतिपूर्ण, सह—अस्तित्व वाली प्रगतिशील विश्व शांति व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है, जिसमें सीमाओं से परे मनुष्य—मनुष्य के अंतर्संबंध को नए आयाम मिलेंगे तथा विश्व एक गांव बनकर मानव की प्रगति करेगा।

विश्व, राष्ट्र तथा मानव के विकास में कर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। विश्व को कर्म की महत्ता सर्वप्रथम भारत ने 'गीता' के माध्यम से दी जिसमें 'कर्म को पूजा माना गया है।' इसी विचार को महात्मा बुद्ध तथा महात्मा

गांधी के विचारों में देखा जा सकता है जिसका मूल स्वरूप निष्काम कर्म करना है। निष्काम कर्म मनुष्य को लालच, भ्रष्टाचार, किसी को हानि पहुंचाने से रोकता है तथा समग्र सामाजिक कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है।

राजनीतिक प्रणाली के विकास में भारतीय ज्ञान परंपरा का विश्व ऋणी है विश्व स्वास्थ्य में वर्तमान लोकतंत्र का पुट सर्वप्रथम भारत में दृष्टिगोचर होता है। भारतीय महाजनपदों ने सर्वप्रथम विश्व को गणतांत्रिक व्यवस्था का दर्शन कराया तथा विश्व का प्रथम साम्राज्य आचार्य कौटिल्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य ने स्थापित किया। राजतंत्र में भी जनता को अधिकार प्रदान करना, छठी शताब्दी ईसा पूर्व में कल्याणकारी राज्य की कल्पना करना अप्रासंगिक प्रतीत होता है। किंतु अर्थशास्त्र जैसे कालजयी ग्रंथ ने न केवल इन्हें धरातल पर लागू किया बल्कि राजनीति के सभी आयामों का समावेश भी किया, जिसमें भारत के साथ शेष विश्व के संबंधों, संधियों, की कल्पना की गई है। विश्व के अधिकांश देशों में, जहां आज मानवीय स्वतंत्रता को सीमित किया जा रहा है, भारत अपनी ज्ञान परंपरा पर आधारित राजनीतिक प्रणाली के आलोक में एक बहुलवादी, विभिन्न धार्मिक और भाषाई तथा नृजातीय संगठन को समेटे हुए विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बना है, जहां प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यों में स्वतंत्रता प्राप्त है तथा इसे संविधान के रूप में संहिता बद्ध भी किया गया है। भारतीय संविधान भारत की राजनीतिक ज्ञान परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है तथा समस्त नागरिकों के सामाजिक-आर्थिक- धार्मिक तथा सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। यह देश के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को भी अपने कल्याण मार्गी सिद्धांत से प्रभावित करता है।

आज, जब समस्त विश्व भारत के ज्ञान का लोहा मान रहा है तब भारत अपने ज्ञान परंपरा को भूलता जा रहा है। हमारे उपभोक्तावादी रवैया तथा लालच ने हमारी प्राचीन शिक्षा परंपराओं तथा उनके मूल्यों को नकारकर अंधाधुंध पाश्चात्य विचारों को अपने जीवन शैली में, यह भूलकर उतार रहे हैं कि पाश्चात्य विचारों के अधिकांश ज्ञान का उद्गम भारतीय ज्ञान से ही हुआ है। तकनीकी विकास ने इस कार्य को और अधिक तीव्र कर दिया है। यह आवश्यक है कि विश्व की श्रेष्ठतम बातों से हमें सीखना चाहिए किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम अपनी मूल परंपराओं, विचारों तथा मूल्यों को भुलाकर आगे बढ़ें। हमारी ज्ञान परंपरा इतनी समृद्धशाली है कि मानव जीवन के परिष्कार का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है, यदि आवश्यक है, तो इस बात की कि हम अपने बच्चों को उसके दर्शन करवाएं, उसके महत्व को प्रस्तुत करें तथा उसे जीवन में उतारने के लिए प्रेरित करें। इसमें परिवार, विद्यालय तथा समाज सभी की भूमिका अपरिहार्य है।

भारत विश्व का सबसे विशाल युवा आबादी वाला देश है। अतः इसके पास अवसर है कि वह अपनी परंपरागत ज्ञान प्रणाली के आधार पर, उन सामाजिक मूल्यों का समावेश करने वाली शिक्षा प्रणाली का विकास करें जो समाज में नैतिक मूल्यों का समावेश करें तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करें। क्योंकि नैतिक मूल्यों के बिना शिक्षा का उद्देश्य महत्वहीन हो जाता है। इसी को ध्यान में रखकर इस वर्ष 'नई शिक्षा नीति' लागू की गई है जिसमें व्यक्ति के समग्र उत्थान की कल्पना की गई है। इसके द्वारा लोगों को समानता के आधार पर सभी

प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य है और व्यक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण कौशल तथा उद्यमिता के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।

अब, जब भारत, एक नए भारत की कल्पना कर रहा है तो उस दशा में हमारी ज्ञान परंपरा उसके मार्गदर्शन के लिए अथाह ज्ञान संचित किए हुए है, जिसके समुचित उपयोग से भारत विश्व की सर्वोत्तम प्रणालियों का विकास करके उसे निर्देशित करने की भूमिका में आ जाएगा तथा अपनी कर्मशील युवा आबादी तथा परंपरागत ज्ञान के आधुनिकीकरण तथा युवाओं को प्रशिक्षित कर विज्ञान विश्व के ज्ञान का भंडार बन सकेगा और अपनी परंपरा के अनुसार 'विश्वगुरु' बनकर मानव विकास के लिए नए आयाम खोलकर विश्व को शांति व समृद्धि की ओर अग्रसर करेगा।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. दिनकर, सिंह, रामधारी : संस्कृति के चार अध्याय (प्रथम और द्वितीय अध्याय), पहला पेपर बैक संस्करण 2016
2. सरस्वती, दयानंद : सत्यार्थ प्रकाश (43, 266, 276), 88वाँ संस्करण, दिसम्बर 2016
3. लेख—
 1. भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण — शंकरलाल माहेश्वरी (पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी) भीलवाड़ा राजस्थान।
 2. भारतीय चिन्तन परंपरा में जल एवं पर्यावरण संरक्षण — गणेश कुमार पाठक।



लोकतंत्र में निष्पक्ष मीडिया की भूमिका

डॉ. वीना पाहूजा

असिस्टेंट प्रोफेसर, जी.एस.जी.डी. कॉलेज, 25 बीबी, पदमपुर, जिला श्रीगंगानगर (राज.)

“महत्वपूर्ण चर्चाओं और नीतियों को सार्वजनिक तौर पर फैलाने के लिए मीडिया महत्वपूर्ण है। भ्रष्टाचार, वित्तीय लापरवाही और छलपूर्ण व्यवहार को रोकने में मीडिया एक अहम भूमिका अदा करती है।” – अमर्त्य सेन
मीडिया की भूमिका :-

अक्सर मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। इसे जनहित का संरक्षक और लोगों के बीच के सेतु के रूप में देखा जाता है।

मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यह दुनियाभर में चल रही विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और गतिविधियों के बारे में हमें जागरूक करता है। यह एक दर्पण की तरह जीवन के कड़वे सत्य और कठोर वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करता है।

राजनीतिक पहलुओं में भी मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय नेता अक्सर मीडिया से डरते हैं क्योंकि मीडिया उनके भ्रष्टाचार, आपराधिक कार्यों और सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करता रहता है। नीतियों में सुधार, भ्रष्ट नेताओं और अधिकारियों को बदलने में भी मीडिया का योगदान रहा है।

मीडिया, राजनेताओं के चुनाव के समय किए गए वादों को समय-समय पर याद दिलाती रहती है। चुनावों के समय में टीवी पर समाचार चैनलों द्वारा व्यापक कवरेज सही उम्मीदवारों को चुनने में लोगों की सहायता करता है। इस तरह राजनेताओं को अपने वादों को पूरा करने के लिए मजबूर करता है।

लोकतंत्र में, मीडिया की तीन जिम्मेदारियाँ हैं। पहला – सत्तारूढ़ लोगों पर कड़ी नजर रखना। दूसरा – समाज को पूरे दिन की महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों की एकदम सही जानकारी प्रदान करना और तीसरा – केवल निष्पक्ष तथ्यों को उजागर करना।

मीडिया की बदली हुई भूमिका :-

बढ़ते व्यावसायीकरण के कारण मीडिया में एक-दूसरे के प्रति कड़ी प्रतिस्पर्धा पैदा हो गई है। मीडिया जिम्मेदार पत्रकारिता पर ध्यान केन्द्रित ना करके खुले तौर से समाचार और घटिया पत्रकारिता को बढ़ावा दे रही है। भारत में मीडिया अब कुछ व्यापारियों और राजनेताओं के नियन्त्रण में आ गया है। इसलिए सामाजिक हितों को व्यापारिक और राजनीतिक हितों के नीचे दबाया जा रहा है। आपको यह सुनने में अजीब लगेगा लेकिन कहना गलत नहीं होगा कि आजकल मीडिया हाऊस का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र की सेवा नहीं बल्कि अपने लिए अधिक से अधिक धन कमाना है। कुछ स्थानों पर मीडिया को दो विरोधी राजनीतिक दलों के बीच में लड़ाई

करवाने के लिए उपयोग किया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि मीडिया को गलत तरीके से प्रयोग करके लोगों के बीच मतभेद पैदा किया जाता है और विश्वास बढ़ाने की जगह सन्देह उत्पन्न किया जाता है। मीडिया का प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे जनता का वैचारिक निर्माण होता है। मुद्दों को बहुत ज्यादा उछालकर या दबाकर, मीडिया किसी भी मुद्दे को महत्वपूर्ण बना सकती है या फिर उसे पूरी तरह समाप्त कर सकती है।

उप राष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी ने कहा है कि पेड समाचार ने स्वच्छ चुनाव करवाने के लिए कोई रास्ता नहीं छोड़ा है और आमजन का मीडिया में विश्वास समाप्त किया है। मेगसेसे पुरस्कार विजेता पी. साईनाथ के अनुसार— “पेड न्यूज एक व्यापार है जिसे मीडिया हाऊस के मालिक चलाते हैं परन्तु मीडिया और पत्रकारिता दो अलग चीजें हैं – मीडिया एक व्यापार है परन्तु पत्रकारिता नहीं लेकिन अब सब कुछ कार्पोरेट पावर के बारे में है। किसी भी बड़े मीडिया हाऊस के बोर्ड ऑफ मैम्बर्स को देखें तो सब में बड़े व्यापारी शामिल हैं। हमने शिक्षा का व्यापारीकरण किया, फिर चिकित्सा का और उसके बाद खेल का परन्तु अब मीडिया का भी व्यापारीकरण हो रहा है।” साईनाथ ने दुःख व्यक्त किया है कि सिर्फ चुनाव आयोग ने ही पेड समाचार के खिलाफ प्रतिक्रिया जताई और मीडिया ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

मीडिया विनियमन और धारणा :-

बढ़ते हुए व्यापार, व्यावसायीकरण, पेड समाचार, पत्रकारों और मीडिया घरानों में नैतिक मूल्यों की निरन्तर गिरावट ने मीडिया नियमन के मुद्दे को महत्वपूर्ण बना दिया है। वर्तमान में ज्यादातर मीडिया आत्म नियमन करते हैं।

पत्रकार भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आश्वसित करने वाली भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में आश्रय लेते हैं और आत्म नियमन पर जोर देते हैं। पिछले कुछ वर्षों से प्रमुख व्यक्ति जैसे न्यायमूर्ति मार्कान्डे काटजू, पूर्व चेयरमैन, प्रेस काउंसिल ऑफ इण्डिया और कांग्रेस नेता मीनाक्षी नटराजन, प्रिन्ट, प्रसारण और वेब मीडिया से सम्बन्धित सभी विषयों पर सार्वजनिक विनयमक की माँग कर रहे हैं। नटराजन ने प्रिन्ट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए नियमन विधेयक 2012 प्रस्तुत करने का नोटिस भी दिया, लेकिन यह योजना समाप्त कर दी गई। हालांकि इस मुद्दे पर अभी तक बिना किसी निष्कर्ष बहस की जा रही है, कानूनी रिपोर्टिंग अथवा न्यायाधीन मामलों पर सितम्बर, 2012 में सहारा इण्डिया सेबी मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने मीडिया के लिए कोई भी दिशा-निर्देश देने के खिलाफ फैसला किया था लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने पत्रकारों को समझाया कि वह अपनी सीमाओं का उल्लंघन ना करें।

महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री श्री अशोक शंकरराव के पेड न्यूज मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मई 2014 के अपने निर्णय में कहा कि चुनाव आयोग को यह अधिकार है कि वे ऐसे उम्मीदवारों की सदस्यता समाप्त कर सकें, जो अनुच्छेद 10(क) के तहत अपना चुनावी व्यय गलत घोषित करते हैं। इसी के फलस्वरूप चुनाव आयोग ने 13 जुलाई, 2014 को एक आदेश पारित किया और श्री अशोक शंकरराव चाहवान को कारण बताओ नोटिस जारी किया लेकिन दिल्ली हाई कोर्ट ने इस पर स्थाई रोक लगा दी।

मीडिया के विनियमन के लिए मौजूदा निकाइयाँ जैसे – प्रेस काउंसिल ऑफ इण्डिया, जो एक साविधिक प्राधिकारी है और समाचार प्रसारण मानव प्राधिकारी, जो एक स्व-विनियामक संगठन है, इन मुद्दों पर मानक

जारी करते हैं जो कि दिशा-निर्देश के रूप में होते हैं।

पीसीआई के पास पत्रकारिता के आदर्शों के उल्लंघन और कदाचार के मामलों में सम्पादक या पत्रकार के खिलाफ शिकायत स्वीकार करने का अधिकार है जिसके बाद वह मामलों की जाँच करता है और जाँच के दौरान वह गवाहों को बुला सकता है। सार्वजनिक रिकॉर्ड की प्रतियों की माँग कर सकता है, सबूत हासिल कर सकता है और अखबार, समाचार एजेन्सी, सम्पादक या पत्रकार को चेतावनी भी जारी कर सकता है, साथ ही पीसीआई जाँच के विवरण को प्रकाशित करने की आज्ञा भी समाचार पत्रों को दे सकता है। पीसीआई का निर्णय अन्तिम होता है और इसके खिलाफ उच्च न्यायालयों में अपील नहीं की जा सकती है।

पीसीआई की शक्तियाँ दो प्रकार से प्रतिबन्धित हैं। पहला, जारी दिशा-निर्देश को लागू करने के उसके अधिकार को सीमित किया गया है। उल्लंघन के मामलों में वह समाचार पत्रों, एजेन्सियों, सम्पादकों और पत्रकारों को दण्ड नहीं दे सकता है। दूसरा, पीसीआई प्रेस के कामकाज की ऊपरी जाँच कर सकता है। वह समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और प्रिन्ट मीडिया पर तो मानदण्ड लागू कर सकता है मगर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे रेडियो, टीवी और इन्टरनेट की समालोचना नहीं कर सकता है।

एनबीए ने टेलीविजन के कार्यक्रमों के लिए एक आचार संहिता तैयार की है। एनबीए के समाचार प्रसारण या प्राधिकरण के पास यह अधिकार है कि किसी भी उल्लंघन के खिलाफ वह चेतावनी दे सके और उसके प्रसारण को अस्वीकार कर सके और साथ साथ एक लाख रुपये तक की राशि का जुर्माना लगा सके। ऐसा ही एक और संगठन प्रसारण सम्पादकों की एसोसिएशन है। भारतीय विज्ञापन मानक परिषद् ने विज्ञापन से सम्बन्धी सामग्रियों पर दिशा-निर्देश जारी किया है लेकिन यह सारे संगठन समझौतों के माध्यम से काम करते हैं और इनके पास कोई वैधानिक अधिकार नहीं है।

मीडिया को निष्पक्ष करने के उपाय :-

समय की माँग के अनुसार मीडिया की विश्वसनीयता और जवाबदेही बढ़ाई जानी चाहिए। एक लोकतांत्रिक संस्था के रूप में मीडिया की विश्वसनीयता तभी बढ़ेगी, जब वह जनता की ओर जवाबदेह होगी, अपनी गलतियाँ स्वीकार करेगी और हमेशा नैतिकता का पालन करेगी। पत्रकारिता की समीक्षा, मीडिया की स्वतन्त्र निगरानी और जनता के साथ संवाद भी मीडिया का विश्लेषण करने का और उनकी अनैतिक तरीकों को उजागर करने का काम कर सकती है।



गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रकाशित

Impact Factor :
4.553

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

विशेष :-

आलेख भेजने की अन्तिम तिथि :- प्रत्येक माह की 13 तारीख

सहयोग राशि भेजने की अन्तिम तिथि :- प्रत्येक माह की 20 तारीख

निर्धारित तिथि के बाद प्राप्त पेपर पर विचार नहीं किया जाएगा।

आपको अगले अंक के लिए पुनः सारी प्रक्रिया करनी होगी।

शोध आलेख भेजने के लिए मेल आईडी : grngobwn@gmail.com

नियम एवं शर्तें :

1. शोध आलेख की सीमा 1500-2000 शब्दों की है। पेपर के टाइटल के नीचे अपना नाम, पता, मोबाईल, मेल आईडी अवश्य लिखें इसके अभाव में आपका पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
2. साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित किसी भी विषय पर शोध आलेख भेज सकते हैं। शोध आलेख कृतिदेव 10, मंगलफॉन्ट में एमएस वर्डफाइल में टाईप करवाकर ही भेजें। पीडीएफ या हाथ से लिखा पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
3. शोध आलेख केवल अपनी ईमेल से ही भेजें क्योंकि हम तमाम प्रकार की जानकारी जिस मेल से हमें पेपर प्राप्त होता है उसी पर देते हैं व्यक्तिगत फोन करके नहीं।
4. एक से अधिक बार भेजे गए शोध आलेख/अशुद्ध आलेख स्वीकृत नहीं होंगे। सम्पादक मंडल का निर्णय सर्वमान्य एवं अन्तिम होगा।
5. अशुद्धियों, प्लेगरिज्म एवं मौलिकता के लिए आप स्वयं जिम्मेदार होंगे। आलेख प्रूफ रीडिंग के बाद भेजें, प्रकाशन के बाद किसी भी प्रकार का सुधार संभव नहीं होगा।
6. पत्रिका की हार्ड/प्रिंट कॉपी+ऑनलाईन के लिए प्रकाशन/सहयोग राशि 1300/- देनी होगी। पीडीएफ+ऑनलाईन के लिए सहयोग राशि 600/- है।

सेमिनार/संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध आलेखों को विशेषांक रूप में प्रकाशित
करवाने के इच्छुक व्यक्ति/संस्थान सम्पर्क करें-8708822674

प्रधान संपादक एवं सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

संपादक एवं निर्देशक :

डॉ. रेखा सोनी

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्स,
भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395-7115

